श्री उत्तराध्ययन सूत्र के सोलह अध्ययन

मन्त्री—पुस्तक प्रकाशन विभाग

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक श्री तिलोक० रत्न० स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी की जैन सिद्धान्त प्रभाकर परीक्षा में सम्मिलित होने वाले परीक्षार्थियों के उपयोग में आने की दृष्टि से तैयार की गयी है। इसका अध्ययन करते समय उपयुक्त दृष्टि को सामने रखने से ही पुस्तक की उपयुक्तता दृष्टि पथ में आ सकती है।

श्री वर्द्धमान स्था० जैन श्रमण संघ के समुनायक जैनधर्म दिवाकर आचार्य सम्राट पूज्य श्री १००८ श्री आनन्द ऋषिजी म० आदि ठाणा ७ का चातुर्मास वि०स० २०२४ का भारत की राजधानी देहली (सब्जी मंडी) में हुआ। पूज्य श्री जी का ध्यान। धार्मिक शिक्षण प्राकृत भाषा का प्रचार प्रसार किस तरह हो उधर रहता है इसी उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर आचार्य श्री जी की सत्प्रेरणा से प्राकृत विद्या पीठ की वहां स्थापना की गई।

आचार्य श्री जी का खास लक्ष्य रहता है कि प्रत्येक स्थानों पर श्री तिलोक रत्न स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के पाठ्यक्रमानुसार अध्ययन करा कर बोर्ड के केन्द्र स्थापित होकर ज्ञान की अभिवृद्धि हो तथा पुस्तकें एक स्थल से ही प्राप्त हो सकें।

परीक्षा बोर्ड की विद्वत्परिषद ने जैन सिद्धान्त प्रभाकर के परीक्षार्थियों के लिए श्री उत्तराध्ययन सूत्र के सोलह अध्ययन पाठ्यक्रम में निर्धारित किये हैं। यों तो उत्तराध्ययन सूत्र की आवृत्तियां कई स्थानों से प्रकाशित हैं लेकिन परीक्षोपयोगी संस्करण न होने से छात्रों को कठिनाइयां उठानी पड़ती थीं। अतः आचार्य सम्राट की सत्प्रेरणा से सुश्रावक धर्म प्रेमी श्रीमान् सुगनचन्दजी जैन देहली निवासी ने १५०० रुपयों का तथा एक गुप्त दानी सुश्राविका ने २ ० रु० व माहाडी निवासी श्री मानकचन्द जी के परिवार ने ८ ० रु का आर्थिक सहयोग देकर अपनी उदारता का परिचय दिया। जिसके फलस्वरूप इस पुस्तक का प्रकाशन हुआ। प्रकाशन विभाग इनका हार्दिक आभारी है।

प्रस्तुत पुस्तक को तैयार करवाने में विदुषी महासती श्री सुमति कंवर जी म० व श्री कुन्दन ऋषिजी म० ने अपना अमूल्य समय देकर निर्देशन किया है जिसके लिए परीक्षा बोर्ड का प्रकाशन विभाग इनका अत्यन्त ऋणि है।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन में जैनागम रत्नाकर स्व० आचार्य श्री आत्मारामजी म० तथा शास्त्र विशारद पं० रत्न श्रद्धेय श्री घासीलाल जी म० द्वारा उत्तराध्ययन सूत्र से सहायता ली गई है।

निवेदक — मन्त्री० पुस्तक प्रकाशन विभाग
श्री ति० रत्न० स्था० जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड पाथर्डी

through the origin has its centre on the line $x + y = 4$
and cuts the circle $x^2 + y^2 - 4x + 2y + 4 = 0$ orthogonally
15

प्राक्कथन

भारत में जिन दो संस्कृतियों का प्रधानतया विकास हुआ है वे हैं श्रमण संस्कृति और ब्राह्मण संस्कृति। श्रमप्रधान संस्कृति श्रमण संस्कृति और ब्रह्मचर्यप्रधान तथा ब्राह्मणप्रधान संस्कृति ब्राह्मण संस्कृति कहलाई।

ब्राह्मण संस्कृति का मूल साहित्य वेद प्रधान है और श्रमण संस्कृति का मूल साहित्य सूत्र (आगम) [illegible] प्रधान।

बौद्धों के धर्म ग्रन्थ पिटक और जैनों के धर्म ग्रन्थ सूत्र (आगम) कहलाते हैं।

श्रमण संस्कृति के निकटतम उद्घापक भगवान वर्द्धमान चौबीसवें तीर्थंकर थे। उनकी वाणी को तत्कालीन गणधरों ने ग्रहण कर सूत्रों का निर्माण किया। सूत्र निर्माण का कार्य उनके बाद आचार्यों द्वारा भी होता रहा।

जो शास्त्र गणधरों द्वारा गुम्फित हुए वे अंग प्रविष्ट तथा जो आचार्यों द्वारा संग्रथित हुए वे अंग बाह्य कहलाये। प्रस्तुत शास्त्र उत्तराध्ययन सूत्र अंग बाह्य सूत्रों में गिना जाता है। इसकी मूल सूत्रों में गिनती है।

मूल सूत्र कहलाने का तात्पर्य यह हो सकता है कि इसमें श्रमण धर्म की उन मूल शिक्षाओं का संकलन है जो व्यवहार एवं निश्चय रूप में सभी जीवन व्यवहारों को प्रभावित करें। कुछ ऐसा भी प्रतीत होता है कि मोक्ष के मूल अंग चार हैं ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप। इनमें ज्ञान का विस्तृत विवेचन नन्दी सूत्र में पाया जाता है, दर्शन प्रधान व्याख्या अनुयोग सूत्र में, चारित्र धर्म की प्रधानता दशवैकालिक सूत्र में तथा तपश्चर्या का प्रधान वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र में है अतः ये चारों मूल सूत्र कहलाते हैं।

अन्य सूत्र ग्रन्थों के समान इसका नामकरण भी विशेष महत्वपूर्ण है। उत्तर अध्ययन इस तरह दो शब्दों में संधि होकर यह नाम बना उत्तराध्ययन। उत्तर अर्थात प्रधान अध्ययन अर्थात शास्त्रों, प्रधान शास्त्रों का संग्रह अथवा उत्तर अर्थात पश्चात्-बाद में अन्य सूत्रों की रचना के बाद आवश्यक तत्व ज्ञान का जो संकलन हुआ वह अध्ययन। ऐसा भी कहा जाता है कि भगवान महावीर ने निर्वाण के पूर्व (अन्तिम समय) जो शिक्षाएं दीं उनका संकलन होने से भी यह उत्तराध्ययन है। संक्षिप्त रूप में सूत्रात्मक शिक्षा वाक्य गाथायें। नीति व भाव की तरफ प्रेरित करने वाले प्रसंग, सार भावपूर्ण कथन तथा मानव प्रकृति में जन्म पाने वाली श्रद्धा तथा संयम की राह, मनुष्य की उपयोगिता, सच्चे और झूठे साधु का अन्तर इत्यादि विषयों का विशद रूप में निरूपण किया गया है। इसके अलावा विषय को स्पष्ट एवं सरल करने के लिए जगह जगह पर छोटे छोटे सुन्दर उदाहरण भी दिए गए हैं। पारिभाषिक शब्दों की बहुलता भी इस ग्रन्थ की एक खास विशेषता है।

कुल मिलाकर इसके छत्तीस अध्ययन हैं किन्तु यह प्रकाशन पहली बार उपयोगी प्रथम संस्करण केवल बारह अध्ययन युक्त है।

विद्यार्थियों के लिए बारह अध्ययनों का सारांश और संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जाता है।

१२ हरि केशीय-

जाति वाद का खण्डन, जाति मद का दुष्परिणाम, तपस्वी की त्याग दशा, शुद्ध तपश्चर्या का दिव्य प्रभाव, सच्ची शुद्धि किसमे है ?

१३ चित्त सम्भूतीय

संस्कृति एवं जीवन का सम्बन्ध-प्रेम का आकर्षण-चित्त और सम्भूति इन दोनो भाइयो का पूर्व इतिहास, छोटी सी वासना के लिए निदान, पुनर्जन्म क्यो, प्रलोभन के प्रबल निमित्त मिलने पर भी त्याग की दशा, चित्त सम्भूति का परस्पर मिलन, चित्त मुनि का उपदेश, सम्भूति का न मानना और घोर दुर्गति मे जाकर पडना, और चित्त मुनि का सद्गति मे पहुँचना।

१४ इषुकारीय

ऋणानुबन्ध किसे कहते है ? छ साथी जीवो का पूर्व वृत्तान्त और इषुकार नगर मे उनका पुन इकट्ठा होना, संस्कार की स्मृति परम्परागत मान्यताओं का जीवन पर प्रभाव गृहस्थाश्रम किस लिए ? सच्चे वैराग्य की कसौटी-आत्मा की नित्यता का मार्मिक वर्णन, अन्त मे छहो का एक दूसरे के निमित्त से ससार त्याग और मुक्ति प्राप्ति।

१७ पाप श्रमणीय

पापी श्रमण किसे कहते है ? उनकी व्याख्या रूप श्रमण जीवन को दूषित करने वाले सूक्ष्मातिसूक्ष्म दोषो का भी चिकित्सा पूर्ण वर्णन।

१८ सयतीय-

कम्पिल नगरी के राजा सयति का शिकार के लिए उद्यान मे जाना, हरिण की हत्या और उसका पश्चात्ताप, गर्दभाली मुनि के उपदेशो का प्रभाव, सयति राजा का गृह त्याग सयति मुनि का तथा क्षत्रिय मुनि का समागम जैन शासन की उत्तमता किसमे है ?, शुद्ध अन्त करण मे पूर्व जन्म का स्मरण होना चक्रवर्ती की अनुपम विभूति के धारक अनेक महा पुरुषो का आत्म सिद्धि के लिए त्याग मार्ग का अनुसरण तथा उनकी नामावली।

१९ मृगापुत्रीय-

सुग्रीव नगर के बलभद्र राजा के तरुण युवराज मृगापुत्र को एक मुनि को देखने से भोग विलासो से वैराग्य भाव का पैदा होना, पुत्र का कर्तव्य,

माता पिता वात्सल्य दीक्षा लेने के समय आज्ञा प्राप्त करने समय की तात्विक चर्चा, पूर्व जन्मों में नीच गतियों में भोगे हुए दुःखों की वेदना का वर्णन, आदर्श त्याग ग्रहण।

२० महानिर्ग्रन्थीय

श्रेणिक महाराज और अनाथी मुनि का आश्चर्य जनक संयोग अशरण भावना अनाथता तथा सनाथता का वर्णन कर्म का कर्ता तथा भोक्ता आत्मा ही है उसकी प्रतीति आत्मा ही अपना शत्रु और मित्र है संत के समागम से मगध पति का आनन्दानुभूति तथा सम्यक्त्व

२१ समुद्रपालीय

चम्पा नगरी में रहने वाले भगवान महावीर के शिष्य पालित का चरित्र उनके पुत्र समुद्रपाल को एक चोर की दशा देखने ही उत्पन्न हुआ वैराग्य भाव उनकी अडिग तपश्चर्या त्याग का वर्णन।

२२ रथनेमीय

अरिष्ट नेमि का पूर्व जीवन तरुण वय में वैराग्य संस्कार की जागृति विवाह के लिए जाते हुए मार्ग में एक छोटा सा निमित्त मिलते ही वैराग्य का उत्पन्न होना स्त्री रत्न राजमति का अभिनिष्क्रमण रथनेमि तथा राजीमति का एकान्त में आकस्मिक मिलन रथनेमि का कामातुर होना राजीमति की अडिगता राजीमति के उपदेश से रथनेमि का जागृत होना स्त्री शक्ति एवं शान शक्ति का ज्वलन्त दृष्टान्त

२३ केशि गौतमीय

श्रावस्ति नगरी में महामुनि केशीश्रमण से गौतम का मिलाप गम्भीर प्रश्नोत्तर समय धर्म की महत्ता, प्रश्नोत्तरों में सबका समाधान होना और भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित आचार का ग्रहण

२५ यज्ञीय

याजक कौन है? यज्ञ कौनसा ठीक है? अग्नि कौनसी होनी चाहिए? ब्राह्मण किसे कहते हैं? वेद का असली रहस्य सच्चा यज्ञ जाति वाद का खंडन कर्म वाद का मंडन श्रमण मुनि और तपस्वी किसे कहते हैं? संसार रूपी रोग की सच्ची चिकित्सा सच्चे उपदेश का प्रभाव

२८ मोक्षमार्ग गति

मोक्ष मार्ग में साधना का स्पष्ट वर्णन संसार निहित समस्त तत्वों के

and cuts the circle $x^2 + y^2 - 4x + 2y + 4 = 0$ orthogonally | and

तात्विक लक्षण, आत्म विकास का मार्ग सरलता से कैसे मिल सकता है?

३० तपो मार्ग—

कर्म रूपी इंधन को जलाने वाली अग्नि कौनसी है? तपश्चर्या का वैदिक वैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक इन तीनों दृष्टियों से निरीक्षण, तपश्चर्या के भिन्न २ प्रकार के प्रयोगों का वर्णन और उनका शारीरिक तथा मानसिक प्रभाव,

३३ कर्म प्रकृति-

जन्म मरण के दुःखों का मूल कारण क्या है? आठों कर्मों के नाम, भेद उपभेद तथा उनकी भिन्न २ स्थिति एवं परिणाम का संक्षिप्त वर्णन,

३४ लेश्या-

सूक्ष्म शरीर के भाव अथवा शुभाशुभ कर्मों के परिणाम, रूप छः लेश्याओं के नाम, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम, लक्षण, स्थान स्थिति गति जघन्य एवं उत्कृष्ट स्थिति आदि का विस्तृत वर्णन किन किन दोषों एवं गुणों से शुभ एवं अशुभ भाव उत्पन्न होते हैं, । स्थूल क्रिया से सूक्ष्म मन का सम्बन्ध, कलुषित अथवा अप्रमत्त मन का आत्मा पर क्या असर पड़ता है मृत्यु से पहले जीवन कार्य के फल का विचार ।

३५ अनगारीय-

अनगार अर्थात् साधु का व्यवहार कैसा रहना चाहिये उसका वर्णन जिनके व्रतों में आगार याने छूट नहीं है उन्हें अनगार कहते हैं अपने व्रतों का परिपालन शुद्ध रीति से करने पर शाश्वत् स्थान अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का वर्णन, ।

—आचार्य आनन्द ऋषि"

श्री वीतरागाय नम

हरिकेशीय अध्ययन

पूव पीठिका

आत्मविकास म जातिका बधन नही होता। चाडाल भी आत्म-कल्याण के माग का आराधन कर सकता है।

महामुनि हरिकेश चण्डाल कुल में उत्पन्न हुए थे फिर भी महान् तपस्वी एव मोक्षाधिकारी बने। पूव जन्म के सस्कारों के कारण वे सवस्व त्याग कर वैराग्यशील बने थे। व राग्यावस्था म एक यक्ष ने उनकी अनेक बार कठिन परीक्षाए ली थी उनम उत्तीण होने पर वह उन पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और सवक रूप में उनके साथ ही रहने लगा।

एक बार यक्ष मन्दिर म मुनि हरिकेश ध्यानावस्थित मुद्रा म जड स्तम्भवत् खडे थे, उसी समय कोशल-नरेश की पुत्री भद्रा अपनी सखियों क साथ उस मन्दिर म आई। दव दशना क अनन्तर सखियाँ क्रीडाथ मन्दिर-स्तम्भों का आलिगन करन लगीं। भद्रा भी उन्हें क्रीडा निरत देखकर खेल म प्रवृत्त हुई और अधकार म स्तम्भवत् खडे मुनिराज का स्तम्भ समझकर उसन आलिगन म बाध लिया। यह देखकर सखियां खिल खिला उठीं और बोलीं—'क्या आपक यही पति हैं? पति का आलिगन होना ही चाहिए।

सखिया क उपहास स भद्रा खीझ गई और उसन अपनी भूल पर ध्यान न दते हुए मुनिजी का ही अपमान करना आरम्भ कर दिया।

यक्ष की उस घटना स यक्ष क्रुद्ध हो उठा और उसन उसकी प्रताडना की जिसम वह मूच्छित होकर पृथ्वी पर गिर पडी।

राजकुमारी का अचेतावस्था की खबर तुरन्त ही सारे शहर में वायुवेग स फल गई। उसक पिता भी वहाँ आ पहुँचे। अन्त में दवी प्रकोप की निवृत्ति

के लिये भद्रा का मुनिराज से विवाह निश्चित हुआ। उसी समय मुनि-शरीर से यक्ष अदृश्य हो गया और तपस्वी हरिकेश भी सावधान हुए। वे इस वैवाहिक उपक्रम को देखकर अत्यन्त विस्मित हुए और अपने तप एव त्याग से सबको समझा-बुझाकर अन्यत्र चले गए।

कोशल नरेश ने अपनी इस पुत्री का विवाह एक ब्राह्मण के साथ कर दिया। ब्राह्मणो ने विवाहोपलक्ष्य मे एक यज्ञ की तैयारी आरम्भ की। उसी समय मुनि हरिकेशी भी पारणा के लिये भोजन पाने की इच्छा से वहाँ आ पहुँचे। ब्राह्मणो ने पहले तो उनका उपहास किया और फिर उनकी ताडना करने लगे।

इस समय यक्ष ने क्या किया ? हरिकेशीजी का परिचय प्राप्त कर भद्रा की क्या दशा हुई और मुनिवर के तप प्रभाव से समस्त वातावरण किस प्रकार पवित्रता एव सौमनस्य से महक उठा—आदि सब बातो का वर्णन इस अध्याय मे प्रस्तुत किया गया है।
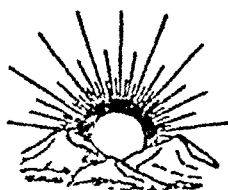
* श्री वर्धमानाय नमः *

श्री उत्तराध्ययन सूत्र

बारहवां हरिकेशीबल अध्ययन

सोवाग कुल-सभूओ, गुणुत्तरधरो मुणी ।
हरिएसबलो नाम, आसी भिक्खू जिइंदिओ ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोवागकुलसभूओ—श्वपाककुलसभूत चाडाल के कुलमें उत्पन्न हुए एव (गुणुत्तरधरो—गुणोत्तरधर) गुणो में सर्वोत्तम जो प्राणातिपात विरमण आदि है उनको अथवा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र को धारण करनेवाले और (जिइंदिओ—जितेंद्रिय) इन्द्रियों को जीतनेवाले तथा (भिक्खु—भिक्षु) निरवद्य भिक्षा लनेवाले ऐसे (हरिएसबलो नाम मुणी—हरिकेशबला नाम मुनि) हरिकेशीबल मुनि (आसी—आसीत्) थे ।

ईरिएसणभासाए, उच्चारसमिइसु य ।
जओ आयाण णिक्खेवो, सजओ सुसमाहिओ ॥२॥
मण गुत्तो, वय-गुत्तो, काय गुत्तो जिइंदिओ ।
भिक्खट्ठा बभइज्जम्मि, जन्नवाडेमुवट्ठिओ ॥३॥

अन्वयार्थ—(इरिएसणभासाए उच्चारसमिइसु—ईर्येषणाभाषोच्चारसमितिषु) ईर्यासमिति भाषासमिति एषणासमिति उच्चारप्रस्रवणश्लेष्म—सिघाणजल्ल परिष्ठापनिका समिति, तथा (आयाणनिक्खेवे—आदान—निक्षपे) आदान निक्षपण समिति इन पाच समितियो मे (जओ—यत) प्रयत्नशील तथा (सजओ—सयत) सयमशील (सुसमाहिओ—सुसमाहित) ज्ञानदर्शनचारित्र एव समाधियुक्त तथा (मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ—मनोगुप्त वचोगुप्त कायगुप्त जितेंद्रिय) मनोगुप्ति वचनगुप्ति कायगुप्ति से युक्त एव इन्द्रियों को जीतनेवाले एसे वे मुनि (भिक्खट्ठ—भिक्षार्थम्) भिक्षा के लिए (बभइज्जम्मि—ब्रह्मेज्ये) ब्राह्मण लोग जहां यज्ञ कर रहे थे ऐसे (जन्नवाडमुवट्ठिओ—यज्ञपाठे उपस्थित) यज्ञमण्डप मे उपस्थित हुए ।

तं पासिऊणमेज्जंतं, तवेण परिसोसियं ।
पंतोवहिउवगरणं, उवहसन्ति अणारिया ॥४॥

अन्वयार्थ—(तवेण परिसोसिय—तपसा परिशोषितम्) षष्ठ, अष्टमादि तपस्या से कृश हुए, (पंतोवहिउवगरण—प्रान्तोपध्युपकरणम्) प्रान्त, जीर्ण, एवं मलीन होने से असार उपधिवाले अर्थात् नित्योपयोगी वस्त्रपात्रादिरूप उपधि वाले, तथा उपकरणवाले,—संयमोपकारक रजोहरण प्रमार्जिकादिकवाले, ऐसे उन (एज्जन्त—एजमानम्) आते हुए (त—तम्) हरिकेशबलमुनिको (पासि-ऊण—दृष्ट्वा) देखकर (अणारिया - अनार्या) यज्ञमंडप में उपस्थित वे अनार्य—अशिष्टजन सबके सब (उवहसंति—उपहसन्ति) हँसने लगे । १

जाईमयपडियद्धा, हिंसगा अजिइन्दिया ।
अबंभचारिणो बाला इमं वयणमब्बवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(जाईमयपडियद्धा—जातिमदप्रतिस्तब्धाः) जातिमद से सम्पन्न (हिंसगी—हिंसका) प्राणियों के घात करने में लवलीन (अजिइंदिया—अजितेन्द्रिया) इन्द्रियों के विषयों में आकृष्ट चित्तवाले (अबंभचारिणो—अब्रह्मचारिणः) धर्मबुद्धि से मैथुन सेवी । तथा (बाला—बाला) अज्ञानी बालक्रीडा की तरह अग्निहोत्र आदि में प्रवृत्त ये यज्ञमंडप के ब्राह्मण (इमं वयणमब्बवी—इदं वचनं अब्रवीत्) इस प्रकार वचन बोले ।

कयरे आगच्छइ दित्तरूवे! काले विगराले फोक्कनासे ।
ओमचेलए पंसुपिसायभूए, संकरदूसं परिहरिय कंठे ॥६॥

अन्वयार्थ—(दित्तरूवे—दिप्तरूपः) बीभत्स आकारवाला (काले—कालः) कृष्णरूप वाला (विगराले—विकराल) भय उत्पन्न करने वाला (फोक्कनासे—फोक्कनास) बेडोल नाकवाला (ओमचेलए—अवमचेलक) मलिन वस्त्र धारण करनेवाला (पंसुपिसायभूए—पांसुपिशाचभूत) धूलि-धूसरित शरीर होने से भूत जैसा मालूम पडनेवाला (संकरदूसं—संकरदूष्यम्) संकरदूष्य के जीर्ण होने से तथा अनुपयोगी होने से कूडे के ढेर पर डालने योग्य वस्त्र के समान असार फटे और मैले वस्त्र को (कंठे परिहरिय—कंठे परिवृत्य) कंठ में धारण कर (कयरे आगच्छइ—कतरः आगच्छति) यह कौन आ रहा है ?

---

१. मुनि के वस्त्र पात्र कम्बल आदि को उपधि तथा उपकरण कहते हैं ।

कयरे तुम इय अदसणिज्जे, काए व आसा इहमागओ सि ।
ओमचेलगा [1] पंसुपिसायभूया [1] गच्छ क्खलाहि किमिहट्ठिओ सि ॥७॥

अन्वयार्थ—(इय—इति) इस पूर्वोक्त रूप से (अदसणिज्जे—अदर्शनीय) कुरूप होने के कारण सर्वथा देखने के अयोग्य तुम (कयरे—कतर) कौन हो ? (काए व आसा इहमागओ सि—कया वा आशया इह आगतोऽसि) किस आशा से तुम यहां पर आये हो ? (ओमचेलगापंसुपिसायभूया—अवम चेलक पांसुपिशाचभूत) अरे मलिनवस्त्रधारिन् ? पांसुपिशाचभूत—धूलिधूसरित हो रहे पिशाच जैसे शरीर वाले तू (गच्छ) चला जा (क्खलाहि—स्खल) यहां से दूर हट जा (किमिहट्ठिओसि—किमिहस्थितोऽसि) क्या यहाँ पर खड़ा हुआ है ?

जक्खो तर्हि तिंदुयरुक्खवासी, अणुकंपओ तस्स महामुनिस्स ।
पच्छायइत्ता नियगं सरीरं, इमाइं वयणाइं उदाहरित्था ॥८॥

अन्वयार्थ—जब यज्ञशालास्थ उन ब्राह्मणों ने उस मुनिराज हरिकेशबल का [1] अपमान किया था (तर्हि—तत्र) उस समय (तिंदुयरुक्खवासी—तिंदुकवृक्ष वासी) तिंदुकवृक्ष पर रहनेवाले (जक्खो—यक्ष) यक्ष ने जो (तस्स महामुणिस्स अणुकंपओ—तस्य महामुनेः अनुकंपकः) उन महामुनि के ऊपर दयाशील था—उनका सेवक था (नियगं सरीरं पच्छायइत्ता—निजकं शरीरं प्रच्छाद्य) अपने शरीर को अन्तर्हित करके अर्थात् स्वयं महामुनि के शरीर में प्रविष्ट हो करके (इमाइं वयणाइं उदाहरित्था—इमानि वचनानि उदाहरत्) यह वचनों को बोला—

समणो अहं संजओ बंभयारी, विरओ धणपयणपरिग्गहाओ ।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले, अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि ॥९॥
वियरिज्जइ खज्जइ भोज्जइ य, अन्नं पभूयं भवयाणमेयं ।
जाणाहि मे जायणजीविणं त्ति, सेसावसेसं लहऊ तवस्सी ॥१०॥

अन्वयार्थ—(अहं समणो—अहं श्रमणः) मैं मुनि हूँ। (संजओ—संयत) सावद्य व्यापार से मैं निवृत्त हूँ। (बंभयारी—ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी अर्थात् कुशील का

---

१ यह वही यक्ष है जो मुनि का सेवक था और उसीने उनके शरीर में प्रवेश किया था।

त्यागी हूँ, नववाड मे विशुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करनेवाला हूँ। (धणपयणपरिग्गहाश्रो विरश्रो—धनपचनपरिग्रहात् विरत) धन चतुष्पदादिगे, पचन-आहारादिक के निर्माण मे, एव परिग्रह मे विरक्त हूँ। और (भिक्खकाले—भिक्षाकाले) भिक्षा के समय मे (परप्पवित्तस्स उ अन्नस्स—परप्रवृत्तस्य तु अन्नस्य) पर के लिए निष्पादित भोजन को (अट्ठा—अर्थाय) लेने के लिए[1] (इह—इह) इस यज्ञशाला मे (आगओमि आगतोऽस्मि) आया हूँ। (भवयाणमेय अन्न–भवता एतम् अन्न) आप लोगो की यह चतुर्विध आहार सामग्री (पभूय—प्रभूतम्) पर्याप्त है। इसमे से आप लोग कुछ (वियरिज्जइ—वितीर्यते) दीन अनाथजनो को देते हैं। (खज्जई-खाद्यते) अन्य ब्राह्मणो को खिलाते हैं। (य—च) और (भोज्जई—भुज्यते) स्वय खाते हैं (जायणजीविणु मे जाणाहि—याचना जीविन मा जानीत) मै याचना से प्राप्त भोजन से ही अपना निर्वाह करता हूँ ऐसा आप निश्चित रूप से समझे (त्ति—इत्ति) इसलिए (सेसावसेस तवस्सि लहऊ—शेषावशेष तपस्वी लभताम्) वितरण से तथा खाने से बचे हुए इस भोजन मे से आप लोग कुछ मुझ तपस्वी को भी दें। इन दो गाथाओ द्वारा 'कयरे तुम" इस सातवी गाथा का उत्तर दिया गया है ॥९।१०॥

उवक्खडं भोयणं माहणाण, अत्तट्ठियं सिद्धमिहेगपक्खं।

न ऊ वयं एरिसमन्नपाणं, दाहामु तुज्झं किमिहं ठिओ सि ॥११॥

अन्वयार्थ – (माहणाण—ब्राह्मणेभ्य.) ब्राह्मणो के निमित्त (उवक्खड—उपस्कृतम्) तैयार किया गया (भोयण—भोजन) यह अशनपानादिक (अत्तट्ठिय—आत्मार्थिकम्) ब्राह्मणो के लिए ही है, अत वह ब्राह्मणो को देने के पहिले किसी और को नही दिया जा सकता है। (इहेगपक्ख सिद्धम्—इह एकपक्षसिद्धम्) इस भोजन मे केवल एक ही पक्ष-ब्राह्मणरूप पक्ष ही प्रधान है, इसलिए (एरिसमन्नपाण—ईदृश अन्नपानम्) इस प्रकार के अन्नपान को (वय—वयम्) हम लोग (तुज्झ न दाहामु—तुभ्य न दास्याम) किसी को भी नही दे सकते तो श्वपाककुलोत्पन्न तुमको कैसे दे सकते है अर्थात् नही देंगे। कहा भी है—

'न शूद्राय मतिं दद्यान्नोच्छिष्टं न हविः कृतम्।

न चास्योपदिशेत् धर्मं, न चास्य व्रतमादिशेत् ॥

अर्थात् —शूद्र को न बोध देना, न उच्छिष्ट देना, न यज्ञावशिष्ट देना, न

---

१. जैन साधु दूसरो के निमित्त बनाये गये अन्न की ही भिक्षा लेते हैं, अपने लिये तयार की गई रसोई वे ग्रहण नही करते।

धर्म का उपदेश देना और न उनको व्रत में आरोपण करना। इसलिए हम तुमको न देंगे व्यर्थ में तुम (इह) यहाँ पर (कि ठिग्रासि—कि स्थितोऽसि) क्यों खड़े हो ?

थलेसु बीयाइ ववंति कासया, तहेव निन्नेसु य आससाए ।
एयाए सद्धाए दलाह मज्झ, आराहए पुन्नमिणं खु खेत्तं ॥१२॥

अन्वयार्थ—जैसे (कासया—कर्षका) कृषक जन (आससाए—आशंसया) फल प्राप्ति की इच्छा से (निन्नेसु थलेसु—निम्नेषु स्थलेषु) नीचे की भूमि में (बियाइ ववंति—बीजानि वपन्ति) बीजों को बोते हैं उसी तरह वे (य—च) ऊपर की भूमि में भी बीज बोते हैं। इस तरह से बीजों को बोने में केवल उनका यहां अभिप्राय रहा करता है कि यदि अतिवृष्टि हुई तो निम्न भागों में अन्नो-त्पत्ति की असंभवता रहती है क्योंकि वहां पानी अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाया करता है इससे बीज सड जाता है तथा अल्पवृष्टि हुई तो उच्च भागों में उस समय अन्नोत्पत्ति की असंभवना रहती है क्योंकि अल्पवृष्टि में जल वहां ठहरता नहीं है वह तो बहकर नीचे की ओर चला जाता है। फिर भी ऊँचे-नीचे सभी स्थलों में बीज बोए जाते हैं। इसी तरह हे ब्राह्मणो ! तुम सब भी (एयाए सद्धाए—एतया श्रद्धया) इसी श्रद्धा से (मज्झ दलाह—मह्य दत्त) मुझे आहारादिक सामग्री दो अर्थात् जिस तरह तुम लोग अपने आपको निम्न क्षेत्ररूप मानते हो और मुझे स्थलरूप मानते हो तो भी कृषक की तरह आप लोग निम्न क्षेत्र जैसे ब्राह्मणों के लिए जिस श्रद्धा से देते हो—उसी श्रद्धा से (मज्झ—मह्य) मुझे भी आहारादिक दो (इदम्) यह मेरा शरीर रूप (खेत्तं—क्षेत्रम्) क्षेत्र (खु—खलु) निश्चय से (पुण्णं—पुण्य) पुण्य रूप है इसलिए आप पुण्य रूप क्षेत्र की आराधना में यह आपके लिए पुण्य का सम्पादन करानेवाला होगा तात्पर्य यह कि मेरे लिए दिया गया आहार आपके लिये पुण्यजनक होगा।

खित्ताणि अम्हं विइयाणि लोए, जहिं पकिण्णा विरुहंति पुण्णा ।
जे माहणा जाईविज्जोववेया, ताइं तु खित्ताइं सुपेसलाइं ॥१३॥

अन्वयार्थ—(लोए—लोके) इस संसार में (खित्ताणि अम्हं विइयाणि—क्षेत्राणि अस्माकं विदितानि) क्षेत्रतुल्य पात्र हमलोगों को विदित हैं। (जहिं पकिण्णा पुण्णा विरुहंति—यत्र प्रकीर्णानि पुण्यानि विरोहन्ति) जहाँ पर आहारादिक के वितरण से पुण्य प्राप्त हुआ करते हैं वे कौन से हैं उनको वे ब्राह्मण प्रदर्शित करते हैं। (जे जाइविज्जोववेया माहणा—ये जाति विद्योपपन्ना ब्राह्मणा) जो ब्राह्मणत्व जाति से विशिष्ट एवं चौदह विद्याओं के निधान ब्राह्मण हैं। (ताइं

तु—तानि तु) वे ही (सुपेसलाइ—सुपेशलानि) सुन्दर सुखद पुण्याकुर के उत्पादक (खित्ताइ—क्षेत्राणि) क्षेत्र है—तुम्हारे जैसे नही।[1]

कोहो य माणो य वहो य जेसिं, मोसं अदत्तं च परिग्गहो य।
ते माहणा जाई विज्जाविहूणा, ताइं तु खेत्ताइं सुपावयाइं ॥१४॥

अन्वयार्थ—(कोहो य माणो य—क्रोधश्च मानश्च) क्रोध, मान और लोभ तथा (वहो य—वधश्च) यज्ञों मे प्राणियो का वध तथा (मोस—मृषा) असत्य (अदत्त य—अदत्त च) अदत्त का आदान 'च' शब्द से मैथुन का सेवन और (परिग्गहो य—परिग्रहश्च) परिग्रह ये (जेसि—येषाम्) जिनके पास मे है (ते माहणा—ते ब्राह्मणा.) वे आप लोग ब्राह्मण (जाई विज्जाविहूणा—जाति विद्याविहीना) जाति और विद्या से विहीन मानने योग्य हैं, क्योकि ब्राह्मणोचित कर्म का अभाव आप मे हैं, चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था क्रिया कर्म के विभाग से ही मानी जाती है।[2] कहा भी है।

"एकवर्णमिदं सर्वं, पूर्वमासीत् युधिष्ठिर।
क्रियाकर्मविभागेन, चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थितम् ॥
ब्राह्मणो ब्रह्मचर्येण, यथाशिल्पेन शिल्पिका.।
अन्यथा नाममात्रं स्यादिन्द्रगोपककीटवत् ॥

हे युधिष्ठिर! पहले एक ही वर्ण था। पश्चात् क्रिया और कर्म के विभाग से यही वर्ण चार रूप से विभक्त हो गया। ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण कहा जाता है, शिल्पकर्म से शिल्पी कहा जाता है। कर्म के बिना वह नाममात्र का ब्राह्मण है। वास्तविक ब्राह्मण नही। जैसे कि किसी कीट विशेष को इन्द्रगोप कहते हैं किन्तु इन्द्र का रक्षक वह बेचारा कीट क्या हो सकता है वह तो नाममात्र से ही इद्रगोप है, इसी तरह आप सब क्रोधादिको से युक्त होने से तथा ब्रह्मचर्य के अभाव मे आप लोग जाति से भी ब्राह्मण कहे जाने योग्य नही है। भले ही आप इन्द्रगोप कीडे की तरह नाम से ब्राह्मण रहे, तथा बालक्रीडा की तरह इन अग्निहोत्र आदि हेय कर्मो मे निरत होने के कारण आप लोग सम्यग्ज्ञान रूप पारमार्थिक विद्या से भी विहीन हैं, इसलिए जाति और विद्या से विहीन होने के कारण केवल नाममात्र के ब्राह्मणो को ब्राह्मण—लक्षणो से युक्त एव सुपेशल मानना उचित नही है। फिर यह कैसे माना जा सकता है कि आप

---

१. वस्तुत उक्त वचन मुनि मुख से यक्ष ही कह रहा था।
२. ये वचन यज्ञ शाला मे स्थित क्षत्रियो के हैं।

लोग पुण्याकुर जनन के याग्य क्षेत्र हैं। ऐसी स्थिति सम्पन्न लाग केवल पापा के ही उत्पादक क्षेत्र माने गय हैं और सम्यक्ज्ञान का फल विरति ही होता हैं। क्रोधादिकों से युक्त आपमें विरति का उदित होना सम्भव ही नहीं अत इसके अभाव में विद्यमान ज्ञान भी निष्फल होने से असत्य के तुल्य ही माना गया है, इसलिए आप लोग विद्याविहीन ही हैं।[1]

तुब्भेत्य भो भारहरा गिराण, अट्ठं न जाणाह अहिज्जवेए।
उच्चावचाइ मुणिणो चरंति, ताइ तु खेत्ताइ सुपेसलाइ ॥१५॥

अन्वयार्थ—(भो-भो) हे ब्राह्मणो! (तुब्भेत्य—यूयं अत्र) आप इस लोक में (गिराण भारहरा—गिरा भारधरा) केवल वेद सम्बन्धी वाणी के भार का ही ढोने वाले हैं क्योंकि आप लोग पारमार्थिक अर्थ के ज्ञाता नहीं हैं। अंग उपांग सहित होने से वेदों का वजन बहुत भारी हो जाता है तथा उनमें पारमार्थिक अर्थ विहीनता भी प्राधान्य रूप से हो रही हुई है—इसलिए वे एक तरह के भार ही हैं। उन्हें आप अपने दिमागमें धारण करने से मानो उनका भार ही उठा रहे हैं। अतः आप सब एक तरह से भारवाहक ही हैं।

इस पर यदि वे कहें कि वेदों में पारमार्थिक अर्थ नहीं है सो यह बात नहीं हैं पारमार्थिक अर्थ भी वहाँ है इसलिए आप हमें भारवाहक क्यों कहते हैं इस प्रकार आपका यह कहना आपके अज्ञानता का द्योतक है सो। इस प्रकार की आशंका का समाधान सूत्रकार आगे के पदों द्वारा करते हुए कहते हैं।

अट्ठं - इत्यादि।

हे ब्राह्मणो! आप लोगों ने यद्यपि (वेए अहिज्ज—वेदान् अधीत्य) वेदों का अध्ययन किया है तो भी (अट्ठं न जाणाह—अर्थं न जानीथ) ऋग्वेदादिकों में यत्र कुत्रचित् स्थलों में छिपे हुए अर्थ का—पारमार्थिक तत्व को आप लोग जानते नहीं हैं। यदि जानते होते तो मा हिंस्यात् सर्वभूतानि किसी भी जीव को मत मारो इस कथन का अध्ययन करके भी आप लोग क्यों इस हिंसामय यज्ञ कर्म में प्रवृत्तियुक्त हो रहे हो? इससे यह कहा जा सकता है कि आप लोग परमार्थतः वेदार्थवित् नहीं हैं। अतः वेदविद्या सम्पन्न भी नहीं हैं। इस तरह ब्रह्मचर्य का अभाव होने से और वेदविद्या से रहित होने से आप लोग पुण्याकुरप्ररोहण के योग्य क्षेत्रस्वरूप नहीं हैं।

---

१ उस समय कुछ ब्राह्मण अपने धर्म से पतित होकर महाहिंसाको ही धर्म मनवाने का प्रयत्न करते थे। ऐसे ब्राह्मणों को लक्ष्य करके ही यह श्लोक यक्ष की प्रेरणा से मुनि के मुख से कहलाया गया है।

जब इस प्रकार यक्षाविष्ट मुनिराज ने कहा तब उन लोगो ने पूछा की महाराज अब आप बतलाइये कि पुण्याकुर के उत्पादन योग्य क्षेत्र कौन है—इस प्रकार ब्राह्मणो के वचनो को सुनकर मुनिराज ने उनसे कहा कि सुनो हम बतलाते हैं –जो (मुणिणो—मुनय) मुनिजन षट्काय के जीवो की रक्षा करने के लिए (उच्चावचाइ उच्चावचानि) छोटे-बडे घरो मे भिक्षा के लिए (चरन्ति—चरति) भ्रमण करते है। (ताइ तु खेत्ताइ सुपेसलाइ-तानि तु क्षेत्राणि सुपेशलानि) वे ही-मुनिजन लोक मे सुन्दर क्षेत्र है अर्थात् पुण्याकुर को सुख-पूर्वक बढाने के योग्य सर्वोत्तम क्षेत्र स्वरूप है। ऐसे मुनिजनो के लिए ही दिया गया अन्नपानादिक सामग्री पुण्यजनक हुआ करती है, जो षट्काय के जीवो की विराधना करने मे लवलीन तुम्हारे जैसे ब्राह्मण है उनको दिया हुआ आहार पुण्यजनक नही होता है। छोटे बडे सब घरो से भिक्षा लेना वेदान्तियो को भी समत है। उन्होने कहा भी है—

"चरेन्माधुकरी वृत्तिमपि म्लेच्छकुलादपि।
एकान्न नैवं भुंजीत, वृहस्पति समादपि॥

अज्झावयाणं पडिकूलभासो पभाससे किं तु सगासि अम्हं।
अवि एण विणस्स-उ अण्णपाणं, न य णं दाहामु तुम नियंठा॥१६॥

अन्वयार्थ –(नियंठा—निर्ग्रन्थ) हे निर्ग्रन्थ! तुम (अम्हं अज्झावयाण सगासि पडिकूलभासी अस्माकं अध्यापकानाम् सकाशे प्रतिकूलभाषी) हमारे अध्यापको के समक्ष मे भी विरुद्ध बोलने के स्वभाववाले हो। इसीसे (अम्हं सगासि किं नु पभाससे-अस्माकं सकाशे किं नु प्रभाषसे) हमारे समक्ष भी तुम ऐसा प्रतिकूल क्यो बोल रहे हो? तुम्हारी इस तरह की प्रवृत्ति देखकर हमने तो यही निश्चय कर लिया है कि चाहे (अवि एव विणस्सउ—अपि एतद् विनश्यतु) हमारा यह अन्नपान सब का सब भले ही खराब हो जावे – परन्तु (तुम न दाहामु—तुभ्य नैव दास्याम) तुम्हारे लिए तो बिलकुल ही नही देगे। 'निर्ग्रन्थ' इस पद से मुनि हरिकेशबलकी निष्किञ्चनता अपरिग्रहिता सूचित की है। मुनिजन ज्ञान धन विशिष्ट होते है। तुम्हारे भीतर तो लेशमात्र भी ज्ञान नही है, इसका यही आशय निकलता है।

समिईहि मज्झं सुसमाहियस्स, गुत्तीहि गुत्तस्स जिइंदियस्स।
जइमं न दाहित्थ अहेसणिज्जं, किमज्ज जन्नाण लभित्थ लाभ॥१७॥

अन्वयार्थ —(समिईहि—समितिभि) इर्यासमिति आदि पाच समितियो से (सुसमाहियस्स—सुसमाहिताय) अच्छी तरह समाधियुक्त तथा (गुत्तीहि—गुप्ति—

भि) मनोगुप्ती आदि तीन गुप्तियों मे (गुत्तस्स—गुप्ताय) सहित (जिइन्दियस्स जितेन्द्रियाय) एव जितेन्द्रिय एम (मज्झ—मह्य) मर लिए (इम एसणिज्ज इमम् एषणीयम्) इस निर्दोष आहार का (यत्) जिस कारण स (न दाहित्थ न दास्यथ) नहा दे रह हा उस कारण से (अज्ज—अद्य) इस यनावसर म (जन्नाण लाम न्भिहत्थ कि—यनाना नाम लप्स्यध्व किम्) आप लोग यज्ञों के फल को पुण्य प्राप्ति को प्राप्त कर सकाग क्या ? अर्थात् नहीं प्राप्त कर सकाग ।

भावाथ—पात्र दान से ही दाता को विशिष्ट पुण्य प्राप्ति हुआ करती है यह सिद्धात है । सो आपलोग मरे जस निग्र य दानपात्र साधु के लिए एपणा विशुद्ध जो अन्नपानादिक नहीं दे रहे हो सो आप लाग क्या यज्ञ के फल का पा सकोगे अर्थात् नहीं पा सकोगे । अपात्र क लिय दान की निष्फलता होने के लिये किया गया दान और दाता दोनों ही हानि को पात हैं । कहा है —

"दधि मधु घृतान्यपात्रे क्षिप्तानि यथाऽऽशु नाशमुपयाति ।"

"व्ययस्त्वपात्रे व्यय इसलिये अपात्रको दिया गया दान केवल नाश को ही प्राप्त होता है ।

के इत्थ खत्ता उवजोइया वा, अज्झावया वा सह खडिएहिं ।
एव खु दडेण फलेण हता, कठम्मि धित्तूण खलेज्ज जोण ॥१८॥

अन्वयाथ—(इत्थ-अत्र) इस यज्ञशालामे (के खत्ता—केऽपि क्षत्रा) क्या कोई ऐसे भी क्षत्रिय हैं (वा—वा) अथवा (उवजोइयावा—उपज्यातिष्का वा) कोई ऐसे हवन करने वाले पुरुष हैं या कोई एसे भी अध्यापक हैं (जो ण—ये खलु) जो (खडिएहि सह—खडिक सह) छात्रों के सहित होकर (एय—एतम्) इस निग्रन्थ साधु का (दडेण फलण हता—दडेण फलेन हत्वा) दण्डोसे एव विल्वादिक फलों स मारकर और (कठम्मिघित्तूण—कठे गृहीत्वा) इसको गदन पकडकर (खलु) निश्चय म यहाँ स (खलेज्ज—निष्कासययु) निकाल सकें ।

अज्झावयाण वयण सुणेत्ता, उद्धाइया तत्थ बहू कुमारा ।
दडेहि वेतेहि कसेहि चेव, समागया त इसि तालयति ॥१९॥

अन्वयाथ – (अज्झावयाण वयण सुणत्ता – अध्यापकाना वचन श्रुत्वा) इस प्रकार प्रधानाध्यापक क वचन सुनकर (तत्थ—तत्र) उसी समय (उद्धाइया बहूकुमारा—उद्धाविता बहव कुमारा) दौडत हुए अनेक कुमार (समागया समागता) उस ऋषि क पास आये और (दडेहि वतेहि कसेहि चव—दड वेत्र कशाभिश्चव) दण्डों स बेंता स तथा कोडा से (त इसि—तम् ऋषिम्) उस

ऋषिको (नालयन्ति—ताडयन्ति) ताडने लगे।

रण्णो तहिं कोसलियस्स धूया, भद्दत्ति नामेण अणिंदियंगी।
तं पासिया संजयं हम्ममाणं, कुध्ये कुमारे परिनिव्ववेई ॥२०॥

अन्वयार्थ—(तहिं—तत्र) उस यज्ञशाला में (कोसलियस्स रण्णो धूया-कौशलिकस्य राज्ञ दुहिता) कौशल राजा की पुत्री ने (अणिदियंगी—अनिन्दितागी) कि जो विशिष्ट सौंदर्य सम्पन्न थी और (भद्दत्ति नामेण-नाम्ना भद्रेति) नाम जिसका भद्रा था (हम्ममाणं तं संजयं पासिया-हन्यमानं तं संयतं दृष्ट्वा) उन क्रुद्ध कुमारो द्वारा पिटते हुए उन मुनिराज को देखकर (क्रुद्धे कुमारे परिनिव्ववेइ-क्रुद्धान् कुमारान् परिनिर्वापयति) क्रोधाविष्ट बने हुए उन कुमारो को शांत किया।

देवाभिओगेण निओइएणं, दिन्नामु रण्णा मणसा न झाया।
नरिंद देविंद ऽभिवंदिएण जेणाभिवंता इसिणा स एसो ॥२१॥

अन्वयार्थ—(देवाभिओगेण निओइएण रण्णा—देवाभियोगेन नियोजितेन राज्ञा) यक्ष के बलात्कार से वशीकृत हुए मेरे पिताने (दिन्नामु-दत्ताऽस्मि) मुझे पहले इन मुनिराज को दिया था परन्तु (मणसा न झाया—मनसा न ध्याता) इस मुनिराज ने मुझे मनसे भी ग्रहण करने की अभिलाषा नहीं की है। (स एसो—स एष) वे ही ये हैं। (नरिंद देविंद अभिवंदिएण जेण-नरेन्द्र, देवेंद्राभिवंदितेन येन) (इसिणा वंता—ऋषिणा वान्ताऽस्मि) नरेन्द्रो, देवेन्द्रो द्वारा नमस्कृत हुए इन ऋषिराज ने जैसे कोई वमन का परित्याग कर देता है, वैसे ही मेरा परित्याग कर दिया है। इसलिए आप लोग इन्हें मत मारो।[1]

एसो हु सो उग्गतवो महप्पा, जिइंदिओ, संजओ बंभयारी।
यो मे तया नेच्छइ दिज्जमाणिं, पिउणा सयं कोसलिएण रन्ना ॥२२॥

अन्वयार्थ—देखो जिन्हें आप लोग मार रहे हो वे कोई साधारण व्यक्ति

---

१. इस भद्राने सरल भाव से वहाँपर ध्यानस्थ मुनीश्वरका अपमान किया था। और इसका बदला देने के लिए शरीर के साथ (मुनि-शरीरमें प्रवेश करके यक्षने मुनि के विवाह का आयोजन कराया था। किन्तु जब मुनि ध्यान से उठे तो उसने भद्राको शीघ्र ही अपना संयमी होना सिद्ध कर तुम्हारा कल्याण हो, ऐसा आशीर्वाद देकर उसे मुक्त कर दिया।

नहीं है किन्तु (सा एसा उग्गतवा महप्पा—स एष उग्रतपा महात्मा) व बडे भारी उग्र तपस्वी आत्मा है। (जिइंदिया संजओ बम्भयारी—जितेंद्रिय संयत ब्रह्मचारी) जितेंद्रिय है सावद्य व्यापार से विरत है तथा ब्रह्मचारी है। (यो—य) इन्होंने (तया—तदा) उस समय जब कि (सयं—स्वयं) (कोसलिएण रन्ना कौसलिकेन राज्ञा) कोसलाधिपति राजा द्वारा (म दिज्जमाणी—मां दीयमानाम्) मैं इनको दी जा रही थी (नेच्छइ—नेच्छति) मुझे स्वीकार नहीं किया।[1]

महाजसो एस महाणुभागो, घोरव्वओ घोरपरक्कमो य।
मा एयं हीलह अहीलणिज्जं, मा सव्वे तेएण भे णिद्दहिज्जा॥२३॥

अन्वयार्थ—(एसो—एष) ये ऋषिवर्यों द्वारा भी वंदनीय होने से महायशस्वी है। तथा तपोनिष्ठ सम्पन्न होने से (महाणुभागो—महानुभाग) महानुभाग वाले हैं। (य) और प्रवर्धमान संयम परिणामशाली होने से (घोरव्वओ घोरव्रत) घोरव्रती हैं। परिषहों के विजेता होने से (घोरपरक्कमो—घोरपराक्रम) विशिष्ट पराक्रम वाले हैं। इसी कारण ये (अहीलणिज्जं अहीलनीयम्) अहीलनीय हैं—अपमानित करने योग्य नहीं हैं अतः एसे अहीलनीय (एयं—एनम्) इन ऋषिवरको (मा हीलह—मा हीलयत) अपमानित मत करो। नहीं तो (तेएण—तेजसा) तपस्तेजसे ये (भे—युष्मान्) आप सबको (णिद्दहिज्जा—निधक्ष्यन्) जला देंगे। इसलिए जब तक ये आप सब को जला नहीं देते तब तक आप लोग इस अपने कुकृत्य से सभल जाओ।

एयाइं तीसे वयणाइं सुच्चा, पत्तीइ भद्दाइ सुभासियाइं।
इसिस्स वेयावडियट्ठयाए, जक्खा कुमारे विनिवारयंति॥२४॥

अन्वयार्थ—पत्तीइ—पत्न्या) रुद्रदेव पुरोहित की भार्या (तीसे—तस्या) उस राजदुहिता भद्रा के (एयाइं सुभासियाइं वयणाइं सुच्चा—एतानि सुभाषितानि वचनानि श्रुत्वा) इन सुभाषित वचनोंको सुनकर (इसिस्स वेयावडियट्ठयाए ऋषे वैयावृत्याय ताय) ऋषिकी ब्राह्मणकुमारों द्वारा कृत प्रहार के निवारण रूप वैयावृत्य करनेके लिए (जक्खा—यक्षा) यक्षने (कुमारे विनिवारयंति—कुमारान् विनिवारयन्ति) उन कुमारोंको ऐसा काम करनेसे निवारित किया। यक्षा..

---

[1] अप्सरा के समान स्वरूपवान् युवती स्त्री स्वयं मिलते हुए भी उसपर लवमात्र भी मनोविकार न लाकर उसका त्याग तथा संयम के मार्ग पर अडोल रहना यही सच्चे त्याग की और सच्चे आत्मदमन की प्रतीति (निशानी) है।

ऐसा जो बहुवचनान्त यक्ष शब्दका प्रयोग किया गया है वह यक्ष परिवार की बाहुल्यता दिखाता है ।[1]

ते घोररूवा ठिग्र अतलिक्खे सुरा तहिं तं जण तालयंति ।
ते भिन्नदेहे रुहिरं वमंते, पासित्तु भद्दा इणमाहु भुज्जो ॥२५॥

अन्वयार्थ—(ते सुरा-ते सुरा) वे यक्ष (घोररूवा—घोररूपा) भयोत्पादक रूपवाले थे। (अतलिक्खे ठिग्र—अन्तरिक्षे स्थिता) आकाश मे ठहरे हुए थे। फिर भी (तत्थ—तत्र) उस यज्ञशाला मे (तं जणं—तान् जनान्) ऋषिको ताडित करनेवाले उन ब्राह्मण कुमारोको (तालयन्ति—ताडयन्ति) विविध प्रकारसे कष्ट पहुचा रहे थे। (भिन्नदेहे रुहिर वमते—भिन्नदेहान् रुधिर वमत) अनेक विध प्रहारोसे जर्जरित शरीर एव खून का वमन करते जब (ते पासित्तु-तान् दृष्ट्वा) उन कुमारोको देखकर (भुज्जो-भूय.) पुन (भद्दा इणमाहु-भद्रा इदमाह) भद्राने इस प्रकार कहा।

गिरिं नहेहिं खणह, अयं दंतेहिं खायह ।
जायतेयं पायेहिं हणह, जे भिक्खुं अवमन्नह ॥२६॥

अन्वयार्थ—(जे—ये) जिन तुम लोगोने (भिक्खु—भिक्षुम्) इस भिक्षुका (अवमन्नह—अवमन्यध्वे) अपमान किया है सो मानो तुम सबने (गिरिं नहेहिं खणह—गिरि नखै खनथ) पर्वत को नाखूनो से खोदा है। (अयं दंतेहिं खायह-अयो दंतै खादथ) लोहे का दातो से चबाया है (पायेहिं जायतेय हणह—पादाभ्याम् जाततेजस हनथ) दोनो पैरो से जाज्वल्यमान अग्निको ताडित किया है।

आसीविसो उग्गतवो महेसी घोरव्वओ घोरपरक्कमोय ।
अगणि व पक्खंद पयंगसेणा, जे भिक्खुं भत्तकाले वहेह ॥२७॥

अन्वयार्थ—क्यो कि (महेसी—महर्षि.) ये मुनिराज (आसीविसो—आशीविष) दाहक शक्ति विशिष्ट होनेसे सर्प जैसे हैं। अथवा आशीविष लब्धिवाले है—शापानुग्रहकरनेमे समर्थ है। इसका कारण यह है कि ये (उग्गतवो—उग्रतपा) उग्रतपस्वी है (च) तथा (घोरपरक्कमो—घोरपराक्रम) घोर पराक्रमशाली है—

---

१. इस स्थल पर एक ऐसी परम्परा भी चालू है कि यहा भद्राके पति सोमदेवने इन कुमारो को रोका था और देवो के बदले उसका ऐसा करना अधिक सभव भी है किन्तु मूल पाठ मे जक्खा शब्द होने से वैसा ही अर्थ किया है।

करांग मनुष्यो का भस्मसात् करनकी लब्धिवान है। इस प्रकार इन मुनि को (जा—य) जिन तुम लोगो न (भवन्तु भिक्षु) इस मुनि को (भत्तकालवहूं— भक्तकाल व्यथयथ) भिक्षाचर्या के समय में दण्डादिको द्वारा व्यथित किया है। सो उन्होंने (पयगसेणा—पतगसेना) जैसे जिस प्रकार अपने नाश के लिए (अग्गिणिवपक्कन्त—अग्निमिव प्रस्कन्त्य) अग्निमें गिरते हैं वैसा काम किया है।

सीसेण एयं सरणं उवेह, समागया सव्वजणेण तुब्भे।
जइ इच्छह जीवियं वा धणं वा लोयंपि एसो कुविओ डहेज्जा॥२८॥[1]

अन्वयार्थ—(सव्वजणेण समागया तुब्भे—सर्वजनेन समागता यूयम्) पुत्र कलत्र शिष्य आदि परिवार के साथ सम्मिलित होकर तुम सब (सीसेण—शीर्षेण) मस्तक झुकाकर (एयं सरणं उवेह—एतं शरणं उपेत) इसकी शरण को अंगीकार करो (जइ—यदि) यदि (जीवियं वा धणं वा इच्छह—जीवितं वा धनं वा इच्छथ) अपना जीवन और धन चाहते हो तो। क्यों कि (कुविओ एसो लोयंपि डहेज्जा—कुपित एष लोकमपि दहेत्) ये ऋषि यदि कुपित हो जाते हैं तो समस्त जगत को भी जला सकते हैं। अतः आप लोग अभिमान का परित्याग कर इस ऋषि के चरणों की शरण अंगीकार करो। उनके चरणों में अपना मस्तक झुकाओ इसी में तुम्हारी भलाई है।

अवहेडियपिट्ठिसउत्तमंगे, पसारिआ बाहू अकम्मचिट्ठे।
निब्भेरियच्छे रुहिरं वमंते, उड्ढंमुहे निग्गयजीहनेत्ते॥२९॥[2]
ते पासिआ खंडिअ कट्ठभूए, विमणो विसण्णो अह माहणो सो।
इसिं पसाएइ सभारियाओ हीलं च निंदं च खमाह भंते॥३०॥

अन्वयार्थ—(अह सो माहणो—अथ स ब्राह्मण) इसके बाद रुद्रदेव पुरोहित ने (अवहेडियपिट्ठिसउत्तमंगे—अवाधः कृत पृष्ठसत्समाङ्गान्) अपान्मित है पीठ से लेकर मस्तक तक के अंग जिन्होंने तथा (पसारिया बाहू—प्रसारितबाहून्) फैलाये हैं जिन्होंने बाहु जिन्होंने (अकम्मचिट्ठे—अकर्मचेष्टान्) तथा

---

१ भद्रा इन तपस्वीराजके प्रभावको जानती थी। अभी तो यह इसी प्रकार किन्तु जो अब भी क्षमा मांगेंगे और उनकी शरण में नहीं आयेंगे तो सम्भव है कि ये तपस्वी क्रुद्ध होकर सारे संसार जलाकर भस्म कर डालेंगे—ऐसा मन में ज्ञात है सब का सम्य कर इसमें इसलिए ऐसा कहा है।

२ यह सब देव प्रकोप से हुआ।

हलन-चलन आदि कर्मसे रहित है चेष्टा जिन्होकी (निब्भेरियच्छे-प्रसारिताक्षान्) तथा निश्चेष्ट होनेकी वजह से फट गये है नेत्र जिन्हो के तथा (रुहिर वमते-रुधिर वमत)खून की उल्टी करने वाले तथा(उड्ढमुहे—ऊर्ध्वमुखान्) ऊर्ध्वमुख वाले एव (निग्गहजीहे नेत्ते—निर्गत जिह्वानेत्रान्) नेत्र और जिह्वा जिनकी बाहिर निकल आयी है ऐसी स्थितिवाले मानो (कट्ठभूए-काष्ठभूतान्) काष्ठ के पुतले की तरह (ते खंडिय पडिग्रा—तान् खण्डिकान् दृष्ट्वा) उन छात्रो शिष्योको देखकर (विमणो-विमना) विमनस्क (विसण्णो-विषण्ण) तथा खेदखिन्न होकर (सभारियाओ सभार्याक) भार्या सहित होकर वह (उसिपसा-एइ—ऋषि प्रसादयति) मुनिराज को प्रसन्न करने लगे। और कहने लगे कि (भंते-भदन्त) हे भदन्त(हीला च निंदा च खमाउ—हीला च निंदा च क्षमस्व) सशिष्य मेरे द्वारा कृत हीला-अवज्ञा एव निन्दा को आप क्षमा करें।

वालेहि मूढेहि अयाणएहि, ज हीलिया तस्स खमाह भंते।
महप्पसाया इसिणो हवंति, न हु मुणी कोवपरा हवंति ॥३१॥[1]

अन्वयार्थ—हे मुने ! (वालेहि-वाले) वाल्यावस्थासम्पन्न (मूढेहि—मूढे) तथा कपाय मोहनीयके उदयसे भान भूले हैं इसीलिए(अयाणएहि—अजानद्भि) हित और अहित के विवेकसे सर्वथा विकल इन मेरे छात्रो ने (ज हीलिया—यत् हीलितम्) जो आपकी हीलना-अवज्ञा की है। सो(भंते—भदन्त)हे भदन्त ! (तस्स खमाह—तस्य क्षमस्व)आप उसको क्षमा करें। क्योकि(इसिणो महाप्प-साया हवति—ऋषय महाप्रसादा भवन्ति) ऋपिजन अपने शत्रुओ पर भी सदा कृपालु रहा करते है। (मुणी कोवपरा न हु हवन्ति—मुनय कोपपरा न खलु भवन्ति) मुनिजन अपराधी जनो पर भी क्रोध नही किया करते हैं।

पुव्वि च इण्हि च अणागयं च, मणप्पओसो न मे अत्थि कोई।
जक्खा हि वेयावडियं करेंति, तम्हा हु एए निहया कुमारा ॥३२॥

---

१ कोशल राजने तपस्वी से त्यक्ता भद्रा कुमारीका विवाह सोमदेव नामक ब्राह्मण के साथ कर उसे ऋषि—पत्नि वनाया था। उस जमाने मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के कर्म भेद तो थे किन्तु आज के समान जाति भेद न थे इसीलिए परस्पर मे वेटी व्यवहार छूटके साथ होता था ऐसा अनुमान है।

२. अपना कार्य करके यक्ष चला गया। इसके वाद मुनि श्री सावधान हुये और यह विचित्र दृश्य देखकर विस्मित हुये। उन्होने विनयवत उन ब्राह्मणो से कहा—

अन्वयार्थ—हे पुरोहित ! (पुव्विं च—पूर्व च) जिस समय तुम्हारे शिष्यों ने मेरी तर्जना की और मुझे ताडित किया उस समय (इण्हिं च—इदानीं च) और इस समय तथा (अणागय च—अनागत च) आगे भविष्यत् काल में भी (मे कोई मणप्पओसो न—मे कोऽपि मनः प्रद्वेष नास्ति) मेरे हृदय में तुम लोगों के प्रति किसी भी प्रकार का द्वेष नहीं है। तात्पर्य यह है कि आप लोगों के ऊपर न मुझे पहिले कोई द्वेष था और न अब है न आगे भी रहेगा। यदि तुम ऐसा कहो कि जब तुम इतने हमारे प्रति समभाव सम्पन्न हो तो फिर हमारे इन कुमारों को क्यों ताडित किया है इसका उत्तर यह है कि (हि जक्खा वेयावडियं करेंति—य ा मम वैयावृत्य कुर्वन्ति) यक्ष लोग मेरी वैयावृत्य (सेवा) करते हैं (तम्हा हु एए कुमारा निहया—तस्मात् एते कुमारा निहता) इस कारण उन यक्षों ने ही तुम्हारे इन कुमारों को ताडित किया है। मेरा इसमें किसी भी प्रकार का सहयोग तक भी नहीं है।

अत्थं च धम्मं च वियाणमाणा तुब्भे णवि कुप्पह भूइपण्णा।
तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो, समागया सव्वजणेण अम्हे ॥३३॥

अन्वयार्थ—हे मुनि ! (अत्थं - अर्थम्) शास्त्रों के रहस्य को (च) और (धम्म च—धर्म च) क्षान्त्यादि रूप दश प्रकार के धर्म को (वियाणमाणा विजानन्त) जानते हुए (तुब्भे—यूयम्) आप लोग (णविकुप्पए—नापि कुप्यथ) कभी भी कुपित नहीं होते हैं क्यों कि (भूइपण्णा—भूतिप्रज्ञा) आप षट्काय के जीवों की रक्षा करने वाली बुद्धि सम्पन्न हैं। इसलिए हे भदन्त ! (सव्वजणेण समागया अम्हे—सर्वजनेन समागता वयम्) स्त्री पुत्र एवं शिष्यादिकों के साथ आए हुए हम (तुब्भं तु पाए सरणं उवेमो—युष्माकं तु पादौ शरणं उपेम) आपके चरणों की शरण में आये हैं।

अच्चेमु ते महाभाग ! न ते किंचि न अच्चिमो।
भुंजाहि सालिमं कूरं नाणावंजणसंजुयं ॥३४॥

अन्वयार्थ—(महाभाग) हे महाभाग ! (ते अच्चेमु—त्वां अर्चयाम) हम लोग आपका सम्मान करते हैं (ते किंचि न अच्चिमो—ते किंचित् न अर्चयाम)

---

१ इस दर्शन में सहनशीलता के हजारों ही ज्वलन्त दृष्टान्त भरे पड़े हैं। त्यागी पुरुष की क्षमा तो सब के ऊपर अंकित है। उसमें क्रोध या चंचलता आती ही नहीं। कुमारों पर इस अवसर श्रद्धिराजका बहुत ही रंग आई। त्यागी पुरुष दूसरों को दुःख नहीं देते। यही नहीं किन्तु दूसरों को दुःखी होते भी देख नहीं सकते।

आपकी कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो हमारे लिये सम्माननीय नहीं हो, अर्थात् आपकी चरणधूली तक भी हमारे पूजनीय हैं। हे भदन्त ! (नाणावंजणसंजुअं सालिम कूरं भुंजाहि—नाना व्यंजन-संयुक्तं शालिमय कूरं भुङ्क्ष्व) नानाव्यंजनों से युक्त इस शालिमय ओदन को जो हम आपको दे रहे हैं अनुग्रह करके लीजिये।

इमं च मे अत्थि पभूयमन्नं तं भुंजसु अम्हमणुग्गहट्ठा।
वाढंति पडिच्छइ भत्तपाणं, मासस्स उ पारणए महप्पा ॥३५॥

अन्वयार्थ—(इम—इदम्) यह जो आपके समक्ष रखा हुआ (अन्नम्) अन्न है वह (मे पभूय अत्थि—मे प्रभूत अस्ति) हमारे यहां बहुत है। इसलिए आप (अम्हमणुग्गहट्ठा—अस्माकमनुग्रहार्थम्) हम पर दया करनेके लिए (तं) इस अन्नको (भुंजसु—भुङ्क्ष्व) भिक्षारूपमे ग्रहण करें। इस प्रकार उनकी भक्ति देखकर (महप्पा—महात्मा) उन महात्मा ने (मासस्स पारणए—मासस्य पारणके) एक मास के पारणाके दिन (वाढंति—वाढमिति) 'ऐसा ही हो' ऐसा कह कर (भत्तपाणं पडिच्छइ—भक्तपान प्रतीच्छति) रुद्रदेव पुरोहित द्वारा दिये गये अन्नपानको स्वीकार किया।

तहियं गंधोदयपुप्फवासं दिव्वा तहिं वसुहारा य वुट्ठा।
पहयाओ दुंदुभीओ सुरेहिं, आगासे अहोदाणं च घुट्ठं ॥३६॥

अन्वयार्थ—मुनि के पारणा के समय में (तहियं—तत्र) उस यज्ञशालामें (गंधोदयपुप्फवासं—गंधोदक पुष्पवर्षम्) गंधोदक-अचित्त सुरभित जल की एवं अचित्त पुष्पोंकी वृष्टि देवताओंने की तथा (तहिं—तत्र) उसी यज्ञशाला में (वसुहाराय वुट्ठा—वसुधारा च वृष्टा) उन्हीं देवताओंने धारारूपसे सोनैयोंकी वृष्टी की। तथा उन्हीं देवताओंने (दुंदुभीओ पहयाओ—दुन्दुभयः प्रहता) दुन्दुभी भी बजायी एव (आगासे—आकाशे) आकाशमे उन्हीं देवताओंने (अहो दाणं च घुट्ठं—अहोदान च घुष्टम्) 'अहो दान अहो दानं' ऐसी घोषणा की।

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो, न दीसइ जाइविसेस कोई।
सोवागपुत्तं हरिएससाहुं, जस्सेरिसा इड्ढि महाणुभागा ॥३७॥

अन्वयार्थ—अरे ! (सक्खं—साक्षात्) प्रत्यक्ष (तवोविसेसो—तपोविशेष· खलु) तप विशेष-ही तपस्या की विशिष्टता ही (दीसइ—दृश्यते) दीखलाई देती

देवों द्वारा बरसाए गये पुष्प तथा जलधारा निर्जीव होती है।

है। (जाइविसस काई न दीसइ—जातिविशेष कोऽपि न दृश्यते) जाति की विशेषता तो कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं हो रही है (सोवागपुत्त हरिएससाहु—श्वपाकपुत्र हरिकेशसाधु) दृष्टान्त समूह इस चाडालके पुत्र हरिकेशबल साधु को ही देखो (जस्सरिसा इड्ढि महाणुभागा—यस्येदृशी ऋद्धिमहानुभागा) जिसकी तपजनित ऐसी अतिशय महाप्रभाव सम्पन्न ऋद्धि है।

कि माहणा ! जोइ समारभंता, उदएण सोहिं बहिया विमग्गहा।
ज मग्गहा बाहिरियं विसोहिं, न तं सुदिट्ठं कुसला वयंति ॥३८॥

अन्वयार्थ—(जाइसमारभता—ज्योति समारभमाणा) इस यज्ञशालामें ज्योति अग्नि का आरम्भ करनेवाले (माहणा- ब्राह्मणा) हे ब्राह्मणो ! आप लोग (उदएण बहिया सोहिं विमग्गहा—उदकेन बहि शोधि विमार्गयथ किं) जल से बाह्य शुद्धि की तलाश कर रहे हो क्या ? इसका तात्पर्य यह है कि हे ब्राह्मणो ! आप लोग जो जल से शुद्धि कर रहे हो सो याद रखो इससे तो केवल शारीरिक शुद्धी ही हो सकती है आत्मिक नहीं। तो क्यों आप लोग इस शारीरिक शुद्धि के ही अभिलाषी हैं। आत्मिक शुद्धि के अभिलाषी नहीं हैं ? यदि आप लोग कहें कि तुम ऐसी बात क्यों कहते हो तो इसके लिए कहते हैं कि आप लोग (ज बाहिरियं विसोहिं मग्गहा—य बाह्य विशोधि मार्गयथ) जिस बाह्य विशुद्धि की गवेषणा कर रहे हो अर्थात् जिस बाह्य विशुद्धि को कर रहे हो (तं) उस बाह्य विशुद्धि को (कुसला—कुशला) तत्वज्ञ पुरुष (सुदिट्ठं न वयंति—सुदृष्ट न वदन्ति) सम्यग्दृष्ट मोक्षदायक नहीं कहते हैं।

कुसं च जूवं तणकट्ठमग्गिं, सायं च पायं उदयं फुसंता।
पाणाइ भूयाइ विहेडयंता, भुज्जो वि मंदा पकरेह पावं ॥३९॥

अन्वयार्थ-(मदा—मन्दा) धर्म और अधर्म के विवेक से विकल हे ब्राह्मणों तुम सब (भुज्जो वि—भूयो पि) व्यवहारिक कृत्यसे अतिरिक्त धार्मिक कृत्यमें भी (कुस—कुश) दर्भ (च) एवं (जूव—यूपम्) यज्ञस्तंभ (तणकट्ठ—तृण काष्ठम्) वीरणादिक तृण, लकडी आदि इंधन काष्ठ (अग्गि—अग्नि) तथा अग्नि इन सब का संचय करते हो। तथा (सायं च पायं—सायं च प्रात) सायंकाल एवं प्रातःकाल (उदयं फुसंता—उदकं स्पृशन्त) दोनों समयोंमें स्नान आदि क्रियाएं करते हो। इन पूर्वोक्त समस्त कार्योंमें (पाणाइ भूयाइ विहेडयंता—प्राणान् भूतान् विहेठयन्त) द्वीन्द्रियादिक प्राणियों के प्राणों का एवं एकेन्द्रिय रूप आदि भूतोंका विविधरीतिसे उपमर्दन होता है। फिर भी तुम

लोग इन कर्तव्योका परित्याग नही करते हो। प्रत्युत इन्ही कर्तव्यो मे रत होकर (पाव पकरेह—पाप प्रकुरुथ) पापोका उपार्जन किया करते हो।

कहं चरे भिक्खु ! वयं जयामो ? पावाइं कम्माइं पणोल्लयामो ।
अक्खाहि णो संजय ! जक्खपूइया ! कहं सुजट्ठं कुसला वयंति ॥४०॥

अन्वयार्थ--(भिक्खु—भिक्षो) हे भदन्त ! (वय कह चरे—वय कथ चराम.)यह तो कहिये कि हम लोग यज्ञके निमित्त किस तरह प्रवृत्त हो(कथ वय जयामो—कथ वय यजाम) कैसे यज्ञकर्म करे,(कह पावाइं कम्माइ पणोल्लयामो—कथ पापानि कर्माणि प्रणोदयाम)कैसे पापकर्मोको दूर करें। (जक्खपूइया सजय—यक्षपूजित सयत) यक्षोमे पूजित और सयत सावद्यकर्मनिवर्तक हे मुनिराज ! (कुसला—कुशला)तत्त्वके ज्ञाता पुरुष (सुजट्ठ—स्विष्टम्)इस यज्ञ को शोभन (कह वयति—कथ वदन्ति) कैसे कहते है यह सब (नो अक्खाहि—न:आख्याहि) आप हमे कहिये।

छज्जीवकाए असमारभंता, मोसं अदत्तं च असेवमाणा ।
परिग्गहं इत्थिओ माणमायं, एयं परिण्णाय चरंति दंता ॥४१॥

अन्वयार्थ—हे ब्राह्मणो ! मैं तुम्हारे "कहचरे" इस प्रश्न का पहले उत्तर देता हू, वह इस प्रकार है—जो मनुष्य (दता—दान्ता) जितेन्द्रिय है वे (छज्जीवकाए—षड्जीवकायान्) पृथिवी आदिक षट्कायके जीवोकी (असमारभता—असमारभमाणा) रक्षा करते हुए-उनकी विराधना न करते हुए (मोस अदत्त च असेवमाणा—मृषा अदत्त च असेवमान)मृषावाद अदत्तादान का नही सेवन करते हुए (परिग्गह इत्थिओ माणमाय—-परिग्रह स्त्रिय मान मायाम्) परिग्रह, स्त्री, मान एव माया (एय—एतत्) इनका सब ज्ञ-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से त्याग करे (चरति) यज्ञ मे प्रवृत्ति करते है। अर्थात् जिस यज्ञ मे हिंसादिक की अल्प भी सम्भावना नही है उसी यज्ञमे दान्त पुरुष प्रवृत्ति किया करते है।

सुसंवुडा पंचहिं संवरेहिं, इह जीवियं अणवकंखमाणा ।
वोसट्ठकाया सुइचत्तदेहा, महाजयं जयई जन्नसिट्ठं ॥४२॥

अन्वयार्थ—(पचहि सवरेहि—पचभि सवरै)प्राणातिपात विरमण आदि पाच प्रकारके सवरोसे (सुसवुडा—सुसवृता) जिन्होने कर्मोके आगमनरूप द्वार को बन्द कर दिया है तथा (इह) इस सासारिक (जीविय अणवकखमाणा—जीवित अनवकाक्षन्त) असयम जीवनको जो नही चाहते हैं इसीलिए (वोसकाया—व्युत्सृष्टकाया.) जिनका शारीरिक ममत्व परीषह एव उपसर्गोके आने

पर भी आगृत नहीं हो सकता है —परीपहादिके आनेपर भी जो शरीर के विनाश की चिन्ता से रहित रहते हैं और इसीलिये जो (सुदवत्तदेहा—शुचि त्यक्तदेहा) शुचि अतिचार रहित व्रतोंको पालन करनेमें विशेष उल्लाससुक्त रहा करते हैं तथा निष्प्रतिकर्म होनेसे देहको जिन्होंने छोड़ा हुआ सा कर रखा है ऐसे मुनिराज (महाजय जयन्तिश्रेष्ठ—महाजय यज्ञश्रेष्ठम्) कर्मशत्रुओंके महान् पराजयकारक यज्ञ श्रेष्ठ का-सब यज्ञों की अपेक्षा महत्तम यज्ञ का (जयइ—यजन्ति) किया करते हैं। ऐसा यज्ञ ही पापकर्मोरूप रजमल दूर करनेमें समर्थ है। तत्त्वके ज्ञाता विद्वान् ऐसे ही यज्ञको सुयज्ञ कहते हैं। इसलिए आप लोगोंको भी ऐसा यज्ञ करना चाहिए। "सुसवुडा इत्यादि पदों द्वारा कहे कय जयामो इस प्रश्नका समाधान तथा 'महाजय' इस पद द्वारा "पावाइ कम्माइं पणोल्लयामो" इस प्रश्न का समाधान किया गया है।

के ते जोई ? कि व ते जोइठाणं ?

का ते सुया ? किं व ते कारिसंग

एहा य ते कयरा सन्ति भिक्खू ?

कयरेण होमेण हुणासि जोइं ॥४३॥

अन्वयार्थ—(भिक्खू—भिक्षो) हे मुने! आपने जिस यज्ञ को करने के लिए कहा है उस यज्ञमें (ते) आपके मतसे (जोई के—ज्योतिः किम्) कौनसी अग्नि है (च) तथा (ते) आपके वहां (जोइठाणं कं—ज्योतिः स्थानं किं) अग्निकुण्ड क्या है (ते) आपने (सुया का—स्रुवः का) अग्नि में द्रव्यका प्रक्षेपण करनेके निमित्त स्रुवा किसको बताया है। (कारिसंग किंवा—किंवा तव करीषाङ्गम्) किसे आपने अग्नि को प्रज्वलित करनेके लिए कारीषगोमय के स्थानापन्न माना है (एहा य ते कयरा—एधांश्च ते कतरत्) किसको आपने इसमें जलानेके लिए इन्धन स्वरूप माना है (सन्ति का—शान्ति का) तथा पापोपशमनको हेतुभूत अध्ययन पद्धति पर क्या है और (कयरेण होमेण जोई हुणासि—कतरेण होमेन ज्योति जुहोषि) किस हवनीय द्रव्य से आप यज्ञ संपन्न करते हो। यह सब बातें न मुनिराजसे इसलिए पूछी कि प्रसिद्ध यज्ञ तो अग्नीषोमादिक आरम्भ से साध्य होता है और उसको करता आप निषेध करते हो तो आप जिस यज्ञ को करनेका विधान कर रहे हो वह भी साध्य कैसे हो सकता है ? कारण की यज्ञ करनेके सब ही उपकरण आपको दूषित दृष्ट हुए हैं।

तवो जोई जीवो जईठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्मे एहा संजमजोगसंती, होम हुणामि इसिणं पसत्थं ॥४४॥

अन्वावर्य—हे ब्राह्मणो ! हमारे उस यज्ञमे [तवो जोई जीवो जाइठाणं—तप ज्योति जीव ज्योतिस्थानम्] बाह्य और आभ्यन्तर तप ही अग्नि है जिस तरह अग्नि इन्धन को जला देती है उसी तरह तप भी कर्मरूप इंधन को जला देता है। यह जीव हवनकुण्ड है, क्योकि जीव ही तपका आश्रय है। [जोगा सुया—योगा स्रुव] मनोयोग, वचनयोग एव काययोग ये तीन योग स्रुवाके स्थानापन्न है, क्योकि उन्ही योगोद्वारा घृतके स्थानरूप शुभव्यापार जो तपरूपी अग्निको प्रदीप्त करनेमे कारण होते हैं उस तपरूप अग्निमे प्रक्षिप्त किये जाते हैं ।[सरीर कारिसग—शरीर करीषाङ्गम्] यह शरीर ही करीषाङ्ग है—अग्निके जलानेके लिये कडा स्वरूप है । शरीर के होने पर ही तपस्याका आराधन होता है, अत उस तपरूप अग्निको जलानेमे कडा के स्थानापन्न यह शरीर कहा गया है ।[कम्मे एहा—कर्माणि एधासि]ज्ञानावरणीयादि अष्टविध कर्म इस यज्ञमे जलाये जाते हैं, अत: वे इन्धन के स्थानापन्न कहे गये हैं [सजम जोग सति—सयमयोगा: शान्ति] सयम व्यापार यहां शान्ति है, क्योकि सयम से ही समस्त जीवोके उपद्रव दूर किये जाते हैं, अत उससे जीवको शान्ति मिलती है । इसीलिए हम [इसिण पसत्थ—ऋषिणा प्रशस्तम्] ऋषियोको सम्माननीय[होम हुणामि—होम जुहोमि] सम्यक्चारित्ररूप यज्ञ की आराधना करते हैं ।

के ते हरए? के य ते संतितित्थे ? कहिं सिण्हाओ व रयं जहासि ।
अक्खाहि णो संजय! जक्ख पूइया ! इच्छामु नाउं भवओ सगासे ॥४५॥

अन्वयार्थ—हे मुनिराज ! [ते हरए के—ते ह्रद क] आपके सिद्धान्तानुसार जलाशय क्या है [सतितित्थे य ते के—शान्तितीर्थ च ते किम्]जिस जगह स्नान करनेमे पापनिवृत्तिपूर्वक शाति का लाभ होता है ऐसा वह तीर्थस्थान आपके मतमे क्या माना गया है । [कह सिण्हाओ व रय जहासि—कस्मिन् स्नातो वा रजो जहासि] अथवा तुम कहाँ पर नहाकर पापरूप रजका परित्याग करते हो,

---

टिप्पणी—वेदकीय यज्ञकी तुलना जैनधर्म के सयम से की गई है। वेदकीययज्ञ के अग्नि, अग्निकुण्ड, हविष्, स्रुवा, स्रुक समिधा, तथा शान्तिमत्र ये आवश्यक अग है ।

अर्थात् किस तीर्थ में स्नान करके आप पापों से छूट जाते हो ? [तुब्भ पुच्छिया जक्खपूइया संजय—यक्षपूजित संयत] हे यक्षपूजित मुनिराज ! यह सब बातें हम [भवओ सगासे—भवत सकाशे] आपसे [नाउ—ज्ञातुम्] जाननेके लिए [इच्छामु—इच्छाम] इच्छुक हो रहे हैं सो [अक्खाहि—आख्याहि] बतलाइये।

धम्मे हरए बम्भे सन्तितित्थे, अणाइले अत्तपसन्नलेस्से।
जहिं सिण्हाओ विमलो विसुद्धो, सुसीइभूओ पजहामि दोसं ॥४६॥

अन्वयार्थ—[धम्मे हरए—धर्मो ह्रद] अहिंसा शान्तिरूप धर्म सरोवर है क्योंकि इसी धर्म से कर्मरूपी धूलि का अपहरण होता है। [बम्भे सन्तितित्थे—ब्रह्म शान्तितीर्थम्] ब्रह्मचर्य शान्तितीर्थ है, कारण कि इसके सेवन करनेसे समस्त कर्म मलों के मूलभूत राग और द्वेष समूल विनष्ट होते हैं। रागद्वेष का उन्मूलन होनेसे पुन मलोत्पत्ति की सभावना नहीं रहती है। हमारे द्वारा सेवित जो शान्तितीर्थ है वह [अणाइले—अनाविलम्] पाच आस्रवरूप कर्म-मलों से सर्वथा वर्जित है इसलिए वहां अवगाहन करनेसे [अत्तपसन्नलेस्से—आत्मप्रसन्नलेश्यम्] आत्मा की शुभलेश्याएं हो जाती हैं। [जहिं—यस्मिन्] जिस शान्तितीर्थ में [सिण्हाओ—स्नात] स्नान करके मेरा मन निमग्न बना हुआ है वह मैं [विमलो विसुद्धो—विमल विशुद्ध] विमल निर्मल भावमलरहित होता हुआ कर्ममल कलंक से रहित बनूंगा। इस तरह [सुसीइभूओ—सुशीतिभूत] शारीरिक मानसिक सतापों से वर्जित होता हुआ मैं [दोसं—दोषम्] आत्मा का विघ्न करनेवाले ज्ञानावरणीयादिक दोषोंको [पजहामि—प्रजहामि] छोड दूगा। भविष्यमें उनसे रहित हो जाऊँगा।

एयं सिणाणं कुसलेहिं दिट्ठं, महासिणाणं इसिणं पसत्थं।
जहिं सिण्हाया विमला विसुद्धा, महारिसी उत्तमं ठाणं पत्ते तिबेमि ॥४७॥

अन्वयार्थ—[कुसलेहिं—कुशल] कुशलो ने—तीर्थंकरो ने [एयं सिणाणं—

टिप्पणी—चारित्र की चिनगारी से ही हृदय परिवर्तन होता है। उसकी मलिन वृत्तियां नष्ट हो जाती हैं और वह प्रबल विरोधियों को भी क्षणमात्र में अपना सेवक बना लेती है। नानक मदिर चारित्र के नदनवन से ही शोभित होते हैं। जाति तथा कायम होनेवाले ऊंचनीच भाव चारित्रके स्वच्छ प्रवाहमें धुलकर साफ हो जाते हैं। चारित्र रूपी पारस बहुत से लोह खण्डोंको सुवर्णरूपमें बदल डालता है ऐसा मैं कहता हूं।

एतत् स्नानम्] उसी पूर्वोक्त स्नानको (इसिण पसत्थ—ऋषीणां प्रशस्तम्) ऋषियोंको मान्य (महासिणाण महास्नानम्) महास्नानस्वरूप (दिट्ठ—दृष्टम्—दिष्टम्] देखा है और कहा है (जहिं–यस्मिन्) जिसमें स्नान से (सिण्हाया-स्नान करने पर स्नाता) (महारिसी-- महर्षय) महर्षिजन (विमला विसुद्धा—विमला विशुद्धा) विमल एवं विशुद्ध होकर (उत्तम ठाणपत्ते—उत्तम स्थान प्राप्ताः) मुक्तिरूप उत्तम स्थानको प्राप्त हो जाते हैं। (त्ति बेमि–इति ब्रवीमि) ऐसा मैं महावीर भगवान के कथनानुसार कहता हूं, अर्थात् ऐसा ही वीरप्रभू ने कहा है। उसीके अनुसार मैंने कहा है। इस प्रकार हरिकेशबल मुनि ब्राह्मणों को प्रतिबोधित करके अपने स्थान पर चले गये और वहां विशिष्ट तपस्या की आराधना से कर्मों का क्षय कर वे मुक्तिको प्राप्त हुए तथा ब्राह्मणों ने भी वास्तविक ज्ञान प्राप्तकर आत्मकल्याण का मार्ग ग्रहण कर लिया।

हरिकेशबल नामक बारहवां अध्ययन समाप्त हुआ।

पूर्व—पीठिका

मुनिराज चित्र और सम्भूत मुनि

अयोध्या के राजा चन्द्रावतंसक के पुत्र राजकुमार मुनिचन्द्र ने श्रीसागरचन्द्रजी महाराज से दीक्षा ग्रहण की और कुछ समय पश्चात् गुरुजी की आज्ञा से शिष्य मण्डली सहित स्वतन्त्र विहारी होकर विहार करने लगे। एक बार विहार करते हुए वे एक भयंकर वन में चले गए। अनेक दिनों तक आहार-पानी के अभाव में एक दिन गोपालक वल्लभ नामक एक गोप के ग्राम में जा पहुँचे।

इस गोप के नन्द, सुनन्द, नन्ददत्त और नन्दप्रिय नामक चार पुत्र थे। श्री मुनिचन्द्रजी के उपदेशामृत का पान कर वे चारों विरक्त होकर प्रव्रजित हो गए।

नन्द और सुनन्द तप में लीन तो रहे, परन्तु पसीने से भीगे वस्त्रों में उन्हें ग्लानि की अनुभूति होती रही मुनि-जीवन की विरोधी अपनी इसी वृत्ति के कारण वे तप प्रभाव में मृत्यु के अनन्तर देवलोक में देव हुए किन्तु पुनः पृथ्वी पर उन्होंने अनेक जन्म धारण किये—

पहले जन्म में वे दशपुर नगर के शाण्डिल्य ब्राह्मण की दासी के जुड़वा बेटे बने और सर्प दंश द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुए।

दूसरे जन्म में वे कालिंजर पर्वत पर एक हिरनी के गर्भ से जुड़वा बच्चों के रूप में उत्पन्न हुए और एक व्याध द्वारा मारे गए।

तृतीय जन्म में गंगातट पर हंस-युगल के रूप में जन्म लेकर एक धीवर द्वारा मार दिए गए।

चौथे जन्म में दोनों के जीवों ने वाराणसी में भूतदत्त नामक चाण्डाल के घर में एक साथ जन्म लिया। चाण्डाल ने पहले उत्पन्न बालक का नाम चित्र और दूसरे का नाम सम्भूत रखा धीरे धीरे बालक बड़े हो गए।

वाराणसी के राजा शंख ने किसी असह्य अपराध के कारण अपने मन्त्री नमुचि को मृत्युदण्ड दिया। चाण्डाल भूतदत्त उसे बाँधकर नगर से दूर श्मशान में ले गया, किन्तु किसी संस्कारवश उसके हृदय में करुणा उत्पन्न हो गई

पिटपिटाकर जब सम्भूत मुनि चित्र मुनि के पास पहुंचे तो वहाँ आते ही उनका सुप्त क्रोध जागृत हो उठा और उन्होंने तप द्वारा प्राप्त तेजोलेश्या नामक शक्ति के द्वारा सारे हस्तिनापुर को संतप्त कर दिया।

संतप्त प्रजा और राजा सनत्कुमार उद्यान में मुनिराजों के पास आए आकर क्षमा याचना की और नमुचि को बंधवाकर मुनिराजों के समक्ष उपस्थित किया।

मुनिराज चित्र ने सम्भूत मुनि को शान्त किया, प्रजा को सान्त्वना दी, राजा को धर्मध्यान का आदेश दिया और दया पूर्वक नमुचि को बन्धन-मुक्त किया। इसी अवसर पर महारानी सुनन्दा ने भाव विभोर होकर मुनिराज सम्भूति के चरणों पर गिर रखकर वन्दना की। महारानी की कोमल-कान्त कुंचित केश राशि के स्पर्श ने मुनि सम्भूत के हृदय को विचलित कर दिया और वे मन ही मन कुछ सोचने लगे।

मुनिराज चित्र सम्भूत मुनि के हार्दिक विकार को तुरन्त समझ गए और उन्होंने उनको पर्याप्त समझाया किन्तु काम विकार के प्रबल आवेग में सम्भूत एक ही कामना कर रहे थे— भावी जन्म में इसी प्रकार के कोमल केशों वाली कामिनियों का सुख-स्पर्श करनेवाला चक्रवर्ती बनूं।

मुनिराज चित्र और सम्भूत मुनि मरकर सौधर्म स्वर्ग के पद्मगुल्म विमान में अनन्त वर्षों तक रहे और पुनः मुनिराज चित्र के जीव ने पुरिमताल नामक नगर के धनसार श्रेष्ठी के पुत्र के रूप में जन्म लिया और उनका नाम गुणसार रक्खा गया, जो पूर्व जन्म के पावन संस्कारों के कारण पुनः प्रव्रजित होकर मुनिराज के रूप में तप करने लगा।

मुनि सम्भूत के जीव ने काम्पिल्य नगर के राजा ब्रह्म की महारानी चुलनी के गर्भ से जन्म लिया और पूर्व तपस्या के फल से पिता की मृत्यु के अनन्तर अनेक विवाह करके चक्रवर्ती सम्राट बना।

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त को एक बार नाटक देखते हुए एक दासी ने अद्भुत सुगन्धवाला एक पुष्पों का गुलदस्ता भेंट किया जिसे सूंघते ही वे सोचने लगे 'ऐसा नाटक मैंने पहले भी देखा है, ऐसे फूल भी सूंघे हैं—पर कहाँ? कब??' और सोचते ही सोचते मूर्छित हो गए। सचेत होने पर पूर्वतप के प्रभाव से उन्हें अपने पूर्वजन्मों का स्मरण भी हो आया और वे यह भी जान गए कि चित्र इसी पृथ्वी पर पुनः मुनिराज के रूप में विद्यमान हैं। चक्रवर्ती ब्रह्मद

उनसे मिलने का उपाय सोचने लगा और उन्होने एक आधे श्लोक की रचना की जिसका अर्थ था—

हम दास, मृग, फिर हंस थे, चाण्डाल बन फिर देव थे'

चक्रवर्ती ने इस श्लोक के साथ सर्वत्र घोषणा करवाई कि जो उस श्लोक के उत्तरार्ध को पूर्ण करेगा उसे मैं अपना आधा राज्य दूगा।

मुनिवर गुणसार भी तप के प्रभाव से जान चुके थे कि मैं पूर्व जन्म मे चित्र मुनि था और मेरे भाई सम्भूत ने चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त के रूप मे जन्म लिया है। वे भी विहार करते हुए काम्पिल्य नगर के एक उद्यान मे ठहरे और उन्होने उद्यान के निकट रहट चलाते एक किसान से आधा श्लोक सुनकर उसके उत्तरार्ध की रचना की जिसका भाव था--

"है अब हमारा जन्म छटवां हम परस्पर सेव्य थे"

किसान उत्तरार्ध को बोलता हुआ राजभवन के पास से निकला और चक्रवर्ती उसे सुनते ही स्नेह वश मूर्छित हो गया। राजपुरुषों ने किसान को मारा-पीटा तो उसने बताया कि उत्तरार्ध की रचना एक मुनिराज ने की है मैंने नही।

सचेत होने पर चक्रवर्ती मुनिवर गुण सार (जो कभी चित्र मुनि थे) के पास आया और वन्दना कर स्नेह पूर्वक बोला--मुनिजीवन मे क्या रखा है? चलिए और राज्य-वैभव का आनन्द प्राप्त कीजिए। पूर्व जन्म के मुनि चित्र ने राजा को क्या उत्तर दिया यही १३वे अध्ययन का विषय है।

वासना-लिप्त अन्त करणवाले ब्रह्मदत्त ने मुनिराज के उपदेश को व्यर्थ समझा और समझाने पर भी समझा नही, अत. मुनिराज वहा से चले गए। चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त भी कुछ दिन तक कामिनियों के कोमल कुन्तलो से खेलता रहा और एक दिन मृत्यु के मुख का ग्रास बन गया। जब चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त की मृत्यु के अनन्तर आख खुली तो उसने देखा कि मैं पृथ्वी के नीचे सातवे नरक के द्वार पर खडा हूँ—वह आज भी उसी नरक मे सन्तप्त होता हुआ पश्चाताप कर रहा है।

तेरहवां अध्ययन

जाइपराजिओ खलु, कासि नियाण तु हत्थिणपुरम्मि ।
चुलणीइ बम्भदत्तो, उववन्नो पउमगुम्माओ ॥१॥[1]

अन्वयार्थ —(जाइपराजिओ—जातिपराजित) पूर्व जन्म में चाण्डाल जाति में उत्पन्न होने के कारण वाराणसी के लोगों द्वारा तिरस्कृत सम्भूत मुनि ने (हत्थिपुरम्मि नियाण कासि—हस्तिनापुरे निदानम् अकार्षीत्) हस्तिनापुर में वन्दना के समय चक्रवर्ती की स्त्री के केशों के स्पर्शजन्य सुख को अनुभव करने के कारण 'मैं आगामीभव में चक्रवर्ती होऊं' इस प्रकार का निदान बन्ध किया था। पश्चात् मरकर वे सम्भूत मुनि पद्मगुल्म विमान में देवकी पर्याय से उत्पन्न हुए, सो उस (पउम गुम्माओ-पद्मगुल्म विमान से पुनः पृथ्वी पर जन्म लेकर वे (चुलणीए बम्भदत्तो उववन्नो—चुलन्या ब्रह्मदत्त उत्पन्न) ब्रह्मराज की पत्नी चुलनी रानी की कुक्षि में ब्रह्मदत्त इस नाम से पुत्र रूप में अवतरित हुए।

कम्पिल्ले सम्भूओ चित्तो पुण जाओ पुरिमतालम्मि ।
सेट्ठिकुलम्मि विसाले, धम्मं सोऊण पव्वइओ ॥२॥[2]

अन्वयार्थ—(कम्पिल्ले—काम्पिल्ये) काम्पिल्य नाम के नगर में (सम्भूओ—सम्भूत) मुनि का जीव ब्रह्मराज और चुलनी के सबन्ध से ब्रह्मदत्त नाम से प्रसिद्ध पुत्र के रूप उत्पन्न हुआ तथा (चित्तो—चित्र) चित्र का जीव प्रथम देवलोक नलिनी गुल्म के विमान से चव कर (पुरिमतालम्मि—पुरिमतालनगर) पुरिमताल नामक नगर में (विसाले सेट्ठि कुलम्मि—विशाल श्रेष्ठीकुल) बहुधन एवं परिवार सम्पन्न एवं विशाल धनसार नामक श्रेष्ठि के कुल में गुणसार नामक पुत्र

---

१ पहले स्वर्ग के पद्मगुल्म विमान में दोनों भाई साथ साथ थे। इसके बाद ही सम्भूति जुदा हो गया। इसका कारण यह था कि उसने निदान किया था। निदान करनेसे यद्यपि उसे महाऋद्धि मिली तो सही परन्तु समृद्धि के दाहिक सुख कहां ? और आत्मशान्ति का सुख कहां ? इन दोनोंकी समानता कभी हो ही नहीं सकती।

२ यद्यपि चित्र का जन्म तो अत्यंत धनाढ्य घर में हुआ था, किन्तु धनासक्त होनेसे वह काम भोगोंसे शीघ्र ही विरक्त हो गया।

रूप से (पुणजाओ—जात') फिर उत्पन्न हुआ और (धम्म सोउण—धर्म श्रुत्वा) जिन मार्गानुसारी श्री शुभचन्द्र आचार्य के पास श्रुतचारित्र रूप धर्म का उपदेश सुनकर (पव्वइओ—प्रव्रजित) मुनि दीक्षा मे दीक्षित हो गये।

कंपिल्लम्मि य णयरे, समागया दो वि चित्तसंभूया।
सुहदुक्खफलविवाग कहंति ते इक्कमिक्कस्स ॥३॥

अन्वयार्थ—(कपिल्लम्मि य णयरे चित्तसभूया दो वि समागया—काम्पिल्ये च नगरे चित्रसभूतौ द्वौ अपि समागतौ) काम्पिल्य नगर मे चित्र का जीव मुनिराज रूप मे और सभूत का जीव ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती के रूप मे ये दोनो मिले और (ते-तौ) उन्होंने (इक्कमिक्कस्स—एकैकस्य) परस्पर (सुहदुक्खफल वाग कहति—सुख-दु ख-फल-विपाक कथयत) पुण्यपाप के फल के विपाक की कथा की।

इस गाथा मे दोनो के चित्र-सभूत ये नाम पूर्वजन्म की अपेक्षा से जानने चाहिये।

चक्कवट्टी महिड्ढिओ, बंभदत्तो महाजसो।
भायरं बहुमाणेणं, इमं वयणमव्ववी ॥४॥

अन्वयार्थ—(महिड्ढीओ—महर्द्धिक] सर्वोत्कृष्ट समृद्धि संपन्न एवं [महाजसो—महायशा) त्रिभुवन मे व्याप्त यश सम्पन्न (चक्कवट्टी बभदत्तो-चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त) चक्रवर्ती ब्रह्मदत्तने (बहुमाणेण—बहुमानेन) अतिशय आदर के साथ (भायर—भ्रातरम्) अपने बडे भाई जो श्रेष्ठिकुल मे उत्पन्न हुए थे तथा दीक्षासे अलकृत थे उनसे (इम वयणमव्ववि—इद वचन अब्रवीत्) इस प्रकार के वचन कहे—

आसिमो भायरा दो वि, अन्नमन्नवसाणुगा।
अन्नमन्नमणुरत्ता, अन्नमन्नहिएसिणो ॥५॥[1]

अन्वयार्थ—चक्रवर्तीने बडे सम्मान के साथ उनसे यह कहा कि हे मुने! (अन्नमन्नवसाणुगा दो वि—अन्योन्यवशानुगौ द्वावपि) हम तुम दोनो ही पहिले जन्ममे परस्पर वशवर्ती तथा (अन्नमन्नमणुरत्ता—अन्योन्यानुरक्तौ)

---

१. ब्रह्मदत्त को जाति-स्मरण और चित्तको अवधि ज्ञान हुआ था। उससे वे अपने अनुभवोकी बात कर रहे हैं। अवधिज्ञान उस ज्ञानको कहते हैं जिसके मर्यादा के सीमामे स्थित त्रिकाल की वातें ज्ञात हो।

आपसमें अतुल प्रेम रखनेवाले एवं (अन्नमन्नहिएसिणा — अन्योन्यहितैषिणौ) एक दूसरेके सदा हितेच्छु (भायरा आसिमा—भ्रातरौ आस्व) भाई भाई थे।

दासा दसण्णे आसी, मिया कालिंजरे नगे।
हंसा मयंगतीरे य, सोवागा कासिभूमीय ॥६॥
देवा य देवलोगम्मि, आसी अम्हे महिड्ढिया।
इमा णो छट्ठिया जाइ, अन्नमन्नेण जा विणा ॥७॥[1]

अन्वयार्थ—हम दोनों पहले (दसण्णे—दशार्णे) दशार्णदेशमें (दासा—दासौ) शाण्डिल्य ब्राह्मण की यशोमती दासी के पुत्र हुए वहां से मरकर (कालिंजरे—कालिंजरे) कालिंजर पर्वतपर (मिया—मृगौ) मृग हुए। इस जन्म से निकलकर (*मयंगतीरे हंसा—मृतगंगातीरे हंसौ*) हम मृत-गंगा नदी के किनारे हंसा के रूप में उत्पन्न हुए, पुनः (कासिभूमीय—काशिभूमौ) काशी नगरी में (सोवागा—श्वपाकौ) चांडाल (आसी आस्व) हुए। उस जन्मको छोड़कर फिर (देवलोगम्मि महिड्ढिया देवाय आसी—देवलोके महर्द्धिकौ देवौ च आस्व) सौधर्म स्वर्ग के पद्मगुल्म विमान में महर्द्धिक देव हुए फिर वहाँ से पृथ्वी पर आकर (णो—नौ) अपनी (इमा—एषा) यह (छट्ठिया जाइ—षष्ठिका जाति) छठवा जन्म है। इस जन्म में हम दोनों (अन्नमण्णेण जा विणा—अन्योन्येन विना) एक दूसरे से अलग हो गए हैं।

कम्मा नियाणप्पगडा, तुमे राय! विचिंतिया।
तेसिं फलविवागेण विप्पयोगमुवागया ॥८॥[2]

---

१ ऐसा कहकर सम्भूति ने छठे भवमें दोनोंने जुदे जुदे स्थानोंमें जन्म क्या लिए इसका कारण पूछा।

२ तपश्चर्या से पूर्व कर्मों का क्षय होता है। कर्म-क्षय होनेसे आत्मा भार मुक्त होती है और उसका विकास होता है। पुण्य-कर्म से सुन्दर सम्पत्ति मिलती है किन्तु उसमें आत्माके पापी बनने की सम्भावना है।

इसीलिए महापुरुष पुण्य की कभी भी इच्छा नहीं करते। केवल पापकर्म का क्षय ही चाहते हैं। क्योंकि पुण्य सोनेकी सांकल के समान है परन्तु सांकल चाहे वह किसी भी धातुकी क्यों न हो बंधन तो है ही।

जिसको बंधन रहित होना हो उसको सोनेकी सांकल को भी छोड़ देने की कोशिश करनी चाहिये और अनासक्त भावसे कर्मोंको भोग लेना चाहिए।

अन्वयार्थ—(राय—राजन्) हे राजन् ! गभूत के भवमे (तुमे—त्वया) तुमने (नियाणप्पगडा—निदानप्रकृतानि) सासारिक पदार्थोंको भोगनेके अभिलापारूप निदान सम्बन्धसे सपादित (कम्मा विचिनिया—कर्माणि विचिन्तितानि) निदान रूप कर्मोको उपार्जित किया । अत (तेसि फलविवागेण—तेषा फलविपाकेन । उन कर्मोके फलरूप विपाकसे (विप्पयोगमुवागया—विप्रयोगम् उपागतौ) हम तुम दोनो इस जन्म मे वियुक्त हुए है ।

सच्चसोयप्पगडा, कम्मा मए पुरा कडा ।
ते अज्ज परिभुंजामो, किं नु चित्ते वि से तहा ॥९॥

अन्वयार्थ – हे मुने ! (मए—मया) मैने (पुरा) गभूतकी मुनि के रूप मे जो (सच्च सोयप्पगडा कम्मा कडा—कटामत्यशौचप्रकृतानि कर्माणि कृतानि) असत्यभाषण का त्यागरूप तथा मायाचारी के वर्जन रूपमे प्रसिद्ध शुभ कर्म किये है (तानि कम्मा अज्ज परिभुजामो—तानि कर्माणि अद्य परिभुजे) उन कर्मोके फलको मैं इस चक्रवर्तीके पर्यायरूपमे भोग रहा हूँ । सो (चित्ते वि—चित्र अपि) चित्रके जीवरूप आप भी (से—तानि) उन चक्रवर्तीके सुखोको (तया) मेरी तरह (किं नु परिभुज्जे—किं नु परिभुक्ते) क्यो नही भोगते हैं ।

सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं, कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि ।
अत्थेहि कामेहि य उत्तमेहि, आया ममं पुण्णफलो ववेए ॥१०॥

अन्वयार्थ—राजन् (नराण—नराणा) मनुष्योका (सव्व सुचिण्ण सफल भवइ—सर्व सुचीर्णं सफल भवति) समस्त सुन्दर रीति से आचरित तप आदि कर्म सफल होते हैं (कडाण कम्माण मोक्खो न अत्थि—कृतेभ्य कर्मभ्य मोक्ष नास्ति) आचरित कर्मोसे मनुष्योका छुटकारा नही होता है, अर्थात् कृतकर्मो का फल उनको अवश्य मिलता है वे विफल नही होते है । लौकिक जनोका भी इस विपयमे ऐसा ही मन्तव्य है—

"कृतकर्मक्षयो नास्ति कल्पकोटिशतैरपि ।
अवश्यमेव भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥"

कृतकर्म कभी भी कोटीशतकल्पकालोमें भी नष्ट नही होता है । चाहे वह शुभ हो चाहे अशुभ, उसका फल तो अवश्य ही भोगना पडता है, इसलिये हे चक्रवर्तिन् (मम आया—मम आत्मा) मेरा भी आत्मा (उत्तमेहि अत्थेहि कामेहि—उत्तमै. अर्थै कामैश्च) उत्तम द्रव्य कामरूप तथा शब्दादिकोको भोगने से (पुण्णफलोववेए—पुण्यफलोपपेत:) पुण्यफलसे युक्त है ।

जाणासि सभूय ! महाणुभाग, महिड्ढीय पुण्णफलोववेय ।
चित्तपि जाणाहि तहेव राय, इड्ढि जुई तस्स वि य प्पभूया ॥११॥[1]

अन्वयार्थ—जन्मान्तर के नामसे संबोधित करते हुए मुनिराज कहते हैं कि (सभूय—सभूत) हे संभूत ! जैसे तुम अपनेको (महाणुभाग—महानुभागम्) अतिशय समृद्धिसे संपन्न एवं (महिड्ढिय—महर्द्धिकम्) चक्रवर्ती पदकी प्राप्तिसे अतिशय विभूति विशिष्ट मानकर (पुण्णफलोववेय जाणासि—पुण्यफलोपपेतम जानासि) सुकृतके फलका भोक्ता जान रहे हो । (तहेव—तथैव) उसी तरह (राय—राजन) हे राजन् ! चित्त पिजाणाहि— चित्रमपिजानिहि) मुझ चित्र के जीवको भी इसी तरह समझो (तस्स वि इड्ढीजुईय प्पभूया—तस्यापि ऋद्धि द्युति च प्रभूता) इस चित्र के जीवकी भी ऋद्धि—दासी, दास, हस्ति अश्व मणि, सुवर्ण धनधान्य आदि संपद्-एवं तेजप्रतापरूप द्युति अत्यधिक थी ।

महत्थरूवा वयणप्पभूया गाहाणुगीया नरसंघमज्झे ।
जं भिक्खुणो सीलगुणोववेया, इहज्जयते समणोम्हिजाओ ॥१२॥[2]

अन्वयार्थ -(महत्थरूवा वयणप्पभूया—महार्थरूपा वचनाल्पभूता) अनन्त द्रव्य स्यात्मक वस्तुका विषय करने वाली होने से विस्तृत अर्थवाली तथा स्वल्प अक्षर वाली ऐसी गाथा—सूत्रपद्धति (नरसंघमज्झे—नरसंघमध्ये) स्थविरोंके विपुलजनसमुदायके बीचमें (अणुगाया —अनुगीता) गाई गई (या सोच्चा—या श्रुत्वा) जिस गाथा को सुनकर (भिक्खुणो—भिक्षव) भिक्षुजन (सीलगुणोववेया—शीलगुणोपपेता) चारित्र एवं ज्ञानगुणसे युक्त बनकर (इह) इस जनशासनमें (जयते-यतंते) मोक्षप्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बनते हैं सो मैं भी "तामेव गाथा श्रुत्वा (समणोम्हि जाओ—श्रमणो जातोऽस्मि) उसी गाथा को सुनकर संसार शरीर एवं भोगोंसे विरक्त बनकर मुनि हो गया हूं । दरिद्री होने से मुनि नहीं बना हुआ हूं ।

---

१ उपरोक्त दो श्लोक चित्त मुनिने कहे थे और आज वह मुनि रूपमें था । यद्यपि इन्द्रिय निग्रह नियमादि कठिन तपश्चर्या तथा आभूषण आदि शरीर विभूषाके त्यागसे आज उसकी देह कान्ति बाहरसे साधी दिखती था फिर भी उसका आत्मओजस तो अपूर्व ही था ।

२ समृद्धि पाकर भी सन्तोष न था किन्तु यह गाथा सुनकर तो सांसारिक बंधन तत्क्षण दूर हो गये और त्याग ग्रहण किया ।

उच्चोदए महु कक्के य बंभे, पवेइया आवसहा य रम्मा ।
इमं गिहं चित्त धणप्पभूयं, पसाहि पंचालगुणोववेयं ॥१३॥

अन्वयार्थ—(उच्चोदए महु कक्के य बंभे—उच्चोदय मधु कर्क ब्रह्मा) उच्चोदय, मधु, कर्क मध्य एवं ब्रह्मा ये पाच प्रधान प्रसाद जो मेरे लिये देव कारीगरोंने बनाये है सो उनको तथा दूसरे (रम्मा आवसहा—रम्या आवसथा) और भी जो सुन्दर सुन्दर भवन हैं उनको एवं (धणप्प भूय—धनप्रभूत) प्रचुर मणि माणिक्य आदि रूप धनसे ठसाठस भरा हुआ ऐसा (इम गिहं—इदम् गृहम्) यह जो मेरा भवन है इसको कि जो (पचालगुणोववेय—पाचालगुणोपपेतम्) पचालदेशके विशिष्ट सौंदर्यादि गुणोंसे सम्पन्न है (चित्त-चित्र) हे चित्र ! आप (पसाहि—प्रसाधि) उनका उपभोग करो ।

णट्टेहिं गीएहिं य वाइएहिं, नारीजणाइं परिवारयंतो ।
भुंजाहि भोगाइं इमाइं भिक्खू, मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं ॥१४

अन्वयार्थ—(भिक्खू—भिक्षो) हे भिक्षो ! (णट्टेहिं गीएहिं य वाइएहिं—नाट्यैः गीतैश्च वादित्रैः) बत्तीस प्रकारके नाटकोंसे विविधप्रकारके गीतोंसे तथा अनेक प्रकारके वादित्रोंसे (नारीजणाइ परिवारयंतो—नारीजनान् परिवारयन्) नारीजनोंके साथ बैठकर आप (इमाइं भोगाइं भुंजाहि—इमान् भोगान् भुङ्क्ष्व) इन शब्दादिक विषय भोगोंको आनन्द के साथ भोगो, क्योंकि (मम रोयई पव्वज्जा हु दुक्खं—मह्यं रोचते प्रव्रज्या दुःखं)मुझे आपकी दीक्षा दुःखमूल ही प्रतीत होती है ।

तं पुव्वनेहेण कयाणुरागं नराहिवं कामगुणेसु गिद्धं ।
धम्मासिओ तस्स हियाणुपेही, चित्तो इमं वयण मुदाहरित्था ॥१५॥

अन्वयार्थ—(पुव्वनेहेण—पूर्वस्नेहेन) पूर्वजन्मके स्नेहसे (कयाणुरागं—कृतानुरागम्) अनुरागके आधीन बने हुए तथा (कामगुणेसु गिद्धं—कामगुणेषु गृद्धम्) सुन्दर शब्दादिक विषयो मे लोलुप हुए ऐसे (तं नराहिवं—तं नराधिपम्) उस चक्रवर्ती ब्रह्मदत्तसे (धम्मस्सिओ—धर्माश्रित) धर्ममार्गपर आरूढ हुए तथा (तस्स हियाणुपेही—तस्यहितानुप्रेक्षी) चक्रवर्तीके हितकी अभिलाषावाले (चित्तो-चित्र) चित्रके जीव मुनिराजने (इमं वयण मुदाहरित्था—इदं वचनमुदाहरत्) इस प्रकार वचन कहे—

सव्वं विलवियं गीयं,[1] सव्वं नट्टं विडम्बियं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥१६॥

अन्वयार्थ—हे चक्रवर्ती! सुनो (सव्वं—सर्वम्) समस्त (गीयं—गीत) गीत मेरी दृष्टिमें (विलवियं—विलपितम्) विलाप तुल्य हैं तथा (सव्वं नट्टं—सर्व नाट्यं) (विडम्बियं—विडम्बितम्) सब नाटक विडंबना प्राय हैं और (सव्वे आभरणा भारा—सर्वाणि आभरणानि भाराः) समस्त आभरण भारतुल्य हैं। अधिक क्या कहूं (सव्वे कामा दुहावहा—सर्वे कामा दुःखावहाः) समस्त इन्द्रियोंके विषय तो दुःखदायी ही प्रतीत होते हैं।

बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु राय ।
विरत्तकामाण तवोधणाण, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाणं ॥१७॥

अन्वयार्थ—(राय राजन्) हे चक्रवर्तिन्! (बालाभिरामेसु—बालाभिरामेषु) अज्ञानीजनोंको ही आनंदका आभास करानेवाले आत्मज्ञान विहीन प्राणियोंको ही सुहावने लगनेवाले तथा (दुहावहेसु—दुःखावहेषु) परिणाममें दुःख देनेवाले (कामगुणेसु—कामगुणेषु) मनोज्ञ शब्दादिक विषयोंमें लीन रहनेवालोंको (न तं सुहं—न तत् सुखम्) वह सुख नहीं है। (जं—यत्) जो सुख (सीलगुणे रयाणं सीलगुणरतानाम्) चारित्रमें निरत तथा (विरत्तकामाण—विरक्त-कामानाम्) कामगुणोंके परित्यागी और (तवोधणाण—तपोधनानाम्) तप ही है धन जिनका ऐसे (भिक्खुणं—भिक्षूणाम्) भिक्षुओंको प्राप्त होता है। कहा भी है—

यच्च कामसुखं लोके, यच्च दिव्यं महत्सुखम् ।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते, नार्हतः षोडशीं कलाम् ॥

जो सुख काम-जनित होता है एवं जो देवोंका महान् सुख माना जाता है वे दोनों ही सुख तृष्णाक्षयसे जनित सुखके सामने सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं।

---

[1] यह सत्य संसार ही जहां एक महान् नाटक है, वहाँ दूसरे नाटक क्या रुचें? जिस जगह कुछ समय पहले संगीत तथा नृत्य हो रहे थे वहीं कुछ ही समय बाद हाहाकार भरा करुण क्रन्दन सुनाई पड़ता है ऐसी परिस्थिति में संगीत किस मान? आभूषण केवल चित्तवृत्तिको पुष्ट करनेवाले तिनौन हैं। उनमें ममत्वभावका मोह कैसा? आग तो आधि, व्याधि एवं उपाधि इन तीनों तापों के कारण हैं (तो एवं) दुःखों के मूल में सुख कहीं से हो सकता है।

नरिंद ! जाई ग्रहमा नराणं, सोवागजाई दुहओ गयाणं ।
जहि वयं सव्वजणस्स वेसा, वसीय सोवागणिवेसणेसु ॥१८॥

अन्वयार्थ—(नरिंद—नरेन्द्र)हे चक्रवर्तिन् । (नराण ग्रहमा जाई सोवाग जाई—नराणा मध्ये अधमा जाति श्वपाकजाति)ससारमे मनुष्य जातिमे यदि कोई अधम-निकृष्ट जाति है तो वह चाडाल जाति है। (जहि वय गयाण दुहाओ—यस्मिन् गतयो कि अभूत् इति स्मरसि—उसमे रहनेवाले हम लोगो की क्या दशा थी यह बात आपको ज्ञात नही हैं । वहाँ हम दोनो (सव्व-जणस्स वेसा—सर्वजनस्य द्वेष्यौ) सर्वजनोंके लिये उस समय द्वेषी बने रहते थे और इसी स्थितिमे (सोवागणि वेसणेसु वसीय—श्वपाक निवेशनेषु अवसाव) चांडाल के घरमे रहते थे ।

तीसे य जाईय उ पावियाए, वुच्छामु सोवागणिवेसणेसु ।
सव्वस्स लोगस्स दुगुंछणिज्जा, इहं तु कम्माइं पुरेकडाइं ॥

अन्वयार्थ – (य च)पुन (पावियाए तीसे जाई य सव्वस्स लोगस्स दुगुंछ-णिज्जा सोवागणिवेसणेसु वुच्छामु—पापिकायाम् तस्याम् जात्याम् सर्वस्य लोकस्य जुगुप्सनीयो आवाम् श्वपाक निवेशनेषु उषितौ)निन्दनीय उसी चाँडाल जाति मे सब लोगो द्वारा घृणित एव अस्पृश्य समझे जाते हुए हम लोग घरमे रहे थे (तु)परन्तु (इह—इह) अब इस जन्म मे (पुरेकडाइ कम्माइ —पुराकृतानि कर्माणि उदितानि) पूर्वजन्मो मे उपार्जित विशिष्ट जात्यादिक के कारणभूत कर्म-शुभा- नुष्ठान्-हम लोगोके उदयमे आए हुए हैं ।

सो दाणिसि राय ! महाणुभागो, महिड्ढिओ पुण्णफलोववेओ ।
चइत्तु भोगाइं असासयाइं आयाणहेऊ अभिनिक्खमाहि ॥२०॥

---

१७ चाडल जातिका अर्थ यहा चाँडाल कर्म करनेवाले मे हैं। जाति से तो कोई ऊच-नीच होता ही नही । कर्म (कृति) से ऊचा नीचापन आता है । यदि उत्तम साधन पाकर भी पिछले भवमे की हुई गफलत इस समय पुन दुहराई तो आत्मविकास के बदले पतित हो जाओगे—इसीलिए पूर्व भवकी बातें याद दिलाई है ।

इसी चाडाल जन्ममे (पर्वत पर) जैन साधु का सत्सग मिलनेसे त्यागी होकर हमने जो शुद्ध कर्म किये थे उन्ही का यह सुन्दर फल हमको मिला है उस जमाने मे ब्राह्मणो ने चाण्डालो के समानता का अधिकार छीन लिया था ।

अन्वयार्थ—(राय—राजन्) हे चक्रवर्ती ! जो आप उस समय सभूत नाम के मुनि थे वही आप (नाणिसि—इदानीम्) इस समय(महाणुभाओ महिड्ढओ पुण्णफलोववेओ—महानुभाव महर्द्धिक पुण्यफलोपपत)महाप्रभावशाली षटखड के अधिपति चक्रवर्ती हुए हो यही पूर्व सुकृत का फल है। जिसका आप इस समय भोग रहे हो। अब आपका कर्तव्य है कि आप(असासयाइ—अशाश्वतान् क्षणभगुर(भोगाइ—भोगान्)इन मनोज्ञ शब्दादिक भोगो का(चइत्तु—त्यक्त्वा) परित्याग कर (आयाणहेऊ—आदानहेतो) चारित्र धर्म को पालन करने के निमित्त (अभिनिक्खमाहि—अभिनिष्काम) दीक्षा धारण करो।

इह जीविए राय ! असासयम्मि, धणियं तु पुण्णाइ अकुव्वमाणो।
सो सोयई मच्चु मुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परंमिलोए॥२१॥

अन्वयार्थ—(राय-राजन्)हे राजन् ! (असासयम्मि इह जीविए—अशाश्वत इह जीविते) क्षणभगुर इस जीवन में जो मनुष्य (धणियं—अधिकम्) निरतर (पुण्णाइ अकुव्वमाणो—पुण्यानि अकुर्वाणः)पुण्य कर्मों को नहीं करता है(सो—स) वह मनुष्य (मुच्चुमुहोवणीए—मृत्युमुखोपनीत) मृत्यु के मुख में जब पहुँचता है तब(अम्मिलोए सोयइ—अस्मिन् लोके शोचति)इस लोकमें तो चिंता एव शोक करता है परन्तु (परंमि लोए—परस्मिन् लोके अपि)जब परलोक में भी जाता है तब भी (धम्म अकाऊण—धर्म अकृत्वा) मैंने धर्म नहीं किया है ऐसा विचार करके रात दिन बड़ा दुःखी ही होता रहता है।

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं णेइ हु अंतकाले।
ण तस्स माया व पिया व भाया, कालम्मि तम्मं सहरा भवंति॥२२॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (इह)इस ससारमें (सीहो—सिंह) सिंह (मियं गहाय णेइ—मृग गृहीत्वा नयति)मृगको पकड़कर ले जाता है—और उसे मार डालता है वहाँ उसकी रक्षा करनेवाला कोई नहीं होता है उसी तरह (अन्तकाले)मृत्युके अवसरमे (मुच्चू—मृत्यु) काल
पुरुषको (णेई-नयति) परलोकमे ले जाता है। (तम्मं कालम्मि—तस्मिन् काले) उस समय(माया व पिया व भाया—माता वा पिता वा भ्राता वा)माता पिता एव भाई (तस्स—तस्य) उस म्रियमाण जीवके (असहरा भवति—असहरा न भवन्ति) दुःखको दूर करनेवाले नहीं होते हैं— मृत्युभयसे रक्षा करनेमे समर्थ नहीं होते।

न तस्स दुक्खं विभयंति नाइओ, न मित्तवग्गा न सुया न बांधवा ।
इक्को सयं पच्चणुहोइ दुक्खं, कत्तारमेवं अणुजाइ कम्मं ॥२३॥[1]

अन्वयार्थ–(तस्स—तस्य)मरते हुए व्यक्तिको तत्काल प्राप्त(दुक्ख—दुःखम्) दुःखको—शारीरिक एवं मानसिक क्लेशको (नाइओ न विभयन्ति—ज्ञातयो न विभजन्ति) न अपने जन विभक्त करते हैं (न मित्तवग्गा न सुया न बांधवा—न मित्रवर्गा न सुता न बान्धवा) न मित्रवर्ग न संतान और न बन्धुजन विभक्त करते हैं, किन्तु (इक्को सयं दुक्खं पच्चणुहोइ—एकः स्वयं दुःखं प्रत्यनुभवति) अकेला वही एक जीव पापकर्म करनेवाला प्राणी ही स्वयं दुःखको अर्थात् कर्म विपाक जनित क्लेशको भोगता है, क्योंकि (कम्म—कर्म) कर्म (कत्तारमेव अणुजाइ—कर्तारमेवानुयाति) कर्ताके साथ ही जाता है, ऐसा नियम है ।

चिच्चा दुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गेहं धण-धन्नं च सव्वं ।
सकम्म विइओ अवसो पयाइ, परं भवं सुंदरं पावगं वा ॥२४॥[2]

अन्वयार्थ—(दुपयं—द्विपदम्) भार्या आदिकको (चउप्पयं च—चतुष्पदम्) हस्ती अश्व आदिको (क्षेत्रं गेहं धणधन्नं सव्वं च चिच्चा—क्षेत्रं गेहं धनधान्यं सर्वंत्यक्त्वा) क्षेत्रको घरको सुवर्णरजत आदि धनको शालि—चावल गेहूं आदि धान्यो को छोडकर (अवसो—अवश) पराधीन वह जीव (सकम्म विइओ—स्वकर्म द्वितीय) अपने द्वारा कृत शुभाशुभ कर्मके अनुसार (सुन्दर—सुन्दरम्) देव सम्बन्धी तथा (पावगं वा—पापकं वा) नारकादि सम्बन्धी (परं भवं पयाइ-परं भवं प्रयाति) अन्य जन्मको प्राप्त करता है ।

तं इक्कगं तुच्छं सरीरगं से, चिईगयं दहिय उ पावगेणं ।
भज्जा य पुत्ता वि य णायओ य, दायारमण्णं अणुसंकमंति ॥२५॥[3]

---

१ कर्म ऐसी चीज है कि उसका फल उसके कर्ता को ही मिलता है। उसमे अपनी जीवात्मा के सिवाय कोई कुछ भी न्यूनाधिक नही कर सकता। इसी दृष्टिसे यह कहा गया है कि तुम्ही तुम्हारा बन्ध या मोक्ष कर सकते हो ।

२ यदि शुभ कर्म होंगे तो अच्छी गति होती है और अशुभ कर्मो के योग से अशुभ गति होती है।

३ इस संसार मे सब कोई अपनी स्वार्थ-सिद्धि तक ही सम्बन्ध रखते हैं। अपना स्वार्थ सिद्ध हुआ कि फिर कोई पास खडा नही होता। दूसरे की सेवामे लग जाते हैं।

अन्वयाथ—जो पति अतिशय प्रिय था (तस्स—तस्य) मृतक के उस (इक्कं—एकम्) अकेले (तुच्छ सरीरग—तुच्छ शरीरकम्) निर्जीव शरीरको (चिईगय–चितिगतम्)चिताम रखकर एव(पावोण दहिय—पावकेन दग्ध्वा)फिर अग्निसे जलाकर (भज्जाय पुत्ता वि य णायओ य—भार्या च पुत्रोऽपि च ज्ञात यश्च) पत्नी पुत्र एव स्वजन (अण्ण दायार अणुसकमन्ति—अन्य दातार अनु सक्रामन्ति) अपने काम आनेवाले अन्यजनका सहारा ले लेते हैं।

उवणिज्जइ जीवियमप्पमाय, वन्न जरा हरइ नरस्स राय।
पचालराया! वयण सुणाहि, मा कासि कम्माइ महालयाइ ।।२६।।[1]

अन्वयाथ—(राय—राजन्) हे राजन्! (जीविय—जीवितम्) यह मनुष्य जीवन (अप्पमाय—अप्रमाद) बिना किसी आनाकानीरूप प्रमादके समय-समय मरणरूप अवीचिमरण अर्थात् क्षणक्षणमे आयुष्यका कम होना द्वारा (उवणिज्जइ—उपनीयते) मृत्युके सम्मुख ले जाया जाता है। तथा जीवित अवस्थामे भी (जरा—जरा) वृद्धावस्था (नरस्स वन्न हरइ—नरस्य वर्ण हरति) इस प्रकार मनुष्यके शारीरिक लावण्यको नाश करती रहती है। इसलिए (पचालराया—पचालराज) हे पचाल देश के राजा! मेरे (वयण—वचनम्) हितकर वचन (सुणाहि—शृणुष्व) सुनो—वे वचन ये हैं कि आप कमसे कम (महालयाइ कम्माइ मा कासि—महानयानि कर्माणि माकार्षि) पचेन्द्रिय वधादिक बुरे कर्मों को मत करो जो कि भयकर नरक मे पहुँचानेवाले होते हैं।

अहपि जाणामि जहे ह साहू, ज मे तुम साहेसि वक्क मेय।
भोगा इमे सगकरा हवति, जे दुज्जया अज्जो! अम्हारिसेहि ।।२७।।

अन्वयाथ—(साहू—साधो) मुनिराज! (जहा इह तुम मे साहसि—यथा इह त्व मे साधयसि) जिस तरह आप सासारिक पदार्थो की अनित्यताके विषयमे मुझे समझा रहे हैं उस तरह (अहपि जाणामि—अहमपि जानामि) मैं भी जानता हूँ कि (इमे—इमे) ये (भोगा—भोगा) सासारिक भोग (सगकरा हवति—सगकरा भवन्ति) धर्मक्रियाके प्रतिबन्धक हैं। परन्तु (अज्जो—आर्य) हे आर्य! (जे भोगा—ये भोगा) जो भोग होते हैं वे (अम्हारिसेहि—दुज्जया—अस्मादृशै दुर्जया) हमारे जैसा से दुर्जय हुआ करते हैं अत मैं उनको छोडने मे असमर्थ हूँ।

---

[1] वासना जगने पर भी यदि गम्भीर चिन्तन द्वारा उसका निवारण किया जाय तो पतन नहीं हो सकता।

हत्थिणपुरम्मि चित्ता ! दट्ठूण नरवइं महिड्ढियं ।
कामभोगेसु गिद्धेणं नियाण मसुह कड ॥२८॥

तस्स मे अप्पडिकंतस्स, इमं एयारिसं फलं ।
जाणमाणे वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ ॥२९॥

अन्वयार्थ—(चित्ता—चित्र) हे चित्रमुने ! (हत्थिणपुरम्मि महिड्ढिय नरवइ दट्ठूण—हस्तिनापुरे महर्द्धिक नरपति दृष्ट्वा) मैंने सभूतमुनिके भवमें सनत्कुमार चक्रवर्तीको महा ऋद्धिसपन्न देखकर (कामभोगेसु गिद्धेण—कामभोगेषु गृद्धेन) कामभोगमें आसक्त बनते हुए उस समय (असुह नियाण —अशुभ निदानम्) अशुभ निदान (कड—कृतम्) किया-यद्यपि तब आपने मुझे ऐसा करना तुमको उचित नहीं है" इस प्रकार समझाया भी था, परन्तु (अप्पडिकतस्स तस्स मे—अप्रतिक्रान्तस्य तस्य मे) मैंने उस निदानसे अपने आपको प्रतिनिवृत्त नही किया था। (इम एयारिस फल—इद एतादृश फलम्) यह उसका मुझे ऐसा फल मिला है (यत्) जो (धम्म जाणमाणे वि—धर्म जानन् अपि) श्रुतचारित्ररूप धर्मको जानता हुआ भी (कामभोगेसु मुच्छिओ—कामभोगेषु मूर्च्छित)मैं कामभोगो मे मूर्च्छित बना हुआ हूँ।

नागो जहा पंकजलावसण्णो, दट्ठु थलं नाभिसमेइ तीरं ।
एवं वयं कामगुणेसु गिद्धा, न भिक्खुणो मग्गमणुव्वयामो ॥३०॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा)(जैसे पकजलावसण्णो —पकजलावसन्न)जलसहित कीचडमे फसा हुआ (नागो—गज) हस्ती (थल—स्थलम्) स्थल देखकर भी (तीर नाभिसमेइ—तीर नाभिसमेति) तीर पर आने मे असमर्थ होता है (एव) उसी प्रकार(कामगुणेसु गिद्धा—कामगुणेषु गृद्धा) शब्दादिक विषयोमे आसक्त बने हुए (वय—वयम्) हम लोग धर्मको जानते हुए भी (भिक्खुणो मग्ग न अणुव्वयामो—भिक्षो मार्ग न अनुव्रजाम) साधुके मार्गका अनुसरण नही कर सकते हैं—

अच्चेइ कालो तरंति राईओ, न यावि भोगा पुरिसाण निच्चा ।
उवेच्च भोगा पुरिसं चयंति, दुमं जहा खीणफलं व पक्खी ॥३१॥[1]

अन्वयार्थ—राजन् ! देखो यह (कालो अच्चेइ—काल अत्येति) आयुका समय

---

१. युवावस्था मे जो भोग-विलास बडे प्यारे लगते थे। वे ही वृद्धावस्था मे नीरस लगते हैं।

निकलता जा रहा है। (राइओ तरति—रात्रय त्वरन्त) ये रातें और दिन भी बड़े वेग से व्यतीत हो रहे हैं। (खीणफलं दुम जहा पक्खी चयन्ति तहा भोगा उवच्च पुरिसं चयंति—क्षीणफलं द्रुम यथा पक्षिण त्यजन्ति तथा भोगा उपेत्य पुरुष त्यजन्ति) जिस प्रकार फलहीन वृक्ष को पक्षी त्याग कर देते हैं उसी प्रकार क्षीण पुरुष को ये भोग भी प्राप्त होकर परित्याग कर देते हैं।

काम में तो सबको आनन्द होता है पर ह्रास में आनन्द कैसा ? चिन्ता होनी चाहिए कि हमारा एक भी आयु का क्षण व्यर्थ व्यतीत न हो जावे। यदि तुम्हारा इस पर ऐसा कहना हो कि भले आयु व्यतीत होती रहे—रात्रि एवं दिवस भी योंही निकलते जायें तो हमको इनसे क्या प्रयोजन जिनसे हमको प्रयोजन है वे भोग तो हमारे आधीन हैं सो राजन् ! तुम्हारी यह मान्यता बिलकुल गलत है क्योंकि ये भोग भी तो नित्य नहीं हैं।

क्षण याम दिवसमास-च्छलेन, गच्छन्ति जीवितदलानि।
विद्वानपि खलु कथमिह, गच्छसि निद्रावश रात्रौ॥

जब क्षण याम दिवस एवं मास के बहाने आयु ही व्यतीत होती रहती है तो बड़े अचरज की बात है कि विद्वानों को अपनी इस ऐसी परिस्थिति में निद्रा भी कैसे आती है।

जइ सि भोगे चइउ असत्तो, अज्जाइ कम्माइ करेहि राय।
धम्मे ठिओ सव्वपयाणुकंपी, तो होहिसि देवो इओ विउव्वी॥३२॥

अन्वयार्थ—(राय—राजन्) हे राजन् ! (जइ भोगे चइउ असत्तो सि—यदि भोगान् त्यक्तु अशक्त असि) यदि आप शब्दादिक विषयों को छोड़ने में अपने आपको अशक्त मानते हो तो (धम्मे ठिओ—धर्मे स्थित) सम्यग्दृष्टि आदि शिष्ट जनों द्वारा आचरित आचाररूप गृहस्थ धर्म में स्थित होते हुए तथा (सव्वपयाणुकंपी—सर्वप्रजानुकंपि) सब प्राणियों पर दयाभाव रखते हुए (अज्जाइ कम्माइ करेहि—आर्याणि कर्माणि कुरुष्व) शिष्ट जनोचित दया आदि सत्कर्मों को करते रहो। (इओ—इत) इससे आप (विउव्वी) विक्रिया शक्ति विशिष्ट (देवो—देव) देव (इओ—इत) मनुष्य पर्याय को छोड़कर (भविस्सह—भविष्यसि) हो जाओगे।[1]

---

[1] गृहस्थाश्रम में भी यथाशक्ति त्याग किया जाय तो उससे देवत्व प्राप्त होता है।

न तुज्झ भोगे चइऊण बुद्धी गिद्धोसि आरंभपरिग्गहेसु ।
मोहं कओ इत्तिओ विप्पलावो, गच्छामि राय आमंति ओसि ॥३३॥

अन्वयार्थ—(राय-राजन्) हे राजन् ! (तुज्झ बुद्धि भोगे चइऊण न—तव बुद्धि भोगान् त्यक्तु न) आपकी बुद्धि भोगोको छोडनेकी नही है, आप तो (आरम परिग्गहेसु गिद्धोसि—आरम्भपरिग्रहेपु गृद्ध असि) आरम्भ सावद्य—व्यापारो मे एव सचित्त अचित्त तथा सचित्ताचित्त वस्तुओ को सग्रह करने रूप परिग्रह मे ही लोलुप बने हुए हो (इत्तिओ विप्पलाओ मोहकओ—एतावान् विप्रलाप मोह कृत) अभीतक जो आपको इतना समझाया गया है वह सब व्यर्थ ही सिद्ध हुआ है, अत हे राजन् (गच्छामि) मै अब यहां से जाता हू ! (आमतिओसि—आमन्त्रितोऽसि) मैं इसके लिये आपसे पूछता हू ।

पंचाल रायावि य बभदत्तो, साहुस्स तस्स वयणं अकाउं ।
अणुत्तरे भुंजिय कामभोगे, अणुत्तरे सो नरए पविट्ठो ॥३४॥

अन्वयार्थ—(पचालरायाविय बभदत्तो—पचालराजा स ब्रह्मदत्त अपि) पचाल देशका अधिपति वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती भी (साहुस्स वयण अकाउ—साधो तस्य वचन अकृत्वा) भवान्तरके भ्राता चित्रमुनि के प्रव्रज्याग्रहण तथा गृहस्थ धर्मको आराधना करनेरूप वचन के पालन करने मे असमर्थ अपने को जाहिर करके एव(अणुत्तरे कामभोगे भुजिय - अनुत्तरान् कामभोगान् भुक्त्वा) सर्वोत्कृष्ट शब्दादिक विषय-भोगो का भोग करके अन्त मे मरकर (अणुत्तरे नरए पविट्ठो—अनुत्तरे नरके प्रविष्ट) सकल नरको मे प्रधान ऐसे सातवे नरकके अप्रतिष्ठान नामके नरकावास मे जा पहुचा ।

चित्तो वि कामेहिं विरत्तकामो, उदत्तचारित्ततवो तवस्सी ।
अणुत्तर सजम पालइत्ता, अणुत्तर सिद्धिगइं गओ ॥३५॥ त्तिवेमि

अन्वयार्थ—(कामेहिं विरत्तकामो—कामेभ्य विरक्तकाम) मनोज्ञ शब्दादिक विषयो से विरक्त(उदत्तचारित्त तवो—उदारचारित्रतप) तथा सर्वोत्कृष्ट सर्वविरतिरूप चारित्र एव बारह प्रकारके तपोवाले ऐसे वे (तवस्सी– तपस्वी) तपस्वी चित्रमुनिराज (अणुत्त र सजम पालइत्ता—अनुत्तर सयम पालयित्वा) अतिचार रहित होने से सर्वोत्कृष्ट सर्वविरतिरूप सयमकी पालना करके (अणुत्तर सिद्धिगइ गओ—अनुत्तरा सिद्धिगर्तिगत) लोकोत्तर सिद्धिरूप गतिको प्राप्त हो गये । (त्तिवेमि—इति ब्रवीमि) सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि—हे जबू ! मैंने जैसा भगवान महावीर से सुना है वैसा यह तुमसे कहा है ।

चौदहवां-अध्ययन

पूर्व पीठिका

तेरहवें अध्ययन के आरम्भ म हम काम्पिल्य नगर के मुनिवर सागरचद्र जी क गिष्य मुनिराज श्री मुनिचद्रजी का परिचय प्राप्त कर चुके हैं। उन्होंने गोपाल-वल्लभ के चार पुत्र नन्द, सुनन्द नन्ददत्त और नन्दप्रिय को दीक्षा देकर उनके लिए मोक्ष-माग प्रदर्शित किया था।

नन्द ग्रौर सुनन्द दोनो की साधना-यात्रा का वणन हम पढ चुके हैं। नन्दत्त ग्रौर नन्प्रिय ने भी कठोर साधना करत हुए जो पुण्यार्जित किया था उसके फल से वे भी मृत्यु क ग्रनन्तर ग्रनन्त वर्षो तक देवलोक के ग्रानन्द का उपभोग कर क्षितिप्रतिष्ठित नामक नगर के एक समृद्ध सेठ के घर में युगल-पुत्र के रूप म उत्पन्न हुए।

वडे होने पर उनकी चार व्यापारियों से मित्रता होगई, छहो मित्र धम ध्यान करते हुए ससार से विरक्त होकर मुनि जीवन म प्रविष्ट हुए। इनम से नन्दत्त ग्रौर नन्प्रिय एव दो ग्रय मुनियों की साधना गुद्ध थी किन्तु दो मुनि विधिवत् सयमी जीवन का पालन नहीं कर रहे थ।

नन्दत्त ग्रौर नन्दप्रिय देवलाक के भनिनीगुल्म नामक विमान म ही रहत रहे ग्रौर गेप चारों मित्रों के जीव धरती पर ग्रागए। इनम से शिथिलाचारीके जीव स्त्रिया बने ग्रौर सुदृढ ग्राचार क जीवों ने पुरुषरूप धारण किया।

पुरुप रूप में प्रथम जीव इपुकार नगर म इपुकार राजा हुग्रा ग्रौर दूसरा जीव उसकी कमलावती पत्नी के रप में उसके पास ग्रा पहुचा।

पुरुपरूप म दूसरेजीव ने भृगुपुरोहित के रूप म जन्म लिया ग्रौर दूसरा स्त्री रूपजीव यशा नामकी कन्या के रूप म उत्पन्न होकर भृगु पुरोहित से पत्नी रूप मे ग्रा मिला।

भृगुपुरोहित निस्सन्तान थे ग्रत व तथा उनकी पत्नी यशा दुखी रहा करते थे। एक दिन नन्ददत्त ग्रौर नन्दप्रिय दोना देव भृगुपुरोहित के पास जन मुनियों के वेश में ग्राए। उसने उनका ग्राहार पानी से स्वागत किया। दोनों देवों ने उससे कहा—

'पुरोहित श्रेष्ठ ! तुम्हारे घर मे शीघ्र ही दो बालक जन्म लेंगे, किन्तु वे बाल्यकाल मे ही जैन मुनि हो जाएगे, उनके भावना-पथमे आपकी ओर न कोई विघ्न न होना चाहिए। देव चले गए और भृगु पुरोहित उस दिन की प्रतीक्षा करने लगे।

कुछ ही समय के अनन्तर नन्ददत्त और नन्दप्रिय देव भृगु पुरोहित के पुत्रो के रूप मे पृथ्वी पर अवतरित हुए। पति-पत्नी दोनो प्रसन्न हो गए। बच्चे बढने लगे और किशोरावस्था मे पहुँच गए।

भृगुपुरोहित ने सोचा मैं अपने बच्चो को जैन मुनीश्वरो के सम्पर्क मे सदा दूर ही रखूगा, न ये उनके सम्पर्क मे आएगे और न ही साधु बनेगे, अत. वह नगर को छोडकर पास के कर्पट नामक ग्राम मे रहने लगा। उसने पुत्रो को यह भी बताया कि—

'बच्चो ! एक जैन साधु होते है, जो मुख पर कपडा बाधे रहते है और रजोहरण लिये रहते हैं, उनके पास एक झोली होती उसमे वे घातक शस्त्र लिये रहते है। वे बच्चो को झोली मे भरकर ले जाते और मार देते है, अत ऐसे साधुओ से तुम सदा दूर ही रहना। बच्चे मान गए और जैन मुनीश्वरो से भय खाने लगे।

एक दिन दोनो बालक ग्राम मे बाहर खेलने के लिये गए हुए थे। इसी समय दो जैन मुनीश्वर विहार करते हुए कर्पट ग्राम मे भृगुपुरोहित के द्वार पर ही आ पहुँचे। भृगु ने उनको आहार-पानी देकर सन्तुष्ट किया और यह भी कहा

'इस ग्राम के लोग साधु-द्वेषी है, यहाँ के बच्चे साधुओ का निरादर करते है, अत. आप शीघ्र ही ग्राम से बाहर चले जाए, कही एकान्त मे जाकर आहार पानी कर लेना।'

मुनीश्वर ग्राम से चल दिये, सयोगवशात् वे उधर ही गए जिधर भृगु के बालक खेलने गए थे। दोनो बालको ने जैन मुनीश्वरो को आते हुए देखा और वे भय के कारण एक वृक्ष पर चढ गए। जैन मुनीश्वर भी उसी वृक्ष के नीचे आकर बैठ गए और रजोहरण से स्थान को शुद्ध कर झोली से आहार-पानी निकाल कर आहार करने लगे।

वृक्ष पर चढे हुए बच्चो ने उनकी समस्त क्रियाओ को देखा और सोचा हमारे पिता को व्यर्थ का भ्रम हो गया था। इनकी झोली मे तो कोई शस्त्र

नहीं। वे वृक्ष से नीचे उतर आए और दोनों ने मुनिश्वरों की सादर वन्दना की और अपने पिता की कही हुई बातें उन्हें बताईं।

मुनीश्वरों ने उन्हें अहिंसा धर्म का उपदेश दिया और बालक उनसे अत्यन्त प्रभावित हुए और बोले — सम्भवतः आप इषुकार नगर में जा रहे हैं हम माता पिता की आज्ञा लेकर शीघ्र ही आपकी सेवा में उपस्थित होंगे। हमें भी धर्म मार्ग का ज्ञान देकर अपना अनुगामी बनाने की कृपा करें।

मुनीश्वर इषुकार नगर में चले गए। बालक घर आ गए। बालकों ने अपने माता पिता के साथ जो वैराग्य चर्चा की उनकी वैराग्यवृत्ति से प्रभावित होकर भृगुपुरोहित उसकी पत्नी यशा भी पुत्रों के साथ ही दीक्षित होकर साधना करने लगे। इस अवसर पर राजा इषुकार और उसकी रानी कमलावती भी प्रव्रज्या ग्रहण कर मुनि जीवन में प्रविष्ट हुए।

इन छः जीवों के इसी आख्यान का वर्णन १४वें अध्ययन में प्रस्तुत किया गया है।
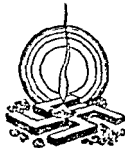
चौदहवाँ अध्ययन

देवा भवित्ताण पुरेभवम्मि केईचुया एगविमाणवासी ।
पुरे पुराणे इसुयारनामे, खाए समिद्धे सुरलोगरम्मे ॥१॥

अन्वयार्थ –(पुरेभवम्मि—पुराभवे)पूर्व भव मे (एगविमाणवासी—एक-विमान वासिन) सौधर्मदेवलोकातर्गत नलिनी गुल्म नामक विमानके निवास (देवाभविताण—देवा.भूत्वा)हम देव की पर्यायमे थे,वहा के भोगोको भोगकर फिर वहा से (केई—केऽपि) कोई-अर्थात् छह देव(चुया—च्युता) पृथ्वी पर आए और (सुरलोगरम्मे—सुरलोकरम्ये) देवलोक जैसे मनोरम तथा (समिद्धे—समृद्धे) धनधान्यसे परिपूर्ण ऐसे (इसुयार नामे पुरे—इषुकारनाम्नि पुरे) इषुकार नाम के पुरमे जो (पुराणे—पुराणे) पुराना एव (खाए—ख्याते) प्रसिद्ध शहर था वहाँ उत्पन्न हुए ।

सकम्मसेसेण पुराकएण, कुलेसुदग्गेसु य ते पसूया ।
निव्विण्ण संसारभया जहाय, जिणिंदमग्गं सरणं पवण्णा ॥२॥

अन्वयार्थ—(ते—ते) वे छह ही जीव (पुराकएण सकम्मसेसेण—पुरा-कृतेन स्वकर्मशेषेण) पूर्व जन्म मे समुपार्जित एव फलभोग से अवशिष्ट शुभ-कर्मों के प्रभावसे (उदग्गेसु कुलेसु पसूया—उदग्रेषु कुलेषु प्रसूता) उच्चकुलो मे उत्पन्न हुए । पुन (ससारभया निव्विण्ण—ससारभयात् निर्विण्णा) ससार के भयसे उद्विग्न होकर (जहाय—त्यक्त्वा) कामभोगोका परित्याग करके (जिणिदमग्ग सरण पवण्ण—जिनेन्द्रमार्ग शरण प्रपन्ना) तीर्थंकरोपदिष्ट सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक मोक्षमार्गकी शरणमे आये ।

पुमत्तमागम्म कुमार दो वि, पुरोहिओ तस्स जसा य पत्ती ।
विसालकित्ती य तहोसुयारो, रायऽथ देवी कमलावई य ॥३॥

अन्वयार्थ—(दो वि —द्वौ अपि) वे दोनो नन्ददत्त और नन्दप्रिय नामक गोपाल-पुत्रो के जीव (पुमत्रमागम्म—पुस्त्वमागम्य) पुरुषत्व प्राप्त कर (कुमारो—कुमारो) भृगु पुरोहित के पुत्र रूप मे उत्पन्न हुए (पुरोहिओ—पुरोहित)तृतीय वसुमित्र का जीव ही भृगु पुरोहित के पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ । चौथा वसु देव का जीव(तस्सजसाय पत्ती—तस्य च यशा पत्नी)उस पुरोहित की

यशा नामकी पत्नी के रूप में उत्पन्न हुआ (विसाल कित्तीय—विशालकीर्तिश्च) पाचवा वसुप्रिय जीव विशालकीर्ति सम्पन्न (इसुयारा राय—इषुकार राजा) इषुकार नामका राजा हुआ और छठवा धनन्त का जीव (कमलावई देवी—कमलावती देवी) उस राजा की कमलावती नामकी पत्नी के रूप में उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार चार जीव ब्राह्मणकुल में और दो जीव क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए।

जाईजरामच्चुभयाभिभूया, बहिं विहाराभिणिविट्ठचित्ता।
ससारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा, दट्ठूण ते कामगुणे विरत्ता ॥४॥

अन्वयार्थ—(जाईजरामच्चुभयाभिभूया—जातिजरामृत्युभयाभिभूतौ) जन्म जरा मरण के भयसे डरे हुए इसीलिए (बहिं विहाराभिणिविट्ठचित्ता बहिर्विहाराभिनिविष्टचित्तौ) ससार से सर्वथा भिन्न जो शान्ति अपर्यवसान रूप मोक्ष है उसमें मन लगाने वाले (ते—तौ) वे दोनो कुमार (दट्ठूण—दृष्ट्वा) *मुनियो को देखकर अथवा ये कामगुण अनित्य हैं इस प्रकार विचार* कर (ससारचक्कस्स विमोक्खणट्ठा—ससारचक्रस्य विमोक्षणार्थम्) ससार रूप चक्र का परित्याग करने के लिए (कामगुण विरत्ता—कामगुणे विरक्तौ) कामगुण के विषय में विरक्त हो गये।[1]

पियपुत्तगा दोन्नि वि माहणस्स, सकम्मसीलस्स पुरोहियस्स।
सरित्तु पोराणिय तत्थ जाइ, तहा सुचिण्ण तव सजम च ॥५॥

अन्वयार्थ (तत्थ—तत्र) इषुकार पुरमे (सकम्मसीलस्स—स्वकर्मशीलस्य) पठन पाठन यजन दान प्रतिग्रह रूप षट्कर्म में लीन (पुरोहियस्स पुरोहितस्य) पुरोहित—शान्ति कर्म कराने वाले भृगु नामक (माहणस्स—ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण के (दो वि पियपुत्तगा—द्वौ अपि प्रियपुत्रकौ) ये दोनो प्रिय पुत्र (पोराणियजाइ—पौराणिकीम् जातिम्) पूर्वभव सम्बन्धी अपनी जातिकी तथा (सुचिण्ण तव सजम च सरित्तु—सुचीर्ण तप सयम च स्मृत्वा) पूर्व भवमें अच्छी तरह से आचरित तप अनशनादिक बारह प्रकार के सयम की स्मृति करके (कामगुण विरत्तो) कामगुणो के विषयो से विरक्त हो गए।

ते कामभोगेसु असज्जमाणा, माणुस्सएसु जे यावि दिव्वा।
मोक्खाभिकखी अभिजायसड्ढा, ताय उवागम्म इम उदाहु ॥६॥

---

[1] ब्राह्मण पुत्रों में मुनीश्वरों के दर्शन से पूर्व भव की स्मृति जागृत हो गई और वे ससार को त्यागकर मोक्षगामी होने की इच्छा करने लगे।

अन्वयार्थ —(माणुस्सएसु—मानुष्यकेषु) मनुष्य भव सम्बन्धी (कामभोगेसु—कामभोगेषु) सुन्दर शब्दादिक विषयो मे तथा (जे यावि दिव्वा—ये चापि दिव्या) जो देव सम्बन्धी कामभोग है उनमे भी (असज्जमाणा—असज्यमाणौ) नही फसने की कामनावाले, किन्तु (मोक्खाभिकंखी—मोक्षाभिकाक्षिणौ) मुक्ति की ही अभिलाषा वाले, इसीलिये (अभिजायसड्ढा—अभिजातश्रद्धौ) आत्मकल्याण की दृढ रुचिवाले वे दोनो कुमार (ताय उवागम्म—तातमुपगम्य) पिता के पास आकर (इम—इदम्) ये वचन (उदाहु—उदाहरताम्) कहने लगे ।

असासयं दट्ठु इम विहार, वहुअंतराय न य दीह माउं ।
तम्हा गिहसी न रइ लभामो, आमंतयामो चरिस्सामु मोणं ॥७॥

अन्वयार्थ—(इम - इमम्) इस ससार के (विहार—विहारम्) मनुष्य के समस्त निवास स्थान (असासय—अशाश्वतम्) अशाश्वत अर्थात् अनित्य हैं । तथा (वहुअतराय—वह्वन्तरायम्) प्रचुर आधि एव व्याधि रूप विघ्नो से युक्त है एव (आउ दीह न—आयु न दीर्घम्) जीवन का प्रमाण भी अत्यन्त छोटा है ऐसा (दट्ठु—दृष्ट्वा) देखकर हे तात ! हम लोग (गिहसी रइ न लभामो—गृहे रति न लभावहे) गृहस्थाश्रम मे शाति प्राप्त नही कर सकते हैं, (तम्हा—तस्मात्) इसलिए (आमतयामो—आमंत्रयाव.) आपसे आज्ञा चाहते हैं कि (मोण चरिस्सामु—मौन चरिष्याव) हम सयम अगीकार करेंगे ।

अह तायओ तत्थ मुणीण तेसिं, तवस्स वाघायकरं वयासि ।
इमं वयं वेय वियो वयंति, जहा न होई असुआण लोगो ॥८॥

अन्वयार्थ—(अह अथ) पुत्रो की इस प्रकार भावना प्रकाशित होने पर (तेसिं मुणीण—तयोर्मुन्यो) उन भावमुनियो के (तायओ—तातक) पिता भृगु पुरोहित ने (तवस्स वाघायकर इम वय वयासि—तपसो व्याघातकर इद वच अवादीत्) उनके तप एव सयम को व्याघात पहुँचाने वाले इस प्रकार के वचन कहे कि—हे पुत्रो ! (वेदवियो—वेदविद) वेदको जाननेवाले विद्वान् (इम वयं वयति—इद वचन वदन्ति) ऐसा कहते हैं (जहा—यथा) जैसे कि (असुआण लोगो न होई—असुताना लोक न भवति) पुत्र रहितो का परलोक नही सुधरता, अर्थात् उन्हे परलोक मे सद्गति प्राप्त नही होती ।

अहिज्ज वेए परिविस्स विप्पे, पुत्ते परिटठप्प गिहंसि जाया ।
भुच्चाण भोए सह इत्थियाहिं, आरण्णगा होइ मुणी पसत्था ॥६॥

अन्वयार्थ—हे पुत्रो ! तुम दोनो (वए अहिज्ज—वेदान् अधीत्य) वेदो को पढ करके तथा (विप्पे परिविस्स—विप्रान् परिवेष्य) ब्राह्मणों को भोजन करवा कर एव (जाया पुत्ते गिहंसि परिट्ठप्प—जातान् पुत्रान् गृहे परिष्ठाप्य) अपने पुत्रो को घरमें स्थापित करके—कला सिखलाकर एव विवाहित कर उनके ऊपर अपना गृहस्थाश्रम का भार रख कर (इत्थियाहिं सह भोए भुच्चाण—स्त्रीभि सह भोगान् भुक्त्वा) स्त्रियो के साथ मनोज्ञ शब्दादिक भोगोको भोग कर पश्चात् (आरण्णगा पसत्था मुणी होइ—अरण्यको प्रशस्तौ मुनी भवेतम्) आरण्यवासी व्रतधारी होकर प्रशसनीय तपस्वी बन जाना ।[1] इस गाथा मे 'अहिज्ज वेए' पद द्वारा ब्रह्मचर्याश्रम 'आरण्णगा' पद द्वारा वानप्रस्थाश्रम एव 'मुणी' पद द्वारा स यासाश्रम का सकेत किया गया है ।

सोयग्गिणा आयगुणिधणेण, मोहाणिला पज्जलणाहिएण ।
सतत्त भाव परितप्पमाण, लालप्पमाण बहुहा बहु च ॥१०॥

पुरोहिय त कमसोऽणुणित, निमतयत च सुए धणेण ।
जहक्कम कामगुणेहि चेव, कुमारगा ते पसमिक्ख वक्क ॥११॥

अन्वयार्थ—(आयगुणिधणेण—आत्मगुणे धनेन) आत्माके कर्मक्षयोपम आदिसे समुद्भूत जो सम्यग्दर्शन आदि गुण हैं वे ही जिसके लिए जलाने योग्य इधन स्वरूप हैं तथा (मोहाणिला पज्जलणाहिएण—मोहानिलात्प्रज्वलनाधिकेन) मोहरूपी पवनसे ही जो अधिक ज्वालायुक्त की जाती है ऐसी (सोयग्गिणा—शोकाग्निना) शोक रूप अग्नि से (सतत्तभाव—सतप्तभावम्) सतप्त हुआ है अन्त करण जिसका और इसीलिए (परितप्पमाण—परितप्तमानम्) समस्त शरीरमे शोकके आवेशसे प्रादुर्भूत दाहसे सब ओरसे जलता हुआ तथा (बहु बहुधा लालप्पमाण—बहु बहुधा लालप्यमानम्) अनेक प्रकार

---

[1] उस समय दान और अध्ययन ये ब्राह्मण धर्म के प्रमुख अग माने जाते थे । कुल धर्म की छाप सब पर रहती है, इसलिये ब्रह्मचर्याश्रम के बाद गृहस्थ और गृहस्थ के बाद वानप्रस्थादि का सकेत किया गया है । वस्तुत यहां पुरोहित का पुत्र मोह ही व्यक्त हो रहा है ।

से मोहाधीन बनकर दीनहीन वचन बोलनेवाले एव (मुए अगुगिणत — मुतौ अनुनयन्तम्) पुत्रोको विषयमुख प्रदर्शक वचनो द्वारा "धर्ममे ही रहो" इस प्रकार कहकर मनानेवाले तथा (धर्णेण निमतयन—धनेन निमन्त्रयन्त) उनको धनका प्रलोभन दिखाकर अपने वशमे करने की भावनावाले, तथा (जहक्कम कामगुहेहि चेव—यथाक्रम कामगुणैश्चैव) यथाक्रम काम भोगो द्वारा भी हे पुत्रो ! वेदो को पढो, ब्राह्मणो को जिमाओ, भोगोको भोगो, इस प्रकार रिझानेवाले उस अपने पिता (पुरोहिय—पुरोहितम्) पुरोहित को (पसमिक्ख—प्रसमीक्ष्य) देखकर (ते कुमारगा—तौ कुमारकौ) उन दोनो कुमारो ने इस प्रकार (वक्क —वाक्यम्) वचनो को कहा—

वेया अहीया ण हवंति ताणं, भुत्ता दिया णिंति तमं तमेणं ।
जाया य पुत्ता न हवंति ताणं, को णाम ते अणुमन्नेज्ज एयं ।।१२।।

अन्वयार्थ—हे तात ! (अहीया वेया ण ताण हवति—अधीता वेदा त्राण न भवन्ति) पढे गये वेद इस जीवका रक्षण नही कर सकते हैं (भुत्ता दिया तमतमेण णिति—भुक्त्वा द्विजा तमस्तमाया खलु नयन्ति) ब्राह्मणो को भोजन कराने से भी इस जीव की रक्षा नही हो सकती, प्रत्युत इस क्रिया मे अधिक आरम्भ और समारभ होनेसे भोजन करानेवाले जीव मरकर तमस्तमा नामके नरक मे ही जाते हैं, क्योकि दु शील एव आचरणहीन ब्राह्मणो को भोजन कराना भी हमारी रक्षा का उपाय नही हैं (जायाय पुत्ता ताण न हवति—जाता पुत्रा त्राण न भवन्ति) पुत्र भी उत्पन्न हो गये तो क्या इनसे भी पापके उदय से नरक मे पडने वाले आत्माका उद्धार नही हो सकता, अत हे तात ! (को नाम एय अणुमन्नेज्ज—को नाम एतत् अनुमन्येत्) आपके इस कथन को कौन ऐसा बुद्धिमान् है जो सत्यार्थरूप मे अगीकार कर सकता है ।[1]

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा पगामदुक्खा अनिगामसुक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्खभूया, खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ।।१३

अन्वयार्थ—हे तात ! (कामभोगा—कामभोगा) कामभोगो से (खणमित्त-

---

[1] धर्म के वास्तविक आचरण को त्यागकर केवल ब्राह्मण-भोजन कराने से और अनेक प्रकार के दुराचरण करते हुए भी केवल वेदाध्ययन से मुक्ति नही हो सकती । मोक्ष का साधक तो सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एव सम्यक् चारित्र ही हो सकता है ।

सुक्खा—क्षणमात्र सौख्या) जीवोंको क्षणमात्र के लिए ही सुख प्राप्त होता है, अर्थात् सेवन करने के समय में भी इनसे स्वल्प ही सुख मिलता है बादमें तो (बहुकाल दुक्खा—बहुकाल दुःखा) इनसे पल्योपम एवं सागरोपम कालतक जीवको नरक निगोदादिक के दुःख ही भोगने पड़ते हैं। यदि कोई यहां ऐसी आशंका करे कि राज्यार्थी की तरह अथवा धान्यार्थी की तरह प्रकृष्ट सुखार्थी के लिए बहुकाल व्यापी दुःख भी ग्राह्य हो जाता है जबकि वह क्षणमात्र सुख भी प्रकृष्ट—अत्यधिक हो तो। इसी आशंका के समाधान निमित्त कहते हैं कि ये कामभोग (अनिगामसुक्खा—अनिकाम सौख्या) तुच्छ सुख देनेवाले हैं किन्तु निकाम—अत्यन्त सुखप्रद नहीं है तथा (पगामदुक्खा—प्रकामदुःखा) अत्यन्त दुःख देनेवाले हैं नरक वेदना रूप अत्यन्त दुःखों के देनेवाले हैं (संसार मोक्खस्स विपक्खभूया—संसार मोक्षस्य विपक्षभूता) इसीलिए ये कामभोग संसार से मुक्त होने में अन्तराय रूप हैं। तथा (अणत्थाणखाणी—अनर्थाना खनि) ऐहलौकिक अनर्थों की ये खान है। तात्पर्य यह है कि ये काम भोग काल एवं परिमाण की अपेक्षा अल्पसुख जनक एवं अनन्त दुःख वर्धक हैं। संसार परिभ्रमण में ये ही प्रधान रूप से कारण है तथा इसलोक सम्बन्धी एवं परलोक सम्बन्धी समस्त अनर्थों के खान रूप हैं।

परिव्वयंते अणियत्तकामे, अहो य राओ परितप्पमाणे।
अन्नप्पमत्ते धणमेसमाणे, पप्पोति मच्चु पुरिसे जरं च ॥१४॥

अन्वयार्थ —(अनियत्तकामे—अनिवृत्तकाम) जिसकी विषयोपभोग तृष्णा निवृत्त नहीं होती है ऐसा (पुरिसे—पुरुष) पुरुष (अहो य राओ परितप्पमाणे—अह्नि च रात्रौ परितप्यमान) रात दिन उसकी पूर्ति की चिन्ता से संतप्त होता रहता है और (परिव्वयंते—परिव्रजन्) इधर उधर विषय सुखों की प्राप्ति के लिए घूमता हुआ वह (धणमेसमाणे—धनमेषयन्) धनकी इच्छा किया करता है तथा (अन्नप्पमत्ते—अन्य प्रमत्त) अन्य अपने से भिन्न जनोंमें उनके भरण पोषण की चिन्ता में पड़कर संसार से पार होने रूप आत्मकार्य में प्रमादी बन जाता है। इस तरह प्रमादी बना हुआ यह मनुष्य (जरं मच्चु च पप्पोति—जरां मृत्यु च प्राप्नोति) जरावस्थाको एवं मृत्युको प्राप्त कर लेता है।[1]

---

[1] आसक्ति मनुष्य को आत्ममार्ग से भ्रष्ट कर देती और आत्मभ्रष्ट मनुष्य असत्य के मार्ग पर भटकता हुआ समस्त जीवन व्यर्थ खो देता है।

इम च मे अत्थि, इमं च नत्थि, इमं च मे किच्च इमं अकिच्चं।
तं एवमेव लालप्पमाणं, हरा हरंति त्ति कहं पमाओ ॥१५॥

अन्वयार्थ –(इम—इदम्) यह धन धान्यादिक (मे—मे) मेरे हैं और (इम—इदम्) यह रजत सुवर्णादिक भी (मे—मे) मेरे हैं (नत्थि—नास्ति) नही है। तथा (इम मे किच्च इम अकिच्च—इद मे कृत्य इद अकृत्यम्) यह नवीन मकान जिसमे छहो ही ऋतुओमे आराम मिल सके मुझे बनवाना है, तथा यह जो मेरे घर पर हानिकारक व्यापार आदि चल रहे हैं उन्हे बन्द करना है क्योंकि वे अकरणी है। (एव—एवम्) इस प्रकार के नाना विकल्पों मे पडकर (लालप्पमाण—लालप्यमानम्) व्यर्थ ही बाते बनानेवाले उस मनुष्य को (हरा—हरा) दिन और रात्रियो (हरति—हरन्ति) इस भवसे उठाकर दूसरे भवमे पहुचा देती है, अत (कह पमाओ—कथ प्रमाद) धर्म मे प्रमाद करना कैसे उचित माना जा सकता है ? कभी नही।[1]

धण पभूयं सह इत्थि आहि, सयणा तहा कामगुणा पगामा।
तवं कए तप्पइ जस्स लोओ, तं सव्व साहीणमिहेव तुब्भं ॥१६॥

अन्वयार्थ—हे पुत्रो ! देखो (जस्स कये—यस्यकृते) जिस वस्तु की प्राप्ति के लिए (लोओ—लोक) लोक (तव तप्पइ—तप तप्यते) तप द्वारा शरीर को तपते हैं (तमव्व –तत्सर्वम्) वह सब (तुब्भ इहेव साहिण—युवयो. इहैव स्वाधीनम्)तुम दोनो के पास इस घरमे विद्यमान है। (पभूय धण—प्रभूत धनम्) बहुत धन है तुम कुछ भी न कमाओ तो भी वह समाप्त नही कर सकता है आनद से बैठे बैठे खा सकते हो। (इत्थिआहि सह सयणा—स्त्रीभि सह स्वजना) स्त्रियाँ भी हैं माता पिता भी हैं (पगामा कामगुण —प्रकामा कामगुणा) सुन्दर शब्दादिक विषय भी है। फिर कहो बेटा ! तुम अब किस वस्तुको प्राप्त करने के लिये तपस्यामे उद्यमशील हो रहे हो। इन दोनो भाइयोका इस समय यद्यपि विवाह नही हुआ है फिर भी "स्त्रियाँ है" ऐसा जो कहा गया है वह

---

१ ममत्व के दूषित वातावरण मे अनेक प्राणी घुट रहे है, कर्तव्य और अकर्तव्य के विवेक के अभाव मे अपने जीवन के अमूल्य क्षणो को नष्ट कर रहे हैं।

उनकी योग्यता का नकर कहा गया ह। अर्थात् यदि वे चाहेंगे तो अनेक हो सकगे।[1]

धणेण किं धम्मधुराहिगारे, सयणेण वा कामगुणेहिं चेव।
समणा भविस्सामु गुणोहधारी, बहिं विहारा अभिगम्म भिक्ख ॥१७॥

अन्वयाथ—ह पिताजी! (धम्म धुराहिगारे—धम धुराधिकार) धर्माचरण करने म (धणेण किं—धनेन किम्) हम धन से क्या प्रयोजन है। (सयणेण वा किं—स्वजनेन किम्) तथा स्वजनो स भी क्या प्रयोजन है (कामगुणेहिं चेव किं—कामगुणैश्चैव किम्) और क्या प्रयोजन है मनोज्ञ शब्दादिक विषयास वन्मे भी यही बात समझाई गई है— न प्रजया धनेन त्यागेनकेना मृतत्वमानु ऋषियोंने तो त्यागसे ही मोक्ष प्राप्त किया है सतान अथवा धनस नही। अत हम लोग भी (भिक्ख अभिगम्म—भिक्षा अभिगम्य) उद्गम उत्पाद आदि दोना स रहित पिण्ड ग्रहण रूप भिक्षाको प्राप्त करक (बहिं विहारा—बहिर्विहारौ) द्रव्य और भाव स अप्रतिबद्ध—विहारवाल होत हुए (गुणोहधारी—गुणौघधारिणौ) सम्यग्दशन ज्ञान चारित्र आदि गुण समूहो से सम्पन्न (समणा भविस्सामु—श्रमणौ भविष्याव) मुनि होवेंगे।[2]

जहा य अग्गी अरणीऽसतो, खीरे घय तिल्लमहा तिलेसु।
एवमेव जाया सरीरंमि सत्ता, समुच्छई नासइ नावचिट्ठे ॥१८॥

अन्वयाथ—(जाया—जातौ) ह पुत्रो! (जहा—यथा) जसे (अग्गी अरणीउ—अग्नि अरणौ) अरणि काष्ठ म पहले स अग्नि (असतो—असन्) नहीं होती है परन्तु रगडने से (समुच्छई—सम्मूर्च्छति) वह वहा उत्पन्न हो जाता है और (जहा—यथा) जैसे (खीरे—क्षीरे) दूधम पूव अविद्यमान (घय समूच्छई—घत समूर्च्छति) घत उत्पन्न हो जाता है (तिल्लसु तिल्ल—तिलसु तैलम्) तिला म तल उत्पन्न हो जाता है। (एवमव—एवमव) इसी तरह (सरीरंमि—शरीर) शरीरम पूव अविद्यमान (सत्ता—सत्वा) जीव भी (समुच्छई—सम्मूर्च्छति) उत्पन्न हो जाते हैं। नासइ—नश्यति) नष्ट हो

---

१ आशय यह है कि तप का फल सुख प्राप्ति है और वे समस्त सुख इस घर में ही तुम्हे अनायास उपलब्ध हो रहे हैं तो फिर तप किस लिये करना चाहते हो।

२ हम विश्वबन्धुत्व की महान् साधना के लिये मुनि बनकर तप करना चाहते हैं। आदर्श साधु बनकर आत्मगुण की आराधना करना चाहते हैं।

जाते हैं। (नावचिट्ठे—नावतिष्ठन्ते) शरीर नाशके अनन्तर नही रहते है। अत जब शरीर के नाश होते ही जीव नष्ट हो जाते हैं तो फिर धर्माधर्म के विपाकको अनुभव करने के लिये उनका परलोक मे जाना एक कल्पित बात ही है। अत इससे यह बात सिद्ध होती है कि जीव का पुनर्जन्म नही होता।

नो इंदियग्गिज्झ अमुत्तभावा अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो।

अज्झत्थहेऊं नियओऽस्सबंधो, संसारहेउं च वयंति बंधं।१९॥

अन्वयार्थ—हे तात! आपका कहना है कि प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्माका ग्रहण नही होता, अत वह शशविषाण (खरगोश के सीग) की तरह असत् है सो ऐसा कहना आपका ठीक नही है, क्योकि वह प्रत्यक्ष द्वारा (अमुत्तभावा—अमूर्तभावात्) अमूर्त होने से (नो इन्दियग्गिज्झ—नो इन्द्रियग्राह्य) किसी भी इन्द्रिय का विषय नही है। अमूर्त का तात्पर्य-रूपादिक विशिष्टत्व का अभाव है। आत्मा अमूर्त है इसका तात्पर्य है आत्मामे रूपादिक कोई भी गुण नही है। तथा (अमुत्तभावा वि निच्चो—अमूर्त भावात् अपि नित्य) अमूर्त होने पर भी यह नित्य है। (अज्झत्थ हेऊ अस्स बधो नियओ—अध्यात्म हेतु अस्य बध नियत) मिथ्यात्व आदि कारण ही इसके बधके कारण हैं। (बंध ससारहेउ वयति—बन्धन् ससारहेतु वदन्ति) बधका होना ही ससारका कारण कहा गया है।[1]

जहा वयं धम्ममयाणमाणा, पावं पुरा कम्ममकासि मोहा।

ओरुज्झमाणा परिरक्खियंता, तं नेव भुज्जो वि समायरामो॥२०॥

अन्वयार्थ—हे तात! (जहा—यथा) जिस प्रकार (पुरा—पुरा) पहिले (ओरुज्झमाणा—अवरुध्यमाना) घर से नही निकलने दिये गये तथा (परिरक्खियता—परिरक्ष्यमाणाः) साधुओ के विषय मे अहित कारित्व बुद्धि को उत्पन्न कराके उनके दर्शन करने से भी रोके गये (वय—वयम्) हम लोगो

---

१ दो प्रकार के पदार्थ हैं—नित्य और अनित्य, जो पदार्थ अमूर्त हैं वे नित्य हैं जैसे आकाश अमूर्त हैं, अत वह नित्य है। जीव भी अमूर्त है, अत वह भी नित्य है, किन्तु जीवात्मा कर्मबन्ध से बधा हुआ होने के कारण परिणामी नित्य है अर्थात् वह जैसे कर्म करता है उसीके अनुरूप छोटे-बडे, ऊच-नीच शरीर धारण करता रहता है।

ने (धम्ममयाणमाणा—धममजानाना) धम को नहीं जानत हुए (मोहा—माहात्) अज्ञान स (पाव कम्म अकासि—पापकम अकार्ष्म) मुनियों के दर्शन आदि नहीं करने रूप पापकर्म किया (त—तत्) वह पापकम अब (भुज्जोवि नव समायरामो—भूयोऽपि नव समाचराम) हम लोग फिरस नहीं करेंगे। अर्थात् जिस प्रकार हमलोगोंने आपकी बातोंमें आकर मुनियों के दर्शन सेवा आदिसे अपनको वंचित रखा है वसा काम अब हमसे नहीं हो सकेगा।[1]

अब्भाहयमि लोगम्मि, सव्वओ परिवारिए।
अमोहाहि पडतीहिं, गिहंसि न रइ लभे ॥२१॥

अन्वयार्थ—हे तात! (अब्भाहयमि—अभ्याहते) प्रत्यक्ष रूप से पीडित तथा (सव्वओ—सर्वत) सब ओरसे (परिवारिए—परिवारित) परिवेष्टित एवं (अमोहाहि पडतीहिं—अमोघाभि पतन्तीभि) अमोघ सफल शस्त्र धार स पीडित (लोगम्मि—लोके) इस लोकमें हम लोग (गिहंसि रइ न लभे—गृहे रति न लभामहे) घरमें रहकर कभी भी आनन्द प्राप्त नहीं कर सकते हैं। तात्पर्य यह है कि—जिस प्रकार वागुरासे वेष्टित मृग तीक्ष्ण एवं अमोघ बाणों द्वारा व्याध से आहत होकर कहीं पर भी आनन्द नहीं पा सकते हैं।

केण अब्भाहओ लोओ, केण वा परिवारिओ।
का वा अमोहा वुत्ता, जाया! चिंतावरो हुमि ॥२२॥

अन्वयार्थ—(जाया—जातौ) हे पुत्रो! यह तो बताओ कि (अय लोओ—अयं लोक) यह लोक व्याध के समान (केण अब्भाहओ—केन अभ्याहत) किसके द्वारा पीडित हो रहा है? (कण वा परिवारिओ—केन वा परिवारित) तथा वागुरा-मृगबधनी के समान किस पदार्थ से परिवारित-परिवेष्टित है। एवं (का वा अमोहा वुत्ता—का वा अमोघा उक्ता) इसमें अमोघ शस्त्र

---

[1] जब तक हम भी वास्तविक ज्ञान को प्राप्त नहीं कर पाए थे। तब तक हम भी लोक परलोक पाप-पुण्य आदि की सत्ता को स्वीकार नहीं करते थ किन्तु अब ज्ञान प्राप्ति के अनन्तर हम पाप पुण्य आदि की सत्ता में पूर्ण विश्वास हो गया है।

तुम्हारा घातक कौन है ? (चिंतावरो हुमि—चिंतावरो भवामि) उसे जानने के लिये मैं चिंतित हूं अत. तुमसे जानना चाहता हूं ।

मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो, जराए परिवारिओ ।
अमोहा रयणी वुत्ता, एवं ताय ! वियाणह ।२३।।

अन्वयार्थ—हे तात ! इस लोक में व्याधके स्थानापन्न मृत्यु है इसलिये (मच्चुणा लोगो अब्भाहओ—मृत्युना अयं लोक अभ्याहत) उस मृत्युसे यह लोक सदा पीडित हो रहा है । ऐसा इस लोकमें एक भी प्राणी नहीं, न हुआ, न होगा, कि जिसके पीछे मृत्यु न हो ।

तीर्थंकरा गणधरा, सुरपतयश्चक्रि केशवारामाः ।
सर्वेऽपि मृत्युवशगा शेषाणामत्र का गणना ।।"

चाहे तीर्थंकर हो, चाहे गणधर हो, चाहे सुरपति-इन्द्र हो, चाहे चक्रवर्ती हो केशव-वसुदेव, राम-बलदेव, कोई भी क्यो न हो सभी मृत्युके वशगत बने हुए हैं । जब ऐसे २ भाग्य शालियों की यह दशा है तो हमारे जैसो की गणना ही क्या है । (जराए परिवारिओ—जरसा परिवारित) मृग वागुरा-जालके तुल्य जरा है । सो यह लोक उस जरा से परिवेष्टित हो रहा है । तथा (अमोहा रयणी वुत्ता—अमोघा रजनी उक्ता) अमोघ-शस्त्रपात के तुल्य यहाँ दिन और रातें हैं । जिस प्रकार शस्त्रो के प्रहार से प्राणियो का घात हो जाता है उसी प्रकार दिवस एव रात्रिरूप शस्त्रो के निपात से प्राणियों का घात होता रहता है । (ताय एव वियाणह—तात एव विजानीत) हे तात ! इसे आप जानो ।

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अहला जंति राईओ ।।२४।।

अन्वयार्थ—(जा जा रयणी—या या रजनी) जो जो दिन और रातें (वच्चइ—व्रजति) निकलती जा रही है (सा न पडिनियत्तइ—सा न प्रतिनिवर्तते) वे दिन और रातें फिर लौटती नही हैं, अत. उन दिन रातो मे (अहम्म कुणमाणस्स—अधर्म कुर्वत) अधर्म करनेवाले जो प्राणी हैं उनकी वे (राईओ—रात्रय) रातें (अहला जति—अफला यान्ति) धर्माचरण से रहित होने के कारण निष्फल ही व्यतीत होती हैं । अर्थात् धर्माचरण शून्य

प्राणियों की दिन रातें बिलकुल ही निष्फल है।

जा जा वच्चइ रयणी न सा पडिनियत्तइ।

धम्मं च कुणमाणस्स, सफला जंति राईओ ॥२५॥

भावार्थ—अर्थ पूर्वोक्त रूप में ही है। परन्तु इसमें रात्रियों की सफलता बतलाई गई है। उन्हीं की दिनरातें सफल हैं जो धर्मक्रियाओं के आचरण में इनको बिताते हैं। यहां रात्रि के ग्रहण से ही दिनों का ग्रहण हो जाता है।

एगओ संवसित्ताणं, दुहओ सम्मत्तसंजुया।

पच्छा जाया गमिस्सामो, भिक्खमाणा कुले कुले ॥२६॥

भावार्थ—(जाया—जातौ) हे पुत्रो! (एगओ—एकत्र) पहिले एक स्थान में (दुहओ—द्वय) हम तुम दोनों (सम्मत्तसंजुया संवसित्ताणं—सम्यक्त्व संयुता समुष्य) सम्यक्त्व सहित रहकर के अर्थात—गृहस्थाश्रम का पालन करके (पच्छा—पश्चात्) फिर वृद्धावस्था में दीक्षा लेकर (कुले कुले भिक्खमाणा गमिस्सामो—कुले कुले भिक्षमाणा गमिष्याम) ज्ञात अज्ञात कुलों में विशुद्ध भिक्षा ग्रहण करते हुए ग्राम नगरादिकों में विचरेंगे। अर्थात् हे बेटा! अभी ऐसा करो कि हम तुम दोनों अविरत सम्यग्दृष्टि बन जाओ पश्चात् दीक्षा ले लेंगे।

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणं।

जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥२७॥

भावार्थ—हे तात! (जस्स मच्चुणा सक्खं—यस्य मृत्युना सख्य) जिस मनुष्य की मृत्यु के साथ मैत्री है अथवा (जस्स पलायणं अत्थि—यस्य पलायनं अस्ति) जिसका मृत्यु से पलायन है जिस समय मृत्यु आवेगी उस समय में भागकर के अन्यत्र चला जाऊंगा ऐसा विचार है अथवा (न मरिस्सामि जो जाणे—न मरिष्यामि इति यो जानाति) मैं नहीं मरूंगा ऐसा जो अपने आपको मानता है (सो—स) वही प्राणी निश्चय पूर्वक (कंखे—कांक्षेत्) इच्छा करता है कि मैं (सुए—श्व) आगामी दिवस में (सिया-स्यात) हो जाऊंगा। अर्थात् कर लूंगा।[1]

---

[1] अर्थात् जो व्यक्ति मृत्यु को अपना मित्र मानता है जो व्यक्ति मृत्यु से भाग कर अन्यत्र जा सकता है और जिसको यह विश्वास है कि मैं कभी न मरूंगा। वही व्यक्ति भविष्य में संयम करने की योजनाएं बना सकता है।

अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो, जहिं पवण्णा न पुणब्भवामो ।
अणागयं नेव य अत्थि किंचि सद्धा खमं णे विणइत्तु राग ॥२८॥

अन्वयार्थ हे तात ! हम लोग (अज्जेव धम्मं पडिवज्जयामो —अद्यैव धर्मं प्रतिपद्यामहे) जब कि मृत्यु की सम्भावना सर्वदा विद्यमान है, तो आज ही साधु धर्म को अंगीकार करेंगे (जहिं पवण्णा—य प्रपन्ना) जिसके धारण करने वाले हम (न पुणब्भवामो न पुनर्भवाम) फिर से इस जन्म जरा एव मरण आदि दुखो से सवलित इस चतुर्गति रूप ससार मे पुन जन्म नही लेगे। इस अनादि ससार मे (अणागयं किंच नेव अत्थि—अनागत किंचित् नैव अस्ति) कोई भी वस्तु अनागत अप्राप्त—अनुपभुक्त नही है। सर्व ही उपभुक्त है। अत उच्छिष्ट अर्थात् जूठे का पुन स्वाद करने की लालसा श्रेयस्कर नही है। श्रेयस्कर तो हमे अब यह रही है कि हम (राग रागम्) स्वजनादिक का स्नेह (विणइत्तु—विनीय) छोडकर (सद्धाखमं श्रद्धाक्षमम्) श्रद्धापूर्वक धर्मानुष्ठान करें। तात्पर्य यह है कि जब कि ससार मे जो कि अनादिकाल मे इस जीव के पीछे लगा आ रहा है कोई भी वस्तु अनुपभुक्त नही हो तो फिर उसको भोगने के लिए गृहस्थावास अंगीकार करना नही है। उचित तो यही है कि हम स्वजनो के अनुराग का त्याग करे और शीघ्राति शीघ्र मुनिव्रत धारण करें।

पहीणपुत्तस्स हु नत्थि वासो, वासिट्ठिभिक्खायरियाइ कालो ।
साहाहि रुक्खो लहईसमाहिं, छिन्नाहि साहाहि तमेव खाणुं ॥२६॥

अन्वयार्थ —वासिट्ठि—वासिष्ठि) हे वसिष्ठगोत्रोत्पन्ने ! (पहीण पुत्तस्स —प्रहीणपुत्रस्य) पुत्रो से रहित (नत्थि वासो—नास्ति वास) मेरा घर मे निवास योग्य नही है (भिक्खायरियाइकालो भिक्षाचर्याया कालः) यह तो अब मेरे भिक्षाचर्या का काल है अर्थात् पुत्रो के साथ मुझे भी मुनि होने का यह अवसर प्राप्त हुआ है। क्योकि (साहाहि रुक्खो समाहि लहई—शाखाभि वृक्ष समाधि लभते) शाखाओ से ही वृक्ष सुहावना लगता है। (छिन्नाहि साहाहितमेव खाणु—छिन्नाभि शाखाभि त्वमेव स्थानुम्)जब शाखाए उसकी कट जाती है तो लेग उसको स्थाणु-ठुठा कहने लगते हैं। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार वृक्ष की शोभा उसकी शाखाओ से है उसी प्रकार मेरी भी शोभा इन पुत्रो से है। अत मेरा भी घर मे रहना उचित नही है। अत मैं भी पुत्रो के साथ २ ही मुनि दीक्षा धारण करू।

पम्मा विहूणोव्व जहव पक्खी, भिच्च विहीणुव्व रणे नरिंदो ।
विपन्नसारो वणि उव्व पोए, पहीण पुत्तोम्हि तहा अहंपि ॥३०॥

अन्वयार्थ—हे ब्राह्मणि ! (जहा इव— यथा इह) जस इस लोक में (पक्खा विहूणो पक्खी –पक्ष विहीन पक्षी) पर से रहित पक्षी की दुर्दशा होती है— अर्थात्—पर विहीन पक्षी जिस प्रकार आकाश मार्ग में जाने में असमर्थ नष्ट हो जाता है और वह जिस किसी भी हिंसक प्राणियों द्वारा पीडित होता है तथा (रणे भिच्च विहीणुव्व नरिन्दो—रण भृत्य विहीन नरेन्द्र) सग्राम में भृत्यों-सैनिकों से रहित राजा की जैसी दुर्दशा होती है—अर्थात् युद्ध में जिस प्रकार सैनिक विहीन राजा शत्रुओं से तिरस्कृत होता है तथा (पोए विपन्नसारो वणि उव्व—पोत विपन्नसार वणिक) जहाज के नाश होने पर विनष्ट धनवाले वणिक की जैसी दुर्दशा होती है (तहा पहीण पुत्तो अहंपि अम्हि—तथा प्रहीण पुत्र अहमपि अस्मि) उसी प्रकार दुर्दशा भरी भी पुत्रों के अभाव में होगी। अर्थात् मैं पुत्रों के विरहजन्य दुःख को सहन करने के लिए सर्वथा असमर्थ हूं।

सुसंभिया कामगुणा इमे ते, संपिंडिया अग्गरसा पभूया।
भुंजामु ता कामगुणे पगामं, पच्छा गमिस्सामु पहाणमग्गं ॥ ॥३१॥

अन्वयार्थ—पति के ऐसे वचनों को सुन ब्राह्मणी ने कहा—हे स्वामिन् (ते ते) आपके घर में (इमे इमे) यह प्रत्यक्ष दृश्यमान (कामगुणा काम-गुणाः) पंचेन्द्रियसुखद पदार्थ सद्वस्त्र स्वादिष्ट एवं सरसमिष्टान्न पुष्पचंदन, नाटक गीत, तालवेणु वाद्यादिक ये सब (सुसंभिया—सुसंभृता) खूब अच्छे भरे पड़े हुए हैं तथा (संपिंडिया संपिंडिता) ये भी बहुत होवें तो बात भी सही है यदि अलग अलग स्थानों में भिन्न भिन्न रूप से रखे होवें सो बात नहीं है किन्तु ये सब घर की जगह समुदाय रूप में रखे हुए हैं (अग्गरसा—अग्र्यरसा) ये नीरस भी नहीं हुए हैं मधुरादि रस संपन्न हैं। अथवा श्रृंगार रस के ये सब उत्तेजक हैं। कहा भी है—

रतिं माल्यालंकार, प्रियजनगन्धर्वकामसेवाभिः ।
उपवनगमन विहार, श्रृंगाररसः समुद्भवति ॥

(पभूया—प्रभूता) प्रचुर मात्रा में हैं। अतः (ता काम गुणे भुंजामु—तान् कामगुणान् भजीमहि) इन शब्दादिक कामगुणों को आप यथेच्छ भोगो। (पच्छा पहाणमग्गं गमिस्सामु—पश्चात् प्रधान मार्ग गमिष्याव) जब वृद्धा वस्था आ जावेगी तब अपन सब—तीर्थंकर गणधरादि सेवित प्रव्रज्यारूप मोक्ष

मार्ग को स्वीकार कर लेंगे । अभी से उसकी क्या आवश्यकता है । ये तो दिन खाने पीने के है ।

भुत्ता रसा भोइ! जहाइ णे वओ, ण जीवियट्ठा पजहामि भोए ।
लाभं अलाभं च सुहं च दुक्खं, संविक्खमाणो चरिस्सामि मोणं ।। ३२।।

अन्वयार्थ हे ब्राह्मणी ! (भोइ—भवति) (रसा भुत्ता—रसा भुक्ता.) मधुरादिक रस या शृगार रस एव शब्दादिक भोग मैंने खूब भोग लिये हैं । (वओ णे जहाहि—वय. नो जहाति) देखा उनको भोगते भोगते मेरी यौवन अवस्था भी बहुत व्यतीत हो चुकी है । अत जब तक तरुणावस्था नहीं ढल जाती है तब तक मेरा कर्त्तव्य यह आदेश देता है कि मैं मुनि दीक्षा अगीकार करूँ यदि तुम ऐसा करो कि "सुखोपभोगों के रहने पर भवान्तर मे सुखप्राप्ति के लिये प्रव्रज्या अगीकार करना उचित नहीं है" इसका उत्तर है कि (ण जीवियट्ठा पजहामि भोए—नो जीवितार्थं प्रजहामि भोगान्) मैं भवान्तर मे "मुझे मनोज्ञ शब्दादिक विषयो की प्राप्ति हो" इस रूप असयमित जीवन के निमित्त इन भोगो का परित्याग नहीं कर रहा हूँ, किन्तु (लाभ अलाभ च सुह च दुक्ख सविक्खमाणो —लाभ अलाभ च सुख च दुख सवीक्षमाण) वाछित वस्तु की प्राप्ति या अप्राप्ति रूप जो लाभ एव अलाभ है एव जो सुख, एव दुख है उनमे समताभाव का आलम्बन करके मैं (मोण चरिस्सामि—मौन चरिष्यामि) मुनि होना चाहता हूँ ।[1]

मा हूतुमं सोयरियाण संभरे ? जुण्णो व हंसो पडिसोयगामी ।
भुजाहि भोगाइं मए समाणं, दुक्खं खु भिक्खायरिया विहारो ।।३३।।

अन्वयार्थ—पति के पूर्वोक्त वचन सुनकर ब्राह्मणी ने कहा—हे स्वामिन् ! (पडिसोयगामी जुण्णो हसो व तुम सोयरियाण मा सभरे—प्रतिस्रोतोगामी जीर्ण हस इव त्व सोदर्याणा मा सस्मरे) जिस प्रकार प्रतिकूल प्रवाह मे बहता हुआ बुड्ढा हस अनुकूल प्रवाह की स्मृति करके उस ओर आ जाता है इसी प्रकार तुम भी मुनि होकर अपने भाई बन्धुओ की याद कर पुन प्रतिकूल प्रवाह जैसे इस मुनि दीक्षा से वापिस होकर भाई बन्धुओ के साथ आकर न मिलो इस भाव से मैं कहती हूँ कि पहले ही इसका अगीकार करना आपको उचित नहीं । आप तो (मए समाण —मया समम्) मेरे साथ (भोगाइ

---

१ ससार के समस्त भोग प्राप्त होते हुए भी और साधु जीवन के कष्टो को देखते हुए भी प्रव्रज्या ग्रहण मे मेरी रुचि का जागृत होना यह प्रमाणित करता है कि मेरी प्रव्रज्या रुचि जन्म—जन्मान्तरो से प्राप्त स्वाभाविक रुचि है ।

मजाहा—भागान भाव) भोगों को भोगो त्या (भिक्खायरिया विचरा दुक्ख भिक्षाचया विहार दुःखम) भिक्षावृत्ति करना और एक ग्राम से दूसरे ग्राम विहार करना इसमें कौनसा आनन्द है यह तो एक प्रकार का दुःख ही है। निरर्थ भोगो का सूचन करना यह भी विहार शब्द से ग्रहण कर लेना चाहिए।

जहा य भोई ! तणुयं भुयगो, निम्मोइणिं हिच्च पलेइमुत्तो ।
एमेय जाया पयहंति भोए, तेऽहं कहं नाणुगमिस्समेक्को ॥ ३४॥

अन्वयार्थ—(भोई—भवति) हे ब्राह्मणी ! (जहा—यथा) जैसे (भुयगो—भुजङ्ग) सर्प (तणुयं तनुजाम) शरीरोत्पन्न (निम्मोइणि—निर्मोचनाम) अपनी कांचली को (हिच्च—हित्वा) छोड़कर के (मुत्तो—मुक्त) स्वतन्त्र होकर (पलेइ पर्यंति) घूमता फिरता है किन्तु उस कांचली को फिर नहीं ग्रहण करता है (एव) इसी प्रकार (एय जाया—एतौ जातौ) ये दोनो पुत्र (भोए पयहंति—भोगान् प्रजहीत) भोगों को छोड़ रहे हैं तब (एक्को अहं एक मैं) अकेला मैं (न कहं नाणुगमिस्स—तौ कथं नानुगमिष्यामि) इन दोनो का अनुगमन क्यों न करूंगा अर्थात् अवश्य ही करूंगा फिर वापिस नहीं आऊंगा।

छिन्दित्तु जालं अबलं व रोहिया, मच्छा जहा कामगुणे पहाय ।
धोरेयसीला तवसा उदारा, धीरा हु भिक्खायरियं चरंति ॥३५॥

अन्वयार्थ—हे ब्राह्मणी ! (जहा तथा) जैसे (रोहिया—रोहिता) रोहित जाति के मत्स्य (अबलं जालं वा छिन्दित्तु—अबल जाल वा छित्वा) जीर्ण या कमजोर जाल को अपनी तीक्ष्ण पुच्छ आदि द्वारा छिन्न करके निर्भय स्थान में सुख पूर्वक विचरते हैं इसी प्रकार (धोरेयसीला—धौरेयशीला) भारको वहन करने वाले के सम धर्मोत्र रथ पर भारको वहन करने की शक्ति वाला एव (तवसा उदारा—तपसा उदारा) अनशन आदि तपों के आचरण करने से सर्व प्रधान तथा (धीरा - धीरा) परीषह और उपसर्ग के सहन करने मे धीर आत्मार्थि जो (कामगुणे पहाय—कामगुणान् प्रहाय) रमणीय शब्दादि विषय एवं कामगुणों का परित्याग करके (हु) निश्चय से (भिक्खायरियं चरंति भिक्षाचर्यां चरंति) भिक्षावृत्ति को करते हैं अर्थात् मोक्षमार्ग में विचरते हैं। पुनः मोह कर वापिस घर नहीं आते हैं।

नहेव कुंचा समइक्कमन्ता तयाणि जालाणि दलित्तु हंसा ।
पलिन्ति पुत्ता य पई य मज्झं ते हं कहं नानुगमिस्समेक्का ॥३६॥

अन्वयार्थ (नह—नभ) में (कुंचा—क्रौञ्चा) क्रौञ्च पक्षी एवं (हंसा—हंसा) हंस पक्षी (तयाणि जालाणि—ततानि जालानि) विस्तृत जालों

का (दलित्त —दलयित्वा) छेदन करके भिन्न भिन्न देशों या उत्पन्न करते हुए (नहव समइक्कमता—नभसि समतिक्रामन्ति) आकाश मे स्वतत्र उडते है उसी प्रकार मेरे पति और दोनों पुत्र जालोपम विषयों मे आसक्तता का छेदन करके उन २ सयमस्थानो को अच्छी तरह पालन करते हुए तप कल्प निरुप-लित सयममार्ग मे (पलिति—परियन्ति) जब विचरण करना चाहते है तो (एक्का—एका) असहाय बनी हुई (ह—अहम) मै भी (ने कह नानुगमि-स्सं तान् कथ नानुगमिष्यामि) फिर क्यो न उन्ही के मार्ग का अनुसरण करू अर्थात् अवश्य करूगी ।

पुरोहिय त ससुय सदार, सोच्चाऽभिनिक्खम्म पहायभोगे ।
कुडुंबसार विउलुत्तम त, राय अभिक्खं समुवाय देवी ॥३७॥

अन्वयार्थ—(अभिनिक्खम्म—अभिनिष्क्रम्य) घर से निकल कर तथा (भोगे पहाय —भोगान् प्रहाय) शब्दादिक भोगो का परित्याग कर एव (विउलुत्तम कुडुबसार—पुलोत्तम कुटुम्बसार अपि) बहुत एव श्रेष्ठ ऐसे कुटुम्ब के आधार भूत धन धान्यादिक का भी परित्याग करके (ससुय सदार — ससुत सदार) पुत्र और स्त्री सहित दीक्षित हुए (त पुरोहिय सोच्चा एत पुरोहित श्रुत्वा) उस पुरोहित को सुनकर (तत् 'अभिलपन्तम्') अत्याधिक उसके उस प्रचुर धन धान्यादि के स्वामी बनने की अभिलाषा वाले (राय—राजानम्) राजा से (देवी—देवी) कमलावती ने (अभिक्ख—अभीक्ष्णम्) बारबार (समुवाय—समुवाच) सम्यक् प्रकार से कहा ।

वंतासी पुरिसो राय, न सो होई पसंसिओ ।
माहणेण परिच्चत्त, धणं आदाउ मिच्छसि ॥३८

अन्वयार्थ —(राय—राजन्) हे राजन् ! (पुरिसो—पुरुष) जो पुरुष (वतासी—वान्ताशी) वान्त का खाने वाला होता है (सो—स) वह (पस-सिओ न होइ—प्रशसित न भवति) प्रशसा के योग्य नही होता है । जब आप यह जानते हो तो फिर क्यो (माहणेण परिच्चत्त —ब्राह्मणेन परित्यक्तम्) ब्राह्मण द्वारा परित्यक्त (धण—धनम्) धनको फिर भी (आदाउ इच्छसि —आदातुं इच्छसि) ग्रहण करने की अभिलाषा करते हो ।

सव्व जगं जइ तुह, सव्वं वा वि धण भवे ।
सव्व पि ते अपज्जत्त, नेव ताणाय तं तव ॥३९॥

अन्वयार्थ—हे राजन् ! (सव्व जग—सर्व जगत्) समस्त लोक (जइ तुह भवे — यदि तव भवेत्) यदि आपके आधीन हो जाय (वा—वा) अथवा

पक्षिणी) पक्षिणी (न रमे—न रमते) वहां सुखका अनुभव नहीं करती है है उसी तरह (अहं—अहम्) मैं भी जरा एवं मरण आदिके उपद्रव से युक्त इस भव रूपी पींजरे से (न रमे—न रमे) सुखानुभव नहीं करती हूं। अत अब मैं (सताण छिन्ना—सतानच्छिन्ना) पारिवारिक स्नेह बधन से रहित तथा (अकिचणा—अकिञ्चना) द्रव्य एव भाव परिवारिक स्नेह बधन से रहित तथा (अकिंचणा—अकिञ्चना) द्रव्य एवं भाव परिग्रह से परिवर्जित होकर (निरामिसा -निरामिषा) शब्दादिक विषय भोगो का सर्वथा परित्याग करती हू और (उज्जुकडा—ऋजुकृता) माया आदि शल्योसे रहित तप एव सयम की आराधना मे तत्पर होना चाहती हू। इस तरह (परिग्गहारंभ नियत्तदोसा—परिग्रहारभ निवृत्तदोषा) परीग्रह और आरम्भ से अन्य दोषो से निवृत्त होती हुई मैं (मोण—मौनम्) मुनि भावका (चरिस्सामि—चरिष्यामि) आचरण करुगी।

दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्झमाणेसु जतुसु।
अन्ने सत्ता पमोयन्ति, रागदोसवसंउया ॥४२॥

एवमेव वयं मूढा, कामभोगेसु मुच्छिया।
डज्झमाणं न बुज्झामो, रागदोसग्गिणा जगं ॥४३॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (रण्णे—अरण्ये) वनमे (दवग्गिणा -दवाग्निना) दावानल द्वारा (जतुसु डज्झमाणेसु—जन्तुषु दह्यमानेषु) जन्तुओ के जलते रहते (रागदोस वसगया अन्ने सत्ता पमोयन्ति—रागद्वेष वशगता. अन्ये सत्त्वाः प्रमोदन्ते) रागद्वेषके वशीभूत हुए अन्य मृगादि प्राणी जो नहीं जलते हैं वे आनन्द का अनुभव करते है। (एवमेव—एवमेव) इसी तरह (मूढा—मूढा) मोह के वश हम लोग भी कि जं (कामभोगेसु मुच्छिया—काम-भोगेषु मूर्च्छिता) शब्द रूप आदि काममे तथा स्पर्श रस गन्ध रूप भोग मे या मनोज्ञ शब्दादिक कामभोगो मे गृद्ध बने हुए हैं (रागदोसग्गिणा डज्जमाण जग न बुज्झामो —रागद्वेषाग्निना दह्यमान जगत् न बुध्यामहे) रागद्वेष रूपी अग्नि मे जलते हुए जगत् को देखकर हर्षित मन होते हैं, परन्तु यह नहीं जानते हैं कि हम भी जगत् के भीतर वर्तमान हैं अत हम भी भस्म होगे।

भोगे भुच्चा वमित्ता य, लहुभूयविहारिणो।
आमोयमाणा गच्छंति, दिया कामकमा इव ॥४४॥

अन्वयार्थ—वे विवेकी धन्य हैं जो (भोगे—भोगान्) मनोज्ञ शब्दादिक

विषया को (भुच्वा—भुक्त्वा) भोग करके पश्चात् विपाक कालमें दारुण जान कर (वमित्ता—वान्त्वा) उनका परित्याग कर देते हैं और इस प्रकार होकर (लहुभूयविहारिणो—लघुभूतविहारिण) वायु के समान अप्रतिबद्ध विहारी बन जाते हैं अथवा सयमित जीवन में जो विहार करते रहते हैं वे (आमोयमाणा—आमोदमाना) आनन्दका अनुभव करते हुए (कामकमा दिया इव गच्छति—कामक्रमा द्विजा इव गच्छति) यथेच्छ भ्रमण करनेवाले पक्षीयों की तरह विचरते रहते हैं।

इमे य बद्धा फंदति, मम हत्थज्जमागया।
वयं च सत्ता कामेसु भविस्सामो जहा इमे ॥४५॥

अन्वयार्थ—(अज्ज—आर्य) हे आर्य! (मम हत्थ आगया—मम हस्तम् आगता) मेरे और आपके हाथों में प्राप्त हुए और इसीलिये (बद्धा—बद्धा) अनेकविध उपायों द्वारा रक्षित किये गये (इमे—इमे) ये शब्दादिक काम भोग (फंदति—स्पन्दन्ते) अस्थिर स्वभाववाले होनेसे सदा स्थायी नहीं हैं किन्तु अस्थिर ही हैं। यहाँ "च" शब्दसे यह बात भी सूचित की गयी है कि जिस प्रकार कामभोग अस्थिर हैं उसी प्रकार हमलोग भी अस्थायी हैं। क्यों कि इस गति में हमारी अवस्थान का कारण जो आयु कर्म है वह स्वयं अस्थाई है। फिर भी (वयं—वयम्) हम अस्थायी (कामेसु सत्ता—कामे सक्ता) इन अस्थिर विषयोंमें मूर्छित हो रहे हैं यह कितने आश्चर्य की बात है। हमारी इस अनाप्तताका भी कहीं ठिकाना है? इसलिये (जहा इमे भविस्सामो—यथा इमे भविष्याम) जैसे ये पुरोहित आदि बने हैं वैसे ही हमलोग भी बनेंगे। इस प्रकार कमलावती ने राजा से कहा।

सामिसं कुललं दिस्सा, बज्झमाणं निरामिसं।
आमिसं सव्वमुज्झित्ता, विहरिस्सामो निरामिसा ॥४६॥

अन्वयार्थ—हे राजन्! (सामिसं कुललं—सामिषं कुललम्) मांसको दबाये हुए गृद्ध पक्षीको (बज्झमाणं दिस्स—बाध्यमानं दृष्ट्वा) मांस लोलुपी पक्षियों द्वारा दुःखित देखकर तथा (निरामिसं—निरामिषम्) निरामिष उसी पक्षी को निराकुल देखकर के हमलोग भी (सव्वं आमिसं उज्झित्ता—सर्व आमिष उज्झित्वा) अभिष्वङ्ग के कारणभूत समस्त शब्दादिक विषयों का परित्याग करके (निरामिसा—निरामिषा) एवं भोगरूप आमिष से रहित होते हुए (विहरिस्सामो—विहरिष्यामि) विचरण करेंगे।

गिद्धोवमे उ नच्चाण, कामे ससारवड्ढणे ।
उरगो सुवण्णपासे व्व, सकमाणो तणु चरे ॥४७॥

अन्वयार्थ--हे राजन् ! विषयलोलुप जनो को (गिद्धोवमे—गृध्रोपम न्) गृद्ध पक्षी के सदृश (नच्चा—ज्ञात्वा) जानकर तथा (कामे कामान्) शब्दादिक विषयो को (ससारवड्ढणे—ससार-वर्द्धनान्) भववृद्धि के करने वाले (नच्चा—ज्ञात्वा) जानकर आप (सुवण्णपासे-उरगो व्व—सौपर्णेयपार्श्वे उरग इव) गरुड के समीप मे सर्प की तरह (सकमाणो—शकमाण) भयत्रस्त होकर (तणु चरे—तनुचरे) यतनापूर्वक क्रियाओ मे प्रवृत्ति करो ।

नागो व्व बंधण छित्ता, अप्पणो वसहिं वए ।
एयं पत्थं महाराय !, इसुयारित्ति मे सुयं ॥४८॥

अन्वयार्थ—हे राजन् ! (इव-इव) जैसे (नाग नाग) हस्ती (बधण छित्ता—बधन-छित्त्वा) बधन को छेदन करके (अप्पणो वसहि वए—आत्मनो वसति व्रजति) अपने स्थानभूत विन्ध्याटवी मे जाता है इसी तरह आप भी (बधण छित्ता—बधन छित्त्वा) ज्ञानावरणीय कर्म बन्धनको नष्टकर अपने स्थानभूत (वसइ वए—वसति व्रजेत्) मुक्ति मे जाओ (महाराय—महाराज) हे महाराज इषुकार ! (एय पत्थ—एतत्पथ्यम्) इसीमे भलाई है ।(त्ति—इति) इसी प्रकार (मे—मया) मैंने (सुय—श्रुतम्) मुनि जनो के समीप सुना है ।

चइत्ता विउलं रज्जं, कामभोगे य दुच्चए ।
निव्विसया निरामिसा, निन्नेहा, निप्परिग्गहा ॥४८॥
सम्मं धम्मं वियाणित्ता, विच्चा कामगुणे वरे ।
तवं पगिज्झहक्खाय, घोर घोरपरक्कमा ॥५०॥

अन्वयार्थ--(विउल--विपुलम्) विशाल (रज्ज—राज्यम्) राज्यवैभव तथा (दुच्चए कामभोए य—दुस्त्यजान्-कामभोगान् च) छोडने मे कठिन ऐसे कामभोगो का (चइत्ता—त्यक्त्वा) परित्याग करके पश्चात् (सम्म धम्म वियाणित्ता—सम्यक्- धर्म विज्ञान) यथावस्थित-श्रुत चारित्ररूप धर्म के स्वरूप को अच्छी तरह विशेष रीति से समझकर(दुच्चए कामगुणे चइत्ता—दुस्त्यजान् कामगुणान् त्यक्त्वा) श्रेष्ठ शब्दादिको के विषयो का तीन करण तीन योग से त्याग करके (जहक्खाय--यथास्यातम्) तीर्थकरादिको ने जैसी विधि से आराधन करने को कहा है उसी विधि के अनुसार (घोर—घोरम्) कायरो द्वारा आचरित होने मे सर्वथा अशक्य ऐसे (तव—तप) अनशन आदि

तर्यों को (परिगिज्झ—प्रगृह्य) स्वीकार करके (निव्विसया—निर्विषयौ) काम भोगादिकों से रहित अथवा अपने देश से रहित तथा(निरामिसा—निरामिषौ) भोगरूप आमिष से रहित एवं (निन्नेहा—निःस्नेहौ) स्वजनादिक के प्रेमबंधन से रहित हुए वे दोनों राजारानी (निप्परिग्गहा—निष्परिग्रहौ) बाह्य एवं अभ्यन्तर परिग्रह के त्याग कर देने से (घोरपरक्कमा जाया—घोरपराक्रमौ जातौ) कर्मरूपी शत्रुओं के विजय करने में विशिष्ट बलसम्पन्न बन गए।

एव ते कमसो बुद्धा, सव्वे धम्मपरायणा।
जम्ममच्चुभउव्विग्गा, दुक्खस्सन्तगवेसिणो ॥५१॥

अन्वयार्थ—(कमसो—क्रमशः) अनुक्रम से (एव—एवम्) इस प्रकार (बुद्धा—बुद्धाः) प्रतिबोधित हुए (सव्वे—सर्वे) वे सबके सब छहों (जम्ममच्चुभउव्विग्गा जन्म मृत्यु भयोद्विग्ना) जन्म मरण के भय से उद्विग्न बनकर (दुक्खस्सन्तगवेसिणो दुःखस्यान्तगवेषिणः) शारीरिक एवं मानसिक दुःखों का अन्त अब किस प्रकार होगा इस बात की गवेषणा करने में तल्लीन बने और इसलिए (धम्म परायणा धर्मपरायणा जाता) धर्म में ही एक निष्ठावाले हो गये।

सासणे विगयमोहाण, पुव्विं भावण भाविया।
अचिरेणेव कालेण, दुक्खस्सन्तमुवागया ॥५२॥

अन्वयार्थ—(पुव्विं भावणभाविया—पूर्वभावना भाविता) पूर्वभव में भावना से भावित अनित्य अशरण आदि बारह प्रकार की भावनाएँ हैं उनसे भावित अन्तःकरणवाले छहों जीव (विगयमोहाण—विगतमोहानाम्) वीतराग प्रभु के (सासने—शासने) शासन में स्थित रहकर हुए (अचिरेणेव कालेण दुक्खस्सन्तमुवागया अचिरेणैव कालेन दुःखस्यान्तमुपागता) बहुत थोड़े समय में ही चतुर्गतिरूप संसार के अन्त को प्राप्त हो गये अर्थात् मोक्ष में गये।

राया य सह देवीए, माहणो य पुरोहिओ।
माहणी दारगा चेव, सव्वे ते परिनिव्वुडा त्ति बेमि ॥५३॥

अन्वयार्थ—(देवीए—देव्या) कमलावती देवी के (सह—सह) साथ (राया राजा) इषुकार राजा (य—च) और (पुरोहिओ माहणो—पुरोहित ब्राह्मण) पुरोहित ब्राह्मण तथा (माहणी—ब्राह्मणी) उसकी पत्नी यशा तथा (दारगा चेव—दारकौ चैव) उनके दोनों मनोहर दोनों पुत्र (ते सव्वे—ते सर्वे) ये सब छहों ने (परिनिव्वुडे—परिनिर्वृत्ता) कर्मरूपी अग्नि का उपशमन होने से शीतीभूत होकर मुक्ति को प्राप्त किया।

चौदहवाँ अध्ययन सम्पूर्ण

पावसमणिज्जं सत्तदहं अज्झयणं

जे केइ उ पव्वइए नियठे, धम्मं सुणित्ता विणयोववण्णे ।
सुदुल्लहं लहिउं वोहिलाभं, विहरेज्ज पच्छा य जहासुहं तु ॥१॥

अन्वयार्थ – (जे केइ - य ५ञ्चित्) जो कोई मोक्षाभिलाषी पुरुष स्थविर अनगार आदि के समीप (धम्म सुणित्ता धर्मं श्रुत्वा) श्रुतचरित्र रूप धर्म का श्रवण कर तथा (सुदुल्लह वोहि लाभ लहिउ—सुदुर्लभ वोधि लाभ लब्ध्वा) अत्यन्त दुष्प्राप्य सम्यग्दर्शन प्राप्तिरूप वोधिलाभ[1] प्राप्त करके (विणयोववण्णे— विनयोपन्न) ज्ञानविनय दर्शनविनय, चरित्रविनय एव उपचारविनय,—गुर्वादिशुश्रूषा रूपसे युक्त वन (पव्वइए नियठे—प्रव्रजितो निर्ग्रन्थ:) दीक्षित होकर निर्ग्रन्थ साधु हो जाता है—सिंह वृत्ति से दीक्षा धारण कर लेता है, परन्तु पीछे मे वही व्यक्ति दीक्षा धारण करने के वाद (जहासुह—यथासुखम्) निद्रा प्रमादादिक मे तत्पर हो जाने के कारण शृगाल-वृत्ति से (विहरज्ज—विहरेत्) विचरता है ।

सेज्जा दढ़ा पाउरणं मे अत्थि, उप्पज्जइ भोत्तुं तहेव पाउं ।[2]
जाणमि जं वट्टइ आउसुत्ति, किं नाम काहामि सुएण भंते ॥२॥

अन्वयार्थ—(आउसु—आयुष्मन्) हे आयुष्मन् गुरु महाराज ! (मे—मे) मेरे पास (सेज्जा—शय्या) जो वसति है वह (दढ—दृढा) वात आतप जला-दिक उपद्रवो से सुरक्षित है । तथा (पाउरण दढ—प्रावरण दृढ) जो चादर है वह भी शीत आदि के उपद्रव से मेरी रक्षा कर सके ऐसी है । इसी तरह रजोहरण एव पात्रादिक उपकरण भी मेरे पास पर्याप्त मात्रा मे

---

१. वोधिलाभ अर्थात् आत्मभानकी प्राप्ति आत्मभान की प्राप्ति के वाद ही चरित्र मार्ग मे विशेप दृढता आती है ।

२. ऐसी विचारणा केवल प्रमाद का सूचक है सयमी को हमेशा मनन पूर्वक शास्त्राध्ययन करते रहना चाहिए ।

है। तथा (भोत्तु पाउं उप्पज्जइ—भोक्तुम् पातुं उत्पद्यते) खाने पीने को पर्याप्त मिल भी जाता है (ज वट्टइ त जाणामि—यद्वर्तते तद् जानामि) शास्त्र में जीव अजीव आदि जो तत्त्व वर्णित हुए हैं उनके विषय में भी मैं जानता हूं। इसलिए (भत—भदन्त) हे भदन्त! (सुएण किं नाम काहामि—श्रुतेन किं नाम करिष्यामि) शास्त्र पढ़कर अब मैं क्या करूंगा।

जे केइ— पव्वइए, निद्दासीले पगामसो।
भोच्चा पेच्चा सुहं सुयइ, पावसमणे—त्ति वुच्चइ ॥३॥

अन्वयार्थ—(जे केइ—य कश्चित्) जो कोई (पव्वइए—प्रव्रजित) दीक्षित साधु मनमाने सिंहासनादि को (पगामसो—प्रकामशः) अत्यन्त (भोच्चा—भुक्त्वा) खा करके (पेच्चा—पीत्वा) तथा दुग्ध तक्र आदि को खूब मन माना पीकर के (निद्दासील—निद्राशील) निद्रा प्रमाद में पड़कर (सुहं सुयइ—सुखं स्वपिति) सुखपूर्वक सोता रहता है। (स पावसमण त्ति वुच्चइ—स पापश्रमण इत्युच्यते) वह साधु पापश्रमण है वह पापिष्ठ साधु है ऐसा कहा जाता है।[1]

आयरियउवज्झाएहिं, सुयं विणयं च गाहिए।
ते चेव खिसई बाले, पावसमणे—त्ति वुच्चई ॥४॥

अन्वयार्थ—जो मुनि (आयरिय उवज्झाएहिं—आचार्योपाध्याय) आचार्य तथा उपाध्याय (सुयं विणयं च गाहिए—श्रुतं विनयं च ग्राहित) शास्त्र पढ़ने की तथा विनयशील—ज्ञानदर्शन चारित्र एवं उपचार विनय को पालन करने की शिक्षा दी है सो (बाले—बाल) यह बाल श्रमण (ते चेव खिसइ—तानेव खिसति) उनपर भी रुष्ट होता है। उनकी भी निन्दा करने लगता है वह पापश्रमण है।

आयरिय उवज्झायाणं, सम्मं न पडितप्पइ।
अप्पडिपूयए थद्धे, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥५॥

अन्वयार्थ—जो साधु (आयरिय उवज्झायाणं सम्मं न पडितप्पइ—आचार्योपाध्यायानां सम्यक् न परितृप्यति) आचार्य उपाध्याय आदि गुरुजनों की जो आपत्ति पड़ने पर यथाशक्ति सेवा शुश्रूषा आदि द्वारा प्रसन्न नहीं करता है तथा

[1] जो मनमानी बहुत खाने की आदत रखते हैं अथवा आहार पानी कर (खा पीकर) बाद में जो बहुत देर तक सोते रहते हैं वे पापी श्रमण हैं।

(अणडिपूयए—अप्रनिपूजक) अपने ऊपर उपकार करने वाले मुनिजनों का भी जो प्रत्युपकार नही करता है एव (थद्धे-स्तब्ध) जो अहकार मे ही मस्त बना रहता है वह मुनि पापश्रमण है, अर्थात् दर्शनाचार मे शिथिल होने मे वह साधु के कर्तव्य मे बहुत दूर है वास्तविक साधु नही हैं।

सम्मद्दमाणे पाणाणि, बीयाणि हरियाणि य।

असजए संजयमन्नमाणो, पावसमणे-त्ति वुच्चइ ॥६॥

अन्वयार्थ—जो साधु (पाणाणि बीयाणी मम्मद्दमाणे—प्राणान् बीजानि समर्दयन) द्वीन्द्रियादि जीवो को, शाली आदि बीजो को, दूर्वादिक हरित अकुरो को तथा उपलक्षण मे समस्त एकेन्द्रिय जीवो को चरण आदि द्वारा पीडित करता हुआ (असजए—असयत) सयम भाव से वर्जित हो रहा है, फिर भी अपने आपको सयत (मुनि) मान रहा है ऐसा साधु पापश्रमण कहलाता है।

सथार फलगं पीढं, निसिज्जं पायकंबलं।

अप्पमज्जियमारूहइ, पावसमणे-त्ति वुच्चइ ॥७॥

अन्वयार्थ—जो साधु (सथार फलग पीढ निसिज्ज पायकबल—सस्तारम् फलक, पीठ निषिद्या पादकम्बलम्) सस्तारक—शयनासन को फलक पट्टक आदि को पीठ—बाजोट को, निषद्या स्वाध्यायभूमिको, पाद-कम्बल चरण पोछने का अथवा उर्णामय छोटे वस्त्र को (अप्पमज्जिय - अप्रमार्ज्य) रजोहरण आदि से प्रमार्जित न करते हुए तथा न देखकर इनपर (आरुहइ - आरोहति) बैठना है वह (पावसमणे त्ति वुच्चइ—पापश्रमण इत्युच्यते) पापश्रमण कहा जाता है।[1]

दवदवस्स चरइ, पमत्ते य अभिक्खणं।

उल्लघणे य चडे य, पावसमणे-त्ति वुच्चइ ॥८॥

अन्वयार्थ—जो साधु (दवदवस्स चरइ—द्रुत द्रुत चरति) भिक्षा आदि के समय मे जल्दी जल्दी चलता है तथा (अभिक्खणं—अभीक्ष्णम्) बार बार (पमत्ते-प्रमत्त) साधुक्रियाओ के करने मे प्रमादी बनता है। तथा (उल्लघणे—उल्लघन) साधुमर्यादा का उल्लघन करता है (चडे—चण्ड) क्रोध न करने के लिए बार-बार

---

१ जैन शास्त्रो मे सयमी को दिन मे दो बार अपने उपकरणो की देख-भाल करने की आज्ञा दी गई है क्योकि वैसा न करने से सूक्ष्म जीवो की हिंसा होने की सभावना रहती है। इसके सिवाय भी अनेक अनर्थो के होने की सम्भावना रहती है।

ममत्वाने बुलाने पर भी आ जाया करता है (पावसमणत्ति वुच्चइ—पापश्रमण इति उच्यते) उसको पापश्रमण कहा गया है।

पडिलेहेइ पमत्ते, अवउज्झइ पायकंबल।
पडिलेहणा अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥६॥

अन्वयार्थ—जो साधु (पमत्त—प्रमत्त) प्रमादी बनकर (पडिलेहेइ—प्रतिलेखयति) वस्त्र पात्र—मुखवस्त्रिका आदि की प्रतिलेखना करता है कितनेक उपकरणों का प्रतिलेखन करता है कितनेक का नहीं करता है अथवा विधि पूर्वक प्रतिलेखना नहीं करता है तथा (पायकम्बल अवउज्झइ—पात्र कम्बल अपा जित पात्र एवं कम्बल आदि अपनी उपकरण की संभाल नहीं रखता किसी को कहीं पर किसी को कहीं पर इस तरह से उनको जहां तहां रख देता एवं (पडिलेहणा अणाउत्ते—प्रतिलेखनायामनुपयुक्त) प्रतिलेखन क्रिया में जो अनुपयुक्त अर्थात उपयोगी नहीं रहता या प्रतिलेखन क्रिया करता तो है पर उसमें उसका उपयोग न लगा हो ऐसा साधु पापश्रमण कहा गया है।

पडिलेहेइ पमत्ते से, जं किंचि हु णिसामिया।
गुरु परिभावए णिच्चं, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१०॥

अन्वयार्थ—जो साधु (जं किंचि णिसामिया—यत् किंचित् श्रुत्वा निशम्य) इधर उधर की बातों को सुनता हुआ (पडिलेहइ—प्रतिलेखयति) वस्त्र पात्रादिकों की प्रतिलेखना करता है वह (पमत्ते—प्रमत्त) प्रमत्त है तथा प्रतिलेखन क्रिया के समय में भी जो दूसरों से वार्तालाप करता है और प्रतिलेखना करता जाता है वह भी प्रमत्त है तथा (णिच्चं गुरु परिभावए—नित्य गुरुपरिभावक) हमेशा जो गुरुजन की आशातना करता रहता है वह भी प्रमत्त है ऐसा साधु (पावसमणत्ति वुच्चई—पाप-श्रमण इत्युच्यते) पाप श्रमण कहा गया है।

बहुमायी पमुहरी, थद्धे लुद्धे अणिग्गहे।
असंविभागी अचियत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥११॥

अन्वयार्थ—जो साधु (बहुमायी—बहुमायी) प्रचुर मायाचार संपन्न हो (पमुहरी—प्रमुखर) प्रचुर बकवास करनेवाला हो (थद्धे—स्तब्ध) अहंकारी हो

(लुद्धे—लुब्ध) लोभी हो (अनिग्गहे—अनिग्रहे) इन्द्रियो का वश मे करनेवाला न हो (असविभागी—असविभागी) ग्लानादिक साधुग्रो का विभाग नही करता हो तथा (अचियत्ते—अप्रीतिकर) अपने गुरुदेवो पर भी जिसकी प्रीति न हो वह साधु पापश्रमण कहा जाता है ।

विवाय च उदीरेइ अधम्मे अत्तपण्णहा ।
वुग्गहे कलहे रत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१२॥

अन्वयार्थ—जो साधु (विवाय च उदीरेइ—विवाद उदीरयति) शात हुए झगडे को भी नया नया रूप देकर बढाने की चेष्टा करता है (अधम्मे अत्त-पण्णहा—अधर्म आप्तप्रज्ञाहा) दशविध यति धम से महित होता है । तथा सद् बोधरूपक अपनी तथा परकी प्रज्ञा को कुतर्कों द्वारा नष्ट करता है अथवा आत्मस्वरूप की प्रदर्शित बुद्धि को जो बिगडाता है अथवा "अत्तपण्णहा" की सस्कृतच्छाया "आत्मप्रश्नहा" ऐसे भी हो सकती है इसका अर्थ है "यदि कोई ऐसा प्रश्न करता है कि भवान्तर मे जाने वाली आत्मा है नही है" सो वह इस प्रश्न को अपने कुतर्कों द्वारा नष्ट कर देता है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणो से अनुपलभ्यमान होने से गधे क सीग की तरह जब आत्मा का ही अस्तित्व नही है तो फिर भवान्तर मे कौन जाएगा ? इसलिए यह प्रश्न ही अयुक्त है कारण कि धर्मी के होनेपर ही उसके धर्मो का विचार होता है" (वुग्गहे कलहे रत्ते—व्युद्ग्रहे कलहे रक्त) हस्ति आदि के युद्ध मे तथा वाचिक कलह मे तत्पर रहता है । वह (पावसमणे त्ति वुच्चइ—पापश्रमण इत्युच्यते) पापश्रमण कहलाता है ।

अथिरासणे कुक्कुइए, जत्थ तत्थ निसीयइ ।
आसणम्मि अणाउत्ते, पावसमणे त्ति वुच्चई ॥१३॥

अन्वयार्थ—जो साधु (अथिरासणे—अस्थिरासन) स्थिर आसन से रहित होता है तथा (कुक्कइए—कौकुचिक) भाण्ड चेष्टा करने वाला होता है तथा जत्थ तत्थ नसीयइ—यत्र तत्र निषीदति) जहाँ तहाँ अर्थात् सचित्त रजवाली तथा बीजादि युक्त अप्रासुक भूमि पर बैठता है तथा [आस-णम्मि अणाउत्ते—आसने अनायुक्त) आसन मे उपयोग रहित होता है ऐसा साधु (पावसमणेत्ति वुच्चइ—पाप श्रमण इत्युच्यते) पापी श्रमण कहलाता है ॥१३॥

ससरक्खपाओ सुयइ, सेज्जं न पडिलेहइ ।
संथारए अणाउत्तो, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१४॥

अन्वयार्थ—जो साधु (ससरक्खपाओ—सरजस्कपाद) सचित्त धूलि से धूसरित पैर होने पर (सुयइ—स्वपिति) सो जाता है तथा (सेज्जं न पडिलेहइ—शय्यां न प्रतिलेखयति) अपनी वसति की प्रतिलेखना नहीं करता है तथा (संथारए अणाउत्तो—संस्तारके अनायुक्त) दर्भादिक के संस्तार में अनुपयुक्त रहता है बारगवे बिना रात्रि के प्रथम याम (प्रहर) में ही सो जाता है तथा कुक्कुटी (कुक्डी—मुर्गी) के समान पैर पसारकर सोता है वह साधु पापश्रमण कहा गया है ।

दुद्धदही विगइओ, आहारेइ अभिक्खणं ।
अरए य तवोकम्मे पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१५॥

अन्वयार्थ—जो साधु कारण बिना (अभिक्खणं—अभीक्ष्णम्) पुन पुन (दुद्धदही—दुग्धदधिनी) दुग्ध दह्यादि (विगइओ—विकृति) विकृतियों का तथा उपलक्षण से घृतादिक अन्य विकृतियों को (आहारेइ—आहारयति) आहार करता है तथा (तवोकम्मे अरए—तप कर्मणि अरत) अनशन आदिक तपस्या में तल्लीन नहीं रहता है—तपस्याओं को नहीं करता है वह साधु पापश्रमण है ।

अत्थंतम्मि य सूरम्मि, आहारेइ अभिक्खणं ।
चोइओ पडिचोएइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१६॥

अन्वयार्थ—जो साधु (अत्थंतम्मि य सूरम्मि—अस्तान्ते च सूर्ये) सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक (अभीक्खणं अभीक्ष्णम्) पुन-पुन बिना विशेष कारण के (आहारेइ—आहारयति) खाता रहता है (चोइओ—नोदित) श्रुत अध्ययन वाचन आदि रूप ग्रहण शिक्षा में तथा यथावस्थित सामाचारीपालनरूप तथा यथाकाल प्रतिलेखना प्रतिक्रमण करना आदि रूप आसेवन शिक्षा में गुरुजनों के द्वारा प्रेरित होने पर (पडिचोएइ— प्रतिनोदयति) जो स्वयं गुरुओं के साथ वादविवाद करने लग जाता है—उन्हें उपदेश देने से रोकने लग जाता है उनसे कहने लगता है—अभी तो दिन है तो आप ही क्यों नहीं कर लेते । इस प्रकार का साधु पापश्रमण कहा गया है ।

आयरिय परिच्चाइ, परपासडसेवए ।
गाणंगणिए दुब्भूए, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१७॥

अन्वयार्थ—जो साधु (आयरिय परिच्चाइ—आचार्यपरित्यागी) आचार्य का परित्याग कर देता है अर्थात् जब वे कुछ काम करने के लिए कहते हैं तब उनसे ऐसा कहता है कि आप इन समर्थ वृद्धादिक साधुओ से तो काम कराते नही, केवल मुझे ही कार्य करने के लिए प्रेरित किया करते हैं । स्वाध्याय करने मे समर्थ इन वृद्धादिक मुनियो को तो आप स्वाध्याय करने के लिए प्रेरित नही करते मुझे ही—जो इस काममे समर्थ नही हू तब भी प्रेरित किया करते है । भिक्षा मे लभ्य अन्नादिक सामग्री आप वालग्लान मुनियो को तो देते हैं—मुझे तो नही, उल्टा मुझसे आप यही कहते रहते है कि आप तप करो । भला यह भी कोई बात है ? इस प्रकार दोष देकर के वह पापश्रमण साध्वाचार पालन करने मे असमर्थ होने की वजह से तथा आहार आदिक मे लोलुपी होने की वजह से आचार्यका परित्याग कर देता है । तथा (परपासडसेवए—परपासडसेवक) जिनोक्त धर्म को छोडकर वह परधर्म का आराधक हो जाता है (गाणगणिए—गाणगणिक) तथा स्वच्छन्द होने से वह छ माह के भीतर ही अपने गच्छ का परित्याग कर दूसरे गच्छ मे चला जाता है । इसीलिए (दुब्भूए—दुर्भूत.) दुराचारी होने के कारण अतिनिन्दा का पात्र बनता है । ऐसा साधु पापश्रमण कहलाता है ।

सयं गेहं परिच्चज्ज परगेहंसि वावरे ।
निमित्तेण य ववहरइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१८॥

अन्वयार्थ—जो साधु (सय गेह—स्वक गेह)अपने घरको छोडकर मुनिव्रत धारण कर (परगेहसि वावरे—परगेहे व्याप्रियते) गृहस्थ के घरपर आहारार्थी होकर उसका कार्य करता है और(निमित्तेण य ववहरइ—निमित्तेण व्यवहरति)शुभ और अशुभ के कथनरूप निमित्त से द्रव्य को एकत्रित करता है अथवा गृहस्थ आदि के निमित्त क्रय-विक्रयादि करता है (पावसमणे त्ति वुच्चइ—स पापश्रमण इत्युच्यते) वह पापश्रमण कहलाता है ।

सनाइपिंडं जेमेइ, निच्छइ सामुदाणियं ।
गिहिनिसिज्जं च वाहेइ, पावसमणे त्ति वुच्चइ ॥१९॥

अन्वयार्थ—जो साधु (सनाइपिड—स्वज्ञातिपिण्डम्) स्वज्ञातिपिण्ड को ससारावस्था के अपने बन्धुओ द्वारा प्रदत्त भिक्षा को (जेमेइ—जेमति) खाता

है और (सामुदाणिय निच्चइ—सामुदानिकम् नच्छति) अनेक गृहा से लायी हुई भिक्षा नहीं करता तथा (गिहि निसज्ज च वाहइ—गृहिनिषद्या च वाहयति) गृहस्थजनों की शय्या पर बैठता है वह साधु पापश्रमण कहलाता है।

एयारिसे पचकुसीलऽसवुडे, रुवधरे मुणिवराण हिट्ठिमे।
एयसिलोए विसमेव गराहिए, न से इह नेव परत्थ लोए ॥२०॥

अन्वयार्थ—जो (एयारिसे—एतादृश) ऐसा साधु होता है वह (पचकुसीलासवुडे—पचकुशीलासवृत्त) पचकुशीलों के समान अनिरुद्ध आस्रव द्वारवाला होता है पार्श्वस्थ अवसन्न कुशील ससक्त और यथाच्छन्द ये पचकुशील साधु हैं जो अपने आचार में शिथिल होता है वह पार्श्व है। साधु क्रियाओं की आराधना जो मन्द खिन्न होता है वह अवसन्न है। उत्तरगुणों की प्रतिसेवा से जिसका आचार दुष्ट होता है वह कुशील है। दधिदुग्ध आदि विकृतियों में जो आसक्तचित्त रहता है अथवा उत्कृष्ट चारित्रियों में जो उत्कृष्ट चारित्र का पालन करता है एव शिथिलाचारियों में शिथिलाचारी को बन जाता है इस प्रकार बहुरूपी जो साधु होता है वह ससक्त है। शास्त्रीय मर्यादा का परिहार कर अपनी इच्छानुसार जो चलता है वह यथाच्छन्द है। ये पाच कुशील जिनमत में अवन्दनीय कहे गए हैं।

उक्तच—"पासत्थो ओसन्नो होइ, कुसीलो तहेव ससत्तो।
अहच्छदो वियएए, अवदणिज्जा जिणमयम्मि ॥

(रुवधरे—रूपधर) तथा मुनिवेषका ही वह धारक होता है। इसलिए (मुणिवराण हिट्ठिमे—मुनिवराणामधस्तन) वह सदा मुनियों के बीच में अत्यन्त निकृष्ट माना जाता है तथा वह (एयसि लोए—अस्मिन् लोके) इस लोक में (विसमेव गरहिए—विषमिव गर्हित) विष के समान गर्हित होता है (से—स) ऐसा वह साधु (इह परत्थ नेव—इहपरलोके न भवति) न तो इस लोक का रहता है न परलोक का। अर्थात् उसके ये दोनों भव बिगड जाते हैं। क्योंकि वह इस लोक में चतुर्विध सघ के द्वारा अनादरणीय होता है तथा श्रुतचारित्र का विराधक होने से परलोक में वह स्वर्गादिक आदि के सुखों का भी अधिकारी नहीं रहता। अत उसका जन्म निरर्थक हो जाता है।

जे वज्जए एए सया उ दोसे, से सुव्वए होइ मुणीण मज्झे।
अयसि लोए अमयव पूइए, आराहए लोगमिण तहा पर त्ति बेमि ॥२१॥

अन्वयार्थ—(जे—य)जो साधु (एए दोसे—एतान् दोषान्) इन नानाविध शास्त्र नानाचार आदि सर्व्व पूर्व दोषों को (सया उ वज्जए—सदा तु वर्जयति

सदैव दूर कर देता है, उनका सदा के लिये परित्याग कर देता है (से सुणीण मज्झे सुव्वए होइ स मुनीना मध्ये सुव्रतो भवति) वह मुनियो के बीच प्रशस्त व्रत-धारी माना जाता है। तथा वह (अयमि लोए - अस्मिन् लोके) इस लोक मे (अमय व —अमृतमिव) अमृत के समान पूइए—पूजित आदरणीय होता है। चतुर्विध सघ के द्वारा आदरणीय होकर वह (इण लोग तहा पर लोग आराइए—इस लोक तथा परलोक आराधयति) अपने इस लोक तथा परलोक को भी सफल बना लेता है। (त्ति बेमि —इति ब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हू—अर्थात् सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामी से कह रहे है कि जैसा मैंने श्री वीर प्रभु से सुना है सो तुम से कहा है। अपनी तरफ से कुछ नहीं कहा है।

इति पापश्रमण नामक सत्रहवाँ अध्ययन समाप्त।

अठारहवाँ अध्ययन

कंपिल्ले नयरे राया, उदिन्नबलवाहणो।
णामेण संजए णाम, मिगव्वं उवणिग्गए॥१॥

अन्वयार्थ—(उदिन्नबलवाहणो—उदीर्णबलवाहन) शरीर के सामर्थ्य अथवा चतुरंग सैन्य का नाम बल है, गज अश्व शिविका आदि का नाम वाहन है। ये दोनों जिसके विशिष्ट उदय को प्राप्त हो चुके हैं ऐसा (नामेण संजए—नाम्ना संजय) संजय नाम का प्रसिद्ध राजा (कम्पिल्ले नयरे—काम्पिल्य नगर) काम्पिल्य नगर में था। वह राजा एक दिन (मिगव्वं उवणिग्गए—मृगव्यमुपनिर्गत) शिकार खेलने के लिए नगर से निकला।

हयाणीए गयाणीए, रहाणीए तहेव य।
पायत्ताणीए महया, सव्वओ परिवारिए॥२॥

अन्वयार्थ—वह राजा (महया हयाणीए—महता हयानीकेन) विशाल अश्वसेना से, (गयाणीए गजानीकेन) गज सेना से (रहाणीए रथानीकेन) रथसेना से तथैव (पायत्ताणीए—पादातानीकेन) पदातिसेना से (सव्वओ—सर्वतः) चारों ओर से (परिवारिए—परिवारित) परिवृत होता हुआ घिरा हुआ (विनिग्गए—विनिर्गत) नगर से शिकार खेलने के लिए निकला।

मिए छुभित्ता हयगओ, कंपिल्लुज्जाण केसरे।
भीए संते मिए तत्थ, वहेइ रसमुच्छिए॥३॥

अन्वयार्थ—(रसमुच्छिए—रसमूर्च्छित) मृग-मांस के स्वाद का लोलुप वह संजय राजा (हयगओ—हयगत) घोड़े पर सवार होकर (कंपिल्लुज्जाण केसरे—काम्पिल्योद्यानकेसरे) काम्पिल्य नगर के केसर नामक उद्यान में पहुँचा और वहाँ पहुँचकर उसने (मिए छुभित्ता—मृगान् क्षोभयित्वा) मृगों को प्रेरित किया। जब वे (भीए—भीतान्) उसको मरणभय से त्रस्त (संते—श्रान्तान्) श्रान्त हुए, उनमें से इसने (मिए—मृगान्) कितनेक मृगों को (वहेइ हन्ति) मारे।

अह केसरम्मि उज्जाणे, अणगारे तवोधणे ।
सज्झायज्झाणसंजुत्ते, धम्मज्झाण झियायइ ।।४।।

अन्वयार्थ—(अह—अथ) जब राजा मृगो का शिकार कर रहा था उस समय (केमरम्मि उज्जाणे—केशरे उद्याने) उस केशर नाम के उद्यान म (मज्झायज्झाणसजुत्ते—स्वाध्यायध्यानसयुक्त) स्वाध्याय—अगामाध्ययन मे एव धर्म-ध्यान मे तत्पर (अणगारे—अनगार) एक मुनिराज (तवोधणे—तपोधन) तप ही जिसका धन है (धम्मज्झाण झियायइ—धर्मध्यान ध्यायति) आज्ञाविचय, अपायविचय, विपाकविचय एव सस्थानविचय रूप धर्म-ध्यान का चिन्तन कर रहे थे ।

अप्फोवमंडवम्मि, झायइ खवियासवे ।
तस्सगए मिगे पासं, वहेइ से णराहिवे ।।५।।

अन्वयार्थ—(खवियासवे—क्षपितास्रव.) आस्रवो को दूर करनेवाले वे गर्दभालि अनगार (अप्फोवमण्डवम्मि—अप्फोवमण्डपे) वृक्षादि से व्याप्त तथा नागवल्लि आदिसे आच्छादित मडपमे (झायइ—ध्यायति) धर्म-ध्यान कर रहे थे, (तस्स पास आगए मिए से णराहिवे वहेइ—तस्य पार्श्व आगतान् मृगान् स नराधिप हन्ति) इन मुनिराज के पासमे आए हुए उन मृगोको उस राजाने मारा ।

अह आसगओ राया खिप्पमागम्म सो तहिं ।
हए मिए उ पासित्ता अणगार तत्थ पासई ।।६।।

अन्वयार्थ—(अह—अथ) जब मृग मर चुके तब (आसगओ—अश्वगत) घोडे पर चढा हुआ । (सो राया—स राजा) वह राजा (खिप्प—क्षिप) शीघ्र ही (तहिं—तत्र) उस स्थान पर (आगम्म—आगम्य) आकर (हए मिएउ पासित्ता—हतान् मृगान् दृष्ट्वा) मरे हुए मृगो को देखने लगा । इतनेमे ही (तत्थ अणगार पासई—तत्र अनगार पश्यति) उसकी दृष्टि एक मुनिराज पर पडी जो वही बैठे हुए थे ।

अह राया तत्थ संभंतो, अणगारो मणा हओ ।
मए उ मंद पुन्नेणं रसगिद्धेण वित्तुणा ।।७।।

अन्वयार्थ—(अह—अथ) इसके बाद (तत्थ—तत्र) उस मुनिराज के दिखने पर (सम्भतो—सभ्रान्तः) भयत्रस्त (राया—राजा) राजाने ऐसा विचार किया कि मुनिराज के मृगो को मार देने से (मदपुन्नेण—मन्दपुण्येन)

हे राजन्, (अभओ—अभयम्) तुम भयभीत न होओ। तथा तुम प्रजापालक हो इसलिए समस्त जीवो को आत्मवत् समझ कर (अभयदाया भवाहि य—अभयदाता भव च) उनके लिए अभयदाता बनो। जैसे मरण का भय तुमको है वैसे ही सबको है। फिर हे राजन्, (अणिच्चे जीव लोगम्मि—अनित्ये जीव-लोके) यह जीवलोक अनित्य है—जल-बुदबुदके समान है फिर तुम (कि—किम्) क्यो (हिंसाए पसज्जसि—हिंसाया प्रसज्जसि) इस हिंसक कार्य मे तत्पर हो ?

जया सव्वं परिच्चज्ज, गतव्वमवसस्स ते।
अनिच्चे जीवलोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जया—यदा) जब यह निश्चित है कि (अवसस्स—अवशस्य) मृत्यु के पजे द्वारा परोक्ष रूप मे पराधीन हुए (ते—ते) तुम को (सव्व परिच्चज्ज—सर्वं परित्यज्य) इस अन्त पुर, अपारधन राशी, कोष्ठागार, भाण्डागार आदि का परित्याग करके (गतव्व—गन्तव्यम्) परभव मे जाना है तो हे राजन्! फिर (किं—किम्) क्यो (अनिच्चे जीवलोगम्मि- अनित्ये जीव-लोके) अनित्य—अनवस्थित इस जीवलोक मे वर्तमान (रज्जम्मि—राज्ये) क्षणभगुर राज्यमे (पसज्जसि—प्रसज्जसि) फंस रहे हो।

जावियं चेव रूव च विज्जुसंपायचचलं।
जत्थ तं मुज्झसि राय, पेच्चत्थं णाववुज्झसि ॥१३॥

अन्वयार्थ—हे राजन्! (जत्थ त मुज्झसि—तत्र त्व मुह्यसि) जिन जीवित पर्यायो मे तुम मोहाधीन बन रहे हो वह (जीविय चेय रुव च—जीवित चैव रूप च) जीवित एव रूप (विज्जुसपायचचल—विद्युद्-सपात-चचलम्) सब बिजली की चमक के समान चचल हैं। इसमे मोहाधीन होकर ही (पेच्यत्थ णाववुज्झसि—प्रेत्यार्थं न अवबुध्यसि) तुम अभी तक परलोक-रूप अर्थ को नही जान सके हो।

दाराणि य सुया चेव, मित्ता य तह बधवा।
जीवंतमणुजीवति, मयं नाणुव्वयति य ॥१४॥

अन्वयार्थ—हे राजन्! देखो, ससार कितना स्वार्थी है जो (दाराणि य सुयाचेव मित्ताय तह बधवा—दाराश्च सुताश्चैव मित्राणि तथा बान्धवाश्च) स्त्री, पुत्र एव मित्र तथा बाधवजन ये सब (जीवन्तमणुजीवति—जीवन्त-मनुव्रजन्ति) जीवित अवस्था के ही साथी रहते हैं, कमाए हुए धनमे सम्मि-लित होकर मोज-शोक उडाते है (मय नाणुव्वयति य—मृत नानुव्रजन्ति च)

परन्तु जब इस जीवको परलोक मे जाने का समय आ जाता है, मृत्यु आकर जब इसका गला दबाचता है उस समय कोई भी उसकी न रक्षा करता है न साथ चलने को तयार होता है।

नीहरंति मयं पुत्ता, पियरं परमदुक्खिया ।
पियरो वि तहा पुत्ते बंधू रायं तवं चरे ॥१५॥

अन्वयार्थ—हे राजन् ! इससे अधिक संसार की असारता और क्या हो सकती है जो (परमदुक्खिया पुत्ता—परमदुःखिता पुत्रा) पिताको परलोक जाते समय पुत्रादिक परम दुःखित हुआ करते हैं। तथा (मयं पियरं नीहरंति-मृतं पितरं निहरंति) मरे हुए उस पिता को जिसका कि चरम एकच्छत्र राज्य था उसे उसी घर से बाहर निकाल देते हैं। तथा (पियरो वि पुत्ते बंधु नीहरंति—पितरो पि पुत्रान् बंधून् निहरंति) पिता भी प्राणों से प्रिय पुत्र तथा बंधुजनों के मर जाने पर बाहर निकाल देते हैं।

अतः संसार की (रायं—राजन्) हे राजन् ! इस प्रकार की दशा देखकर (तवं चरे—तपश्चरेः) इस जीवन को सफल करने के लिए तुम तपश्चर्या करो।

तवो तेणज्जिए दव्वे दारे य परिरक्खिए ।
कीलंतऽन्ने नरा रायं, हट्ठतुट्ठमलंकिया ॥१६॥

अन्वयार्थ—(रायं—राजन्) हे राजन् ! अर्थोपार्जक व्यक्ति की मृत्यु के बाद (तेणज्जिए दव्वे परिरक्खिए दारे य—तनार्जितानि द्रव्याणि परिरक्षितान् दारान् च) उनके द्वारा पूर्वोपार्जित द्रव्य को तथा उसकी परिरक्षित दारा स्त्रीजन को (अन्ने नरा कीलंति—अन्ये नरा क्रीडंति) पाकर दूसरे व्यक्ति आनंद करते हैं और (हट्ठतुट्ठ हवइ—हृष्टतुष्टा भवंति) हर्षित होते रहते हैं और खूब संतुष्ट रहा करते हैं (अलंकिया हवइ—अलंकृताश्च भवन्ति) वस्त्राभूषण से सुशोभित होकर रहते हैं।

तेणावि जं कयं कम्मं, सुहं वा जइ वा दुहं ।
कम्मुणा तेण संजुत्तो, गच्छई उ परं भवं ॥१७॥

अन्वयार्थ—(तेणावि जं सुहं वा—तनापि यत् पूर्व सुखदुःख वा यत्कृतम्) मरणोन्मुख उस मनुष्यने सुख के लिए पहले जो शुभकर्म किया अथवा दुःखदायक अशुभ कर्म किया (तेण कम्मुणा संयुत्तो परं भवं उ गच्छई—तेन कर्मणा संयुक्तः परभवं तु गच्छति) उसी के अनुसार वह आत्मा उस कर्म

युक्त होकर परभवमे अकेला ही जाता है। जब यह बात सुनिश्चित है कि आत्मा के साथ शुभाशुभ कर्म ही जाते हैं, तो हे राजन्! शुभ कर्महेतुक जो तप है, उसको तुम करो।

सोऊणं तस्स सो धम्मं अणगारस्स अंतिए।
महया सवेग निव्वेयं समावन्नो नराहिओ ॥१८॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उन (अणगारस्स—अनगारस्य) मुनिराज के (अतिए—अन्तिके) समीप (धम्म सोउण—धर्म श्रुत्वा) श्रुत चारित्र रूप धर्म का उपदेश सुनकर (सो नराहिवो—स नराधिप) उस सजय राजा को (महया सवेगनिव्वेय समावन्नो—महासवेगनिर्वेदसमापन्न) अत्युत्कृष्ट सवेग(मुक्ति-प्राप्तिकी अभिलाषा)तथा निर्वेद(ससार से वैराग्य)प्राप्त हो गया।

संजओ चइउं रज्जं, निक्खंतो जिणसासणे।
गद्दभालिस्स भगवओ, अणगारस्स अंतिए ॥१९॥

अन्वयार्थ—(सजओ—सयत) सवेग एव निर्वेद से युक्त सजय राजाने (रज्ज चइउ—राज्य त्यक्त्वा) राज्य का परित्याग करके (अणगारस्स गद्द भालिस्स भगवओ—अनगारस्य गर्दभाले भगवत) मुनिराज गर्दभालि महाराज के (अतिए—अन्तिके) पास (जिणसासणे निक्खतो—जिनशासने निष्क्रान्त) जिनेन्द्रदीक्षा धारण करली।

चिच्चा रज्जं पव्वइए, खत्तिए परिभासई।
जहा ते दीसइ रूवं, पसन्नं ते तहा मणो ॥२०॥

अन्वयार्थ—(खत्तिए—क्षत्रिय)क्षत्रियने (रज्ज चिच्चा—राज्य त्यक्त्वा) राज्य का परित्याग करके (पव्वइए—प्रव्रजित) दीक्षा धारण की थी। यह क्षत्रिय राजऋषि थे तथा पूर्व जन्म मे वैमानिक देव थे। किसी निमित्त को पाकर इनको जाति-स्मरण ज्ञान हुआ। पूर्वजन्म की स्मृति आ जानेके कारण सर्वविरति का उदय आजाने से शीघ्र ही राज्य का परित्याग करके दीक्षित हुए और विहार करते हुए यहाँ आए थे। सो उन्होने सयत मुनि को देखकर पूछा—हे मुने! (जहा ते रुव दीसइ—यथा ते रूप दृश्यते) जैसा तुम्हारा रूप विकाररहित दिख रहा है। (तहा—तथा) उसी प्रकारमे (ते मणो पसन्न दीसइ—ते मन प्रसन्न दृश्यते) तुम्हारा मन भी विकाररहित प्रसन्न दिखाई देता है।

किं णामे किं गोत्ते, कस्सट्ठाए वा माहणे ?
कहं पडियरसी बुद्धे ! कहं विणीयेत्ति वुच्चसि ॥२१॥

अन्वयार्थ—हे मुने ! (किं णामे—किम् नाम) आपका क्या नाम है ? तथा (किं गोत्ते—किं गोत्र) गोत्र आपका क्या है ? (कस्सट्ठाए च माहणे—कस्मै वा अर्थाय त्वं माहन) किस प्रयोजन को लेकर आप दीक्षित हुए हैं ? तथा (बुद्धे कहं पडियरसी—बुद्धान् कथं प्रतिचरसि) आचार्यों की किस तरह से आप सेवा करते हैं ? और आप (कहं विणीएत्ति वुच्चसि—कथं विनीत इत्युच्यते) विनयवान् हैं यह बात कैसे घटित हुए हैं अर्थात् आप विनयशील कैसे बने ?

संजओ नाम नामेण, तहा गोत्तेण गोयमे ।
गद्दभाली ममायरिया, विज्जा चरणपारगा ॥२२॥

अन्वयार्थ—हे मुने ! (नामेण संजओ नाम—नाम्ना संजय नाम) मैं नाम से संजय हूं अर्थात् मेरा नाम संजय है तथा (गोत्तेण गोयमे—गोत्रेण गोतम अस्मि) मैं गोत्र से गोतम हूं अर्थात् गोतमगोत्री हूं। तथा (विज्जा चरणपारगा गद्दभाली ममायरिया—विद्याचरणपारगा गर्दभालि मम आचार्य सन्ति) श्रुतचारित्रपारगत गर्दभालि नामक आचार्य मेरे गुरु हैं।

किरियं अकिरियं विणयं, अन्नाणं च महामुणी ।
एतेहिं चउहिं ठाणेहिं, मेयन्ने किं पभासई ॥२३॥

अन्वयार्थ—हे महामुने ! (किरियं—क्रिया) जीवादिकों की सत्तारूप क्रिया तथा (अकिरियं—अक्रिया) जीवादिक पदार्थों की नास्तित्वरूप अक्रिया तथा (विणयं—विनय) सबको नमस्कार करने रूप विनय एवं (अन्नाणं—अज्ञानम्) वस्तुतत्त्व का ज्ञान (एतेहिं चउहिं ठाणेहिं—एतैः चतुर्भिः स्थानैः) इन चार स्थानों द्वारा अपने अपने अभिप्राय से कल्पित इन चार हेतुओं द्वारा (मेयन्ने—मेयज्ञा) अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार जिन्होंने वस्तु का स्वरूप परिकल्पित किया है ऐसे सर्वज्ञ के सिद्धान्त से बहिष्कृत कुनीर्थिक जन (किं पभासई—किं प्रभाषन्ते) कुत्सित ही तत्त्वों का प्ररूपण करते हैं।

इइ पाउकरे बुद्धे, नायए परिनिव्वुडे ।
विज्जाचरणसंपन्ने सच्चे सच्चपरक्कमे ॥२४॥

अन्वयार्थ—(बुद्धे—बुद्ध) बुद्ध—तत्त्वज्ञाता (परिनिव्वुडे—परिनिर्वृत) कषायरूप अग्नि के सर्वथा शान्त हो जाने से सब तरह से शीतीभूत हुए तथा

(विज्जाचरणसपन्नो—विद्याचरणसम्पन्न) क्षायिक ज्ञान एव चारित्र मे सम्पन्न, इसलिए (सच्चे—सत्य) सत्य बोलने वाले आप्त तथा (सच्चपरक्कमे —सत्यपराक्रम) अनन्तवीर्यसम्पन्न ऐसे (नायए—ज्ञायक.) ज्ञातिपुत्र महावीर प्रभु ने ही (इइ पाउकरे—प्रादुरकार्षीत्) ये क्रियावादी आदिक कुत्सित बोलते है। हमने अपनी तरफ से ऐसा नही कहा है।

पडंति नरए घोरे, जे नरा पावकारिणो।
दिव्वं च गइ गच्छन्ति, चरित्ता धम्ममारियं ॥२५॥

अन्वयार्थ—पावकारिणो – पापकारिणः) क्रियावादी आदि व्यक्तियो द्वारा की गई असत्प्ररूपणा के सेवन करने मे परायण(जे—ये) जो (नरा—नरा) मनुष्य हैं वे (घोरे नरए पडति—घोरे नरके पतन्ति) मर कर भयकर नरकावास मे जाते हैं। (च आयरिय धम्म चरित्ता—च आर्यं धर्मं चरित्वा) जिन-प्ररूपित धर्म का सेवन करते हैं वे उनके सेवन से (दिव्व गइ गच्छति—दिव्या गति गच्छन्ति) देवलोक को अथवा समस्त गतियो मे प्रधानभूत सिद्ध-गति को प्राप्त करते हैं। इसलिए हे मुने ! असत्प्ररूपणा का परित्याग करके आपको सत्प्ररूपणा मे लगा रहना चाहिए।

मायावुइयमेयं तु मुसा आभा निरट्ठिया।
सजममाणो वि अहं, वसामि इरियामि य ॥२६॥

अन्वयार्थ—हे सजय मुने ! क्रियावादी आदि के द्वारा जो प्ररूपणा की जाती है (एय—एतत्) यह सब (मायावुइय—मायोक्तम्) माया से ही कहा गया है तथा (मुसा भासा निरट्ठिया—मृषा भाषा निरर्थिका) इनकी भाषा सर्वथा अलीक (असत्य) है और निरर्थक (अकल्याणकारी)है। इसलिए (अह सजममाणो वि अह—सयच्छन्नपि) मैं पाखडी के सिद्धान्तो को श्रवणादि से दूर होकर निश्चय से (वसामि—वसामि) अपने आत्मभाव मे रमण करता हू। यह बात सयत मुनि की स्थिरता के निमित्त हो क्षत्रिय राजा ऋषि ने कही है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार मैं क्रियावादी आदि की असत्प्ररूपणा से परे रहता हू, उसी प्रकार आपको भी दूर रहना चाहिए। कहा भी है— "ठिओ य ठानए पर" जो स्वय स्थित होता है वही दूसरो को भी स्थित कर सकता है तथा मैं(य इरियामि —चरामि)सयम मार्ग मे विचरण करता हू।

सव्वे ते विदिता मज्झ मिच्छादिट्ठी प्रणारिया ।
विज्जमाणे परे लोए, सम्म जाणामि अप्पग ॥२७॥

अन्वयार्थ—हे सजय मुने ! (ते सव्वे मिच्छादिट्ठी प्रणारिया मज्झ विदिता—ते सर्वे मिथ्यादृष्टय अनार्या मम विदिता) पूर्वोक्त व सब क्रियावादी आदि मिथ्यादृष्टि हैं तथा अनार्य हैं, यह मैं अच्छी तरह से जानता हूँ। तथा य (विज्जमाणे परे लोए—विद्यमाने परे लोके) सब विद्यमान परलोक में अनेक प्रकार की यातनाओं का अनुभव करेंगे, नरक निगोदादिक के भयकर कष्टों को सहन करेंगे यह बात भी मैं (सम्म जाणामि—सम्यक् जानामि) अच्छी तरह जानता हूँ अथवा 'परो लोको विद्यमानो' परलोक का अस्तित्व है, यह बात भी मैं अतिशय ज्ञान से जानता हूँ तथा जातिस्मरण ज्ञान के लाभ से (अप्पग सम्म जाणामि—आत्मान सम्यक् जानामि) मैं अपनी आत्मा को भी जानता हूँ। इसीलिए मैं उनकी सगति से दूर हूँ।

अहमासि महापाणे, जुइमवरिससओवमे ।
जा सा पाली महापाली, दिव्वा वरिससओवमा ॥२८॥

अन्वयार्थ—हे मुने ! (महापाणे—महाप्राणे) ब्रह्मनामक पाचवें देवलोक महाप्राण नामक विमान मे (अह—अहम्) मैं, जुइम – द्युतिमान्) दीप्ति विशिष्ट (वरिससओवमे—वर्षशतोपम अहम्) सौ वर्ष की पूर्ण आयु वाले जीव के समान था अर्थात् मनुष्य की उत्कृष्ट आयु सौ वर्ष है। यदि वह सौ वर्ष जीता है तो पूर्णायुष्क कहलाता है। उसी प्रकार मैं भी विमान मे परिपूर्ण आयुवाला देव था। देवलोक मे आयु पल्योपम व सागरोपम प्रमाण की होती है। सो यहाँ पाली शब्द से पल्यप्रमाण व महापाली शब्द से सागर प्रमाण स्थिति ग्रहण करनी चाहिए। राजऋषि कह रहे हैं कि वहाँ पर मेरी (दिव्वा—दिव्या) देव सम्बन्धी स्थिति (वरिससओवमा महापाली—वर्षशतोपमा महापालि) मनुष्य-पर्याय मे सौ वर्ष प्रमाण आयु भोगने वाले जीव के समान दस सागर की पूर्ण स्थिति थी।

से चुओ बभलोगाओ, माणुस्स भवमागओ ।
अप्पणो य परेसि च, आउ जाणे जहा तहा ॥२९॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) देवभव सम्बन्धी आयु पूर्ण होने पर (बभलोगाओ चुओ—ब्रह्मलोकात् च्युत) उस पचम देवलोक से चलकर मैं (माणुस्स भवमागओ—मानुष्य भवमागत) मनुष्य सम्बन्धी भव मे आया हूँ। इस प्रकार

अपने जातिस्मरणात्मक ज्ञान द्वारा बोध करके उस राजऋषि ने संजय मुनि से यह भी कहा कि मैं (अप्पणो परेसि च जहा आउ तहा जाणे—आत्मन परेषा च यथा आयु तथा जाने) अपना तथा दूसरो का आयु कितना है; वह भी मैं जानता हू। उपलक्षण से गति को भी जानता हू।

नाणारुइं च छंदं च परिवज्जिज्ज संजए ।
अणट्ठा जे य सव्वत्था, इइ विज्जामणुसंचरे ॥३०॥

अन्वयार्थ—हे संजय! (संजए—संयत) साधु का कर्तव्य यह है कि वह (नाणारुइं च छंदं च परिवज्जिज्ज—नानारुचिं च छंदं च परिवर्जयेत्) क्रिया-वादी आदि अनेक प्रकार के मिथ्यात्वीयो की मतविषयक अभिलाषा का तथा अपनी बुद्धि द्वारा कल्पित अभिप्राय का परित्याग कर दे। तथा (अणट्ठा जेय सव्वत्था—अनर्था ये च सर्वार्था) समस्त अनर्थों का कारण जो प्राणाति-पातादिक दोषो का परित्याग करे। (इइ—इति) इस प्रकार की यह (विज्जामणु—विद्यामनु) सम्यक्ज्ञानरूप विद्या को लक्ष्य मे रखकर तुम (संचरे—संचरे) संयम-मार्ग मे रत रहो।

पडिक्कमामि पासिणाणं, परमंतेहिं वा पुणो ।
अहो उट्ठिए अहोरायं, इइ विज्जा तवं चरे ॥३१॥

अन्वयार्थ—हे संजय मुने! मैं (पासिणाणं पुणो परमंतेहिं वा—प्रश्नेभ्य पुन परमन्त्रेभ्योवा) शुभाशुभ सूचक अंगुष्ठादि के प्रश्नो से अथवा गृहस्थजनो के तत्तत्कार्यालोचनरूप जो मन्त्र हैं उनसे (पडिक्कमामि—प्रतिक्रमामि) प्रति-निवृत्त हो गया हू, अर्थात् अब मैं इस प्रकार के सावद्यरूप कर्म नही करता हू, जो संजय इस प्रकार के सावद्यरूप प्रश्नादिक के व्यापार के परिवर्जन से संयम के प्रति सदा (उट्ठिए—उत्थित) उत्थानशील बना रहता है (अहो—अहो) उसके विषय मे क्या कहना है—ऐसा तो कोई ही महात्मा होता है। इसलिए हे संजय मुने! तुम इस अनन्तरोक्त अर्थको (विज्जा—विद्वान्) जानो और (अहोरायं—अहोरात्रम्) प्रतिक्षण (तवं चरे—तपश्चरे) सावद्यव्यापार विरति रूप तप का अनुष्ठान करो। प्रश्नादिक मे समय मत बिताओ।

जं च मे पुच्छसी काले, सम्मं सुद्धेण चेयसा ।
ताइं पाउकरे बुद्धे, तं नाणं जिणसासणे ॥३२॥

अन्वयार्थ—हे संजय! (सुद्धेण चेयसा—शुद्धेन चेतसा) अति निर्मल चित्त से युक्त तुम (मे—माम्) मुझसे (काले पुच्छसी—काले पृच्छसि आयु के

विषय में जो पूछ रहे हो (ताइ—तद्) उस विषयक ज्ञान को (बुद्ध—बुद्ध) भगवान महावीर प्रभु ने प्रकट किया है (त नाए—तत् ज्ञानम्) वह ज्ञान (जिणसासणे—जिनशासने) जिन प्ररूपित सिद्धांत में ही है। अन्य सुगतादि प्रणीत शास्त्रों में नहीं है। इसलिए तुम जिनशासन में इस ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त प्रयत्नशील रहो। मैंने यह ज्ञान वहीं से प्राप्त किया है।

किरियं च रोयए धीरे, अकिरियं परिवज्जए।
दिट्ठीए दिट्ठीसपन्ने, धम्मं चरसुदुच्चरं ॥३३॥

अन्वयार्थ—हे संजय! (धीरे किरियं रोयए—धीरः क्रिया रोचयत्) संयम में धृतिसम्पन्न मुनि का कर्त्तव्य है कि वह सदनुष्ठानात्मक प्रतिक्रमण एवं प्रतिलेखनारूप क्रिया को दोनों समय करे। तथा दूसरों से भी करावे। अथवा— जीव है अजीव है। इत्यादिरूप से जीव और अजीव की सत्ता का वह स्वयं स्वीकार करे और दूसरों को भी इसकी स्वीकृति कराये। तथा (अकिरियं परिवज्जए—अक्रिया परिवर्जयेत्) मिथ्यादृष्टियों द्वारा कल्पित अज्ञानरूप कष्ट क्रिया का अथवा जीव नहीं है अजीव नहीं है इत्यादि जीवाजीव विषयक नास्तित्व क्रिया का परित्याग करे। और (दिट्ठीए—दृष्ट्या) सम्यग्दर्शनरूप बुद्धि के साथ (दिट्ठिसपन्ने—दृष्टिसंपन्न) सम्यक् ज्ञान से संपन्न बने। जब मुनि के लिए इस प्रकार का प्रभु का उपदेश है तब तुम भी (सुदुच्चरं धम्मं चर—सुदुश्चरं धर्मं चर) कायरजनों से दुराराध्य इस श्रुत चारित्र रूप धर्म की आराधना करने में सदा सावधान रहो।

एयं पुण्णं पयं सोच्चा, अत्थधम्मोवसोहियं।
भरहो वि भारहं वासं, चिच्चा कामाइ पव्वए ॥३४॥

अन्वयार्थ—(अत्थधम्मोवसोहियं—अर्थधर्मोपशोभितम्) स्वर्ग मोक्षरूप पदार्थ से एवं इस पदार्थ की प्राप्ति में उपादानभूत धर्म से शोभित (एयं पुण्णं पयं सोच्चा—एतत्पुण्यपदं श्रुत्वा) इस पूर्वोक्त पुण्यपद को सुन करके (भरहो वि—भरतोऽपि) भरत नाम के प्रथम चक्रवर्ती ने भी (भारहं वासं कामाइ चिच्चा—भारतं वर्षं कामान् त्यक्त्वा) भारतवर्ष के समस्त साम्राज्य का तथा शब्दादिक रूप कामभोगों का परित्याग करके (पव्वइए—प्रव्रजित) दीक्षा अंगीकार की।

सगरो वि सागरंतं, भरहवासं नराहिवो।
इस्सरियं केवलं हिच्चा, दयाए परिनिव्वुए ॥३५॥

अन्वयार्थ—हे संजय मुने! अब मैं तुमको सगर चक्रवर्ती का भी (नरा

हिवो—नराधिप) नराधिप (सगरोवि—सगरोऽपि) सगरचक्रवर्ती भी (सागरंत -सागरान्तम्) सागरपर्यन्त तीन दिशाओ मे समुद्रपर्यन्त तथा उत्तर दिशा मे चुल हिमवत्पर्यन्त (भरहवास—भारतवर्ष का शासन करके पश्चात् उसके (केवल इस्सरियं—केवल ऐश्वर्यम्) असाधारण ऐश्वर्य को (हिच्चा—हित्वा) परित्याग करके (दयाए परिनिव्वुए—दयाय परिनिवृत्त) सयम की आराधना से मुक्ति को प्राप्त किया है।

चइत्ता भारहं वासं चक्कवट्टी महिड्ढीओ।
पव्वज्जमब्भुवगओ, मघवं नाम महाजसो ॥३६॥

अन्वयार्थ--(महाजसो—महायशा) महायशस्वी—नवनिधि एव चौदह-रत्नो के अधीश्वर अथवा वैक्रीयलब्धि से युक्त (मघव नाम चक्कवट्टी—मघवा नाम चक्रवर्ती) मघवा नाम के तृतीय चक्रवर्ती ने (भारह वास—भारत वर्षम्) भरतक्षेत्र के षट्खड की ऋद्धिका (चइत्ता—त्यक्त्वा) त्यागकर (पवज्जमब्भुवगओ—प्रवज्या अभ्युपगत) सयम लिया।

सणंकुमारो मणुस्सिंदो, चक्कवट्टी महिड्ढीओ।
पुत्तं रज्जे ठवित्ताणं, सो वि राया तवं चरे ॥३७॥

अन्वयार्थ--सो-स उस प्रसिद्ध (महिड्ढीओ-महर्द्धिक) महाऋद्धि सम्पन्न (मणुस्सिंदो—मनुष्येन्द्र) मनुष्योमे इन्द्र जैसे चतुर्थ (चक्कवट्टी—चक्रवर्ती) चक्रवर्ती (सणकुमारो—सनत्कुमार अपि) सनत्कुमार ने भी (पुत्तरज्जेठवित्ताण-पुत्र राज्ये स्थापयित्वा) अपने पुत्र को राज्य पर बैठाकर (तवचरे—तप आचरत्) चारित्रकी आराधना की।

चइत्ता भारहंवासं, चक्कवट्टी महड्ढिओ।
संती संतिकरे लोए, पत्तो गइमणुत्तरं ॥३८॥

अन्वयार्थ—(महड्ढिओ महर्द्धिक) चौदहरत्न एव नवनिधि आदि ऋद्धियो से युक्त (चक्कवट्टी चक्रवर्ती) पचम चक्रवर्ती (लोएसतिकरे—लोके शान्तिकर) त्रिभुवन मे सर्वप्र कार से शान्ति के कर्ता (सति—शान्ति) ऐसे शातिनाथ प्रभुने भी जो सोलहवें तीर्थ कर हुए है (भारहवास—भारत वर्षम्) षट्खड की ऋद्धिका (चइत्ता—त्यक्त्वा) परित्याग करके (अणुत्तर गइ पत्तो —अनुत्तरा गति प्राप्त) सर्वोत्कृष्ट सिद्धिरूप गति को प्राप्त किया है।

इक्खागुरायवसभो, कुन्थू नाम नराहिवो।
विक्खायकित्ती भयवं, पत्तो गइमणुत्तर ॥३९॥

अन्वयार्थ—इक्खागुराय वसभो—इक्ष्वाकुराजवृषभ) इक्ष्वाकुवशीय—

भूपा म श्रेष्ठ (कुंथु नाम नराहिवो-कुंथुर्नामनराधिप) कुंथुनाम के छठवें चक्रवर्ती हुए हैं (विक्खामकित्ती विख्यातकीर्ति) तथा वही प्रसिद्ध कीर्ति सपन्न (भगव भगवान्) अष्ट महाप्रतिहार्यों से सुशोभित सत्रहवें तीर्थंकर हुए हैं। इन्होंने (प्रणुत्तरगइ पत्तो—अनुत्तरा गति प्राप्त) सर्वोत्कृष्ट सिद्धिगति प्राप्त की है।

सागरंत चइत्ताण, भरहं नरवरीसरो।
अरो य अरयं पत्तो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४०॥

अन्वयार्थ—(नरवरीसरा—नरवरेश्वर) नराधिप (अरो—अर) अर नामक सप्तम चक्रवर्ती ने (अरयं पत्तो—अरजं प्राप्त) वैराग्य प्राप्त करके (सागरंत भरहं—सागरान्त भारतम्) इस सागरान्त भरतक्षेत्र का (ण—खलु) निश्चय से (चइत्ता—त्यक्त्वा) परित्याग करके (प्रणुत्तरगइ पत्तो—अनुत्तरा गति प्राप्त) सर्वोत्कृष्ट सिद्धिगति को प्राप्त किया। ये १८वें तीर्थंकर हुए हैं।

चइत्ता भरहं वासं, चक्कवट्टी महिड्ढिओ।
चइत्ता उत्तमे भोगे, महापउमो तवं चरे ॥४१॥

अन्वयार्थ—(महिड्ढिओ—महर्द्धिक) चौदह रत्न एवं नवनिधि—आदि महाऋद्धियों के अधिपति (चक्कवट्टी—चक्रवर्ती) नवम चक्रवर्ती (महापउमो—महापद्म) (भारहं वास चइत्ता—भारत वर्ष त्यक्त्वा) इस समस्त भारतवर्ष का परित्याग करके तथा (उत्तम भोगे चइत्ता—उत्तमान्भोगान् त्यक्त्वा) उत्तम भोगों का परित्याग करके (तवं चरे—तप अचरत्) तपस्यापूर्ण आराधना की और सकल कर्मों का क्षय करके मोक्ष पधारे।

एगच्छत्तं पसाहित्ता, महीं माणनिसूरणो।
हरिसेणो मणुस्सिदो, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४२॥

अन्वयार्थ—(माणनिसूरणो—माननिषूदन) समस्त शत्रुओं के मान का मर्दन करने वाला (मणुस्सिदो—मनुष्येन्द्र) २१वें तीर्थंकर की मौजूदगी में विद्यमान हरिषेण नाम के दसवें चक्रवर्ती ने (महीं—महीम्) इस पृथ्वी को (एगच्छत्तं—एकच्छत्रां कृत्वा) पूर्णरूप से अपने अधीन करके पश्चात् (अणुत्तर गइ पत्ता—अनुत्तराम् गति प्राप्त) सर्वोत्कृष्ट मोक्ष रूप गति को प्राप्त किया।

अन्निओ रायसहस्सेहिं, सुपरिच्चाई दमं चरे।
जयनामो जिणक्खायं, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४३॥

अन्वयार्थ—नमिनाथ के शासन मे (जयनामो—जयनामा) जय नामक ११वे चक्रवर्ती ने (जिणक्खाय—जिनाख्यातम्) जिनेन्द्र-प्रतिपादित श्रुतचारित्र-रूप धर्म को श्रवण कर (रायसहस्सेहिं अन्निग्रो—राजसहस्रैः अन्वित) हजार राजाओं के साथ (सुपरिच्चाइ—सुपरित्यागी) (दमं चरे—दमम् अचरत) इन्द्रियो को उपशमित किया। इसने (अणुत्तरें गइ पत्तो—अनुत्तरा गति प्राप्त) सर्वोत्तम गति मोक्ष को प्राप्त हुए।

दसण्णरज्जं मुइयं, चइत्ता णं मुणी चरे।
दसण्ण भद्दो णिक्खंतो, सक्खं सक्केण चोइओ ॥४४॥

अन्वयार्थ—(सक्ख सक्केण चोइओ—साक्षात् शक्रेण चोदित) (मोहित) अधिक सम्पत्ति के दिखाने से धर्म के प्रति प्रेरित किये गये (दसण्णभद्दो—दशार्णभद्र) दशार्णभद्र नामक राजा (मुइय दसण्णरज्ज चइत्ता—मुदित दशार्णराज्य त्यक्त्वा) दशार्णदेश के राज्य का परित्याग करके (णिक्खतो—निष्क्रान्त) दीक्षा अगीकार करते हुए (मुणी चरे—मुनि अचरत्) मुनि-अवस्थामे रहकर इस पृथिवीमण्डल पर अप्रतिबद्ध विहारी बने।

नमी नमेइ अप्पाणं, सक्खं सक्केण चोइओ।
चइऊणं गेहं वैदेही, सामण्णे पज्जुवट्ठिओ ॥४५॥

अन्वयार्थ—(नमी—नमि.) नमि नामक राजा ने (वैदेही—वैदेह) विदेह देश मे उत्पन्न (गेह-गृहम्) गृह को (चइऊण—त्यक्त्वा) त्याग करके (सामण्णे पज्जुवट्ठिओ—श्रामण्ये पर्युपस्थित) चारित्र धर्म के अनुष्ठान करने मे (सक्ख सक्केण चोइओ—साक्षात् शक्रेण चोदित—प्रेरितः) (अप्पण नमेइ—आत्मान नमयति) न्यायमार्ग मे ही अपनी आत्मा को झुकाया था।

करकंडू कलिंगेसु, पंचाले यसु दुम्महो।
नमी राया विदेहेसु, गंधारेसु य नग्गई ॥४६॥
एए नरिंद वसहा, निक्खंता जिणसासणे।
पुत्ते रज्जे ठवेऊणं, सामण्णे पज्जुवट्ठिया ॥४७॥

अन्वयार्थ—(कलिंगेसु—कलिंगेषु) कलिंग देश मे (करकडू—करकण्डू नाम का राजा) था (पचालेसु दुम्मुहो य—पाचालेषु द्विमुखश्च) (विदेहेसु-नमि तथा (गधारेसु नग्गइ-गाधारेषु नगगति) गधार देश मे नगपति। (एए नरिंदवसहा—एते नरेन्द्रवृषभा) (पुत्ते रज्जे ठवेऊण—पुत्रान् राज्ये स्थापयित्वा)

(जिणसासण—जिनशासने) (निक्खंता—निष्क्रान्ता) दीक्षा ली। (सामण्णे पज्जुवट्ठिया—श्रामण्य पर्युपस्थिता) और चारित्र की आराधना से मुक्ति प्राप्त की।

सोवीररायवसहो, चइत्ताण मुणी चरे।
उद्दायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तरं ॥४८॥

अन्वयार्थ — (सोवीररायवसहो—सौवीरराजवृषभ) सौवीर देश के सर्वोत्तम राजा (उद्दायणो—उदायन) (चइत्ताण—त्यक्त्वा) समस्त राज्य का परित्याग करके (पव्वइओ—प्रव्रजित) मुनिदीक्षा अंगीकार की और उसी (मुणी चरे=मुनि—चरत्) मुनि अवस्था में रहते हुए उन्होंने (अणुत्तरं गइं पत्ता=सर्वोत्कृष्ट गति (मुक्ति) को प्राप्त किया।

तहेव कासीराया, सेओ सच्चपरक्कमे।
कामभोगे परिच्चज्ज, पहणे कम्ममहावणं ॥४९॥

अन्वयार्थ — हे संयत मुने! (तहेव—तथैव) पूर्वोक्त इन भरत आदि राजाओं की तरह (सेओ सच्च परक्कमे—श्रेय सत्यपराक्रम) कल्याणकारक संयम में पराक्रमशाली (कासीराया—काशीराज) काशी राजा मदन नामक जो सातवें बलदेव थे। (काममोगे परिच्चज्ज—काम भोगान् (रूपस्मानेन) परित्यज्य करके (कम्म महावणं पहणे—कर्म-महावन प्राहन्) कर्मरूप घोर वन का उखाड़ (नष्ट) किया है।

तहेव विजओ राया, अणट्ठाकित्ति पव्वए।
रज्जं तु गुणसमिद्धं, पयहित्तु महाजसो ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ — (तहेव—तथैव) इसी प्रकार (अणट्ठाकित्ति—अनष्टाकीर्ति अकीर्ति-अपयश से रहित अतएव (महाजसो महायशा) महायशसम्पन्न (विजयोराया विजयराजा) विजय नामक द्वितीय बलदेव ने (गुणसमिद्धं रज्जं पयहित्तु गुणसमृद्ध राज्य प्रहाय) स्वामी अमात्य (मन्त्री) मित्र खजाना, राष्ट्र, किला एवं सेना इन ७ राज्यांगों का परित्याग करके (पव्वए प्राव्राजीत्) दीक्षा अंगीकार की।

तहेवुग्गं तवं किच्चा, अव्वक्खित्तेण चेयसा।
महब्बलो रायरिसी, आदाय सिरसा सिरिं ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ — (तहेव—तथैव) इसी तरह (महब्बलो रायरिसी—महाबल

राजर्षि) महाबल नाम के राजर्षि ने (सिरि सिरसा आदाय-श्रिय शिरसा-अदाय) संयमरूप लक्ष्मी को शिर से सम्मान पूर्वक धारण करके (अव्वक्खित्तेण चेयसा-आव्याक्षिप्तेन चेतसा) शान्त मन से (उग्ग-तव किच्चा-उग्र तप कृत्वा) कठोर तप को करके, तृतीयभव मे मुक्तिलाभ लिया है ।

कहं धीरे अहे ऊहिं, उम्मत्तोव्व महिं चरे ।
एए विसेसमादाय, सूरा दढपरक्कमा ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ— (धीरे-धीरे) प्रज्ञासपन्न होकर भी जो (उमत्तोव्व-उन्मत्त इव) मतवाले की तरह (अहेऊहिं-अहेतुभि) खोटी २ युक्तियो द्वारा तत्वो का अपलाप करता व्यर्थ बोलता रहता है । वह साधु (महीं कम चरे-मही कथ चरेत्) पृथ्वी पर कैसे बिना रोक-टोक विहार कर सकता है । (एए-एते) ये पूर्वोक्त भरत आदि (विसेसमादाय-विशेषम्-आदाय) मिथ्या दर्शन से जैन दर्शन की विशेषता जानकर ही तो (सूरा-शूरा) संयम के ग्रहण करने मे शूर वीर होते हुए उसके परि-पालन करने मे (दढ परक्कमा-दृढपराक्रम) दृढ पराक्रम शील बने हैं ।

अच्चन्तनियाणखमा, सच्चामे भासिया वई ।
अतरिंसु तरंतेगे तरिस्संति अणागया ॥५३॥

अन्वयार्थ—(अच्चन्तनियाणखमा-अत्यन्ते निदान क्षमाः) कर्ममल—को दूर करने मे अत्यन्त समर्थ-समीचीन – युक्त हेतुओ से युक्त "जिन शासन ही आश्रयणीय है" ऐसी यह (सच्चावई—सत्यावाग्) सत्यवाणी ही (मे भासिया मया भाषिता) मैंने कही-है। सो इसको स्वीकार करके बहुत से प्राणी (अतरिंसु—अतरन्)पहले इस संसार सागर मे पार हुए हैं । (एगे-एके) कितनेक अभी भी (तरंति-तरन्ति) पार हो रहे हैं और (अणागया-नआगता) कितने भाग्यशील महा पुरुष (तरिस्संति-तरिष्यन्ति) भविष्य में पार होगे ॥५३॥

कहं धीरे अहेऊहिं, अत्ताणं परियावसे ।
सव्वसंगविणिम्मुक्को, सिद्धे भवई नीरए, त्ति बेमि ॥५४॥

अन्वयार्थ (धीरे-धीर) जो बुद्धिमान हैं वह (अहेऊहिं-अहेतुभि) मिथ्यात्व के कारणभूत क्रियावादी आदि द्वारा कल्पित कुहेतुओ द्वारा (अत्ताण कह परियावसे-आत्मानं कथम पर्यावासयेत्) अपने आपको कैसे भावित कर सकता है अर्थात् नही । इसीलिए ऐसी आत्मा (सव्वसगविणिम्मुक्को-सर्व सग

विनिमुक्त) सवसग अथात् द्रव्य की अपेक्षा धनादि परिग्रह से तथा भाव की अपेक्षा मिथ्यात्वरूप इन क्रियावाद आदि से रहित होता हुआ (नीरए निरजा) कर्मरज से रहित हो जाता है और (सिद्ध भवई सिद्धो भवति) वह सिद्ध हो जाता है ॥५४॥

१८वां अध्ययन समाप्त हुआ—

उन्नीसवां अध्याय

मिगा पुत्तीयं एगणवीसइमं अज्झयणं
मृगापुत्रीलमेकोन विंशतिमम ध्ययनम्

गत अठाहरवें अध्ययन मे भोग और ऋद्धि के त्याग के विषय मे कहा है। यद्यपि भोग और ऋद्धि के त्याग से श्रमणभाव की उत्पत्ति तो हो जाती है परन्तु साधुवृत्ति मे जो शरीर का प्रतिक्रमण नही करता वह और भी प्रशसनीय होता है। अत १९वें अध्ययन मे शरीर का प्रतिक्रम न करने वाले महानुभाव मुनि की चर्चा का वर्णन किया जाता है। जिस की प्रथम गाथा इस प्रकार है यथा—

सुग्गीवे नयरे रम्मे, काणणुज्जाणसोहिए
राया वलभद्दि त्ति, मिया तस्सग्गमाहिसी ॥१॥

अन्वयार्थः—(सुग्गीवे-सुग्नीव नामा) (नयरे-नगरे) सुग्रीव नाम के नगर मे। (रम्मे-रमणीय) जो (काणण-कानन)वृद्ध वृक्षो से और (उज्जाण-उद्यान) क्रीडा के वगीचो से (सोहिए-सुशोभित) उसमे (राया-राजा) (वलभद्द-वलभद्र) (त्ति-इस नाम वाला) (मिया-मृगा नाम वाली) (तस्स-तस्य) उसकी (अग्गमहिसी-अग्रमहिषी) पटरानी थी।

तेंसि पुत्ते वलसिरी, मियापुत्ते त्ति विस्सुए ।
अम्मपिऊण दइए, जुवराया दमीसरे ॥२॥

अन्वयार्थ—(तेंसि-तयो) उन दोनो के (पुत्ते—पुत्र) (वलसिरी-वलश्री) नाम का (मियापुत्ते-मृगापुत्र) त्ति-इस प्रकार (विस्सुए-विश्रुत) प्रसिद्ध हुआ (अम्मापि ऊण-मातापित्रो) माता-पिता का (दइए-दयित) प्यारा था (जुवराया-युवराज) और (दमीसरे-दमीश्वर)इन्द्रियो को अपने वश मे रखने वालो मे श्रेष्ठ था।

नन्दणे सो उ पासाए, कीलए सह इत्थिहिं ।
देवो दोगुन्दगो चेव, निच्चं मुइयमाणसो ॥३॥

अन्वयार्थ —(नन्दणे-नन्दन.)नामके (पासाए-प्रासादे) राज महल मे (सो-स) वह मृगापुत्र (उ-वितर्के) वितर्क अर्थ मे है। (इत्थिहिं-स्त्रीभि) स्त्रियो

के (मापे-मह) (दोगुदगो-दोगुदक) दोगुदक नाम क देव (चेव इव) तरह (च पादपूर्ति में) (निच्च नित्य) सदा (मुईय-मुदित) प्रसन्न (मागसो मन) होकर की (नए क्रीडति) क्रीडा करता है।

मणिरयणकुट्टिमतले, पमायालोयणे ठिओ ।
आलोएइ नागरम्य, चउक्कत्तियचच्चरे ॥४॥

अन्वयाथ—(मणिरयण मणिरत्न) (कुट्टिमतले-कुट्टिमतल) स युक्त (पामाय प्रासाद) के (आलोयण गवाक्ष) खिडकी म (ठिओ स्थित) स्थित होकर। (नागरम्य-नगरस्य) नगर क (चउक्क चतुष्पथ) चौराहा का (तिय त्रिपथ) तीराह को और (चच्चर चत्वर) बहुपथा को। (आलोएइ अवलोकयति) देखता है।

अह तत्य अइच्छन्त, पासई समण सज्जय ।
तवनियमसजमघर, सीलड्ढ गुणआगर ॥५॥

अन्वयाथ —(अह अथ) इसक बाद (तत्य-तत्र) वहाँ (अइच्छन्त चलते हुए समणं-श्रमणम्) (सजय-सयत) सयत को। जो (तवा-तप) नियम नियम् (सजम-सयम) को (धर धारकम) धारण करने वाला। (सीलड्ढ-शीलयुक्तम) गुण आगर गुणाकरम्। गुणा की खान को। (पासइ-पश्यति) देखता है।

त पेहइ मियापुत्ते, दिट्ठीए अणिमिसाइ उ।
कहि मन्नेरिस रुव दिट्ठपुव्व मए पुरा ॥६॥

अन्वयाथ —(त-उस मुनि को) (मियापुत्त-मृगा-पुत्र) (अणिमिसाइ दिट्ठीए-अनिमेषदृष्टिया) पहइ प्रेक्षते देखता है उ-एवाथक, निश्चय ही (कहि कुत्र) (मन्न-मन्ये) मैं जानता हू। (एरिस-एवप्रकारकम) (रूव रूप) आकार (दिट्ठपुव्व-पूर्वदृष्टम्) पहले देखा गया। (मए मया) मैंने (पुरा-पूर्व जन्मनि) पहले भव म देखा है क्या ?

साहुस्स दरिसणे तस्स, अज्झवसाणम्मि सोहणे।
मोह गयस्स सन्तस्स, जाइसरण समुप्पन्न ॥७॥

अन्वयाथ —(साहुस्स-साधो) साधु क (दरिसणे-दर्शने) दर्शन होने पर (सोहणे शोभन) (अज्झवसाणम्मि-अध्यवसाय) शुभ विचार होने पर (मोह गयस्स मोहगतस्य) मैंने कहीं पर इसको देखा है इस प्रकार का चिन्तन में निमग्नता का (सन्तस्स प्राप्त हो जाने पर (जाइ सरण जाति स्मरण) ज्ञान उत्पन्न हो गया।

देवलोगचुओ संतो, माणुसं भवमागओ ।
सन्निकाणस समुप्पन्ने, जाइसरइपुराणय ॥८॥

अन्वयार्थ —(देवलोग-देवलोक) से (चुओ-च्युत:)(संतो-होकर) (माणुस-मनुष्य के) (भव-जन्म) मे आ गया है। (सन्निणाण-संज्ञिज्ञान) के (समुप्पन्ने-समुत्पन्ने) उत्पन्न हो जाने पर पुराणिय-पूर्व जन्म (जाइ जाति को) (सरइ-स्मरति) याद करता है।

जाई सरणे समुप्पन्ने, मियापुत्ते महिड्ढिए ।
सरइ पोराणियं जाइं, सामण्णं च पुराकयं ॥९॥

अन्वयार्थ (जाई सरणे-जातिस्मरणे) जाति स्मरण के (समुप्पन्ने-समुत्पन्ने) उत्पन्न हो जाने पर (मियापुत्तो-मृगापुत्र) (महिड्ढिए-महर्द्धिक) महती समृद्धि वाला है। (पोराणिय-पौराणिकीम) पूर्व (जाइ-जाति) को (च-तथा और पुराकय-पुराकृतम पूर्वधारण किये हुए (सामण्ण-श्रमणभावम्) श्रमणभावको, (सरइ-स्मरति) याद करता है।

विसएसु अरज्जंतो, रज्जंतो संजमम्मि य ।
अम्मापियरमुवागम्म, इमं वयणमब्बवी ॥ १० ॥

अन्वयार्थ—विसएसु-विषयेषु, विषयों-इन्द्रियसुखों मे (अरज्जतो-अरज्यन्) राग न करता हुआ (य-च) और रज्जतो-रज्जन्, (संजममि-संयमे) संयम में। (अम्मापियर-मातापितरौ) (उवागम्म-उपागम्य) समीप मे आकर (इम-इदम्) (वयण-वचनम्) (अब्बवी-अब्रवीत्) कहने लगा।

सुयाणि मे पंचमहव्वयाणि,
नरएसु दुक्ख च तिरिक्खजोणिसु ।
निव्विण्ण कामो मि महण्णवाओ,
अणुजाणह पव्वइस्सामि अम्मो ! ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ- (सुयाणि-श्रुतानि) सुने हैं (मे-मया) मैंने (पंचमहव्वयाणि-पंचमहाव्रतानि) ५ महाव्रतो को। (नरएसु-नरकेषु) नरको के (दुक्ख-दुःखम्) च-और (तिरिक्खजोणिसु-तिर्यग्योनिषु) तिर्यग्योनियों के दुःख। अत (महण्णवाओ-महार्णवात्) संसार रूप समुद्र से (निव्विण्कामो-निर्विण्णकात) (मि-मैं) निवृत होने की कामना वाला हो गया हूं। अत

अन्वयार्थ —(माणुसत्ते—मनुष्यत्वे) (असारम्मि—असारे) असार—निरर्थक मनुष्य जन्म मे (वाही—व्याधि) (रोगाण—रोगाणाम्) (आलए—आलये) स्थान मे (जरा—बुढापा) (मरण—मृत्यु) से (घत्थम्मि—ग्रस्ते) ग्रसे हुए (खणपि—क्षणमिपि) क्षणमात्र भी (अहं—अहम्) मैं (रमम्—रति) आनन्द नही पाता है ।

जम्मदुक्खं जरादुक्ख, रोगा य मरणाणि य ।
अहो दुक्खो हु ससारो, जत्य कीसति जतुणो ॥१६॥

अन्वयार्थ —(जमदुक्ख—जन्मदुखम) जन्म का दुख (जरादुख—जरादुखम्) बुढापे का दुख (रोगा—रोगा) (य = च) और रोग का दुख (मरणाणि—तथा मृत्यु का दुख (व—च) पुन (अहो—आश्चर्य है (हु—निश्चय ही (दुखो—दुखरूप) ससारो—ससार) है जत्थ—यत्र) जहाँ पर जतुणो—जीवा [कीसति—क्लेश्यन्ति] दुख पाते हैं ।

खेत्त वत्यु हिरण्णं च, पुत्तदार च बाधवाः ।
चइत्ताण इम देह, गन्तव्वमवसस्स मे ॥१७॥

अन्वयार्थ.—[खेत्त—क्षेत्र] [वत्यु—वस्तु] य = घर अन्नौर पुत्तदार च = पुत्रदारांश्च] पुत्र-स्त्री [बान्धवा—बान्धवान्] भाइयो तथा [इमदेह-शरीरम्] इस शरीर को [चइत्ता—त्यक्त्वा] छोड कर परलोक मे [अवसस्स—अवश्य ही] [गन्तव्व—गन्तव्यम्] जाना पडेगा ।

जहा किम्पागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताणं भोगा, परिणामो न सुन्दरो ॥१८॥

अन्वयार्थ —[जहा—यथा] जैसे [कियागफलाण—किम्पागफलानाम्] किम्पागनामवृक्ष के फलो का] परिणामो—परिणाम] फल [सुन्दरो न] सुन्दर नही [एव—इत्थम्] इस प्रकार [भुत्ताण—भुक्तानाम्] भोगेहुये [भोगाण—भोगानाम्] भोगो का परिणाम भी सुन्दर नही है ।

अद्धाणं जो महंतं तु, अपाहेज्जो पवज्जई ।
गच्छन्त सो दुही होइ, छुहातण्हाइ पीडिओ ॥१९॥

अन्वयार्थ —[जो—य] जो पुरुष [अपाहज्जो—अपाथेय] पाथेय रहित हुआ [महत—महान्तम] [अद्धाण अध्वानम] विशालमार्ग पर [पवज्जई प्रव्रजति] चलता है। तुन्तो वह [गच्छन्त-गच्छन] चलता हुआ [छुआतण्हाइ क्षुधातृष्णाभि] म [पीडिओ पीडित—मन] पीडित होता हुआ [दुही-दुखी] होइ भवति होता है।

एव धम्म अकाऊण जो गो गच्छइ पर भव।
गच्छ तो सो दुही होइ, वाहिरोगेहि पीडिओ ॥२०॥

अन्वयार्थ — एव इस प्रकार [जो-य]पुरुष [धम्म—धमम] [अकाऊण—अकृत्वा] न करके [परभव—परलोकम गच्छइ—गच्छति जाता है। सो म (वाहिरोगेहि -व्याधि रोगो) व्याधि रोगो से (पीडिओ-पीडित) पीडित होने पर अत्यत (दुही दु खी) होइ भवति होता है।

अद्धान महत तु, सपाहेज्जो पवज्जइ।
गच्छ तो सो सुही होइ,छुहातण्हाविवज्जिओ ।२१॥

अन्वयार्थ —जो पुरुष तु-तो महत—महान्तम अद्धाण—अध्वानम, मार्ग म सपाहेज्जो—सपाथेय पाथेययुक्त होकर पवज्जइ—प्रव्रजति गमन करता है गच्छ तो—गच्छन जाता हुआ सो—स वह छुहातण्हा वि—वज्जिओ क्षुधातृष्णाविवर्जित भूख प्यास से रहित होता हुआ सुही—सुखी होइ भवति होता है।

एव धम्म पियाऊण, जो गच्छइ पर भव।
गच्छ तो सो सुही होइ, अयकम्मे अवेयणे ॥२२॥

अन्वयार्थ — एव—इसी प्रकार पि—अपि भी धम्म—धमम काऊण—कृत्वा यो—जो पुरुष परभव—परलोकम गच्छइ—गच्छति जाता है सो—स वह गच्छ तो—गच्छन जाताहुआ अयकम्म—अल्पकर्मा कर्मोके अल्प होने से अवेयणे—अवेदन [illegible] रहित होता हुआ सुही—सुखी होइ—भवति होता है।

जहा गेहे पलित्तम्मि, तस्स गेहस्स जो पहू ।
सारभंडाणि नीणेइ, असार अवउज्झइ ॥२३॥
एवं लोए पलित्तम्मि, जराए मरणेण य ।
अप्पाण तारइस्सामि, तुब्भेहि अणुमन्निओ ॥२४॥

अन्वयार्थ — जहा यथा जैसे गेहे गृहे पलित्तम्मि प्रदीप्ते घर मे आग लगजाने पर तस्स तस्य गेहस्स गृहस्य उस घर का जो पहू योप्रभु स्वामी है वह सार भंडाणि सार भाण्डानि सार रत्नादि पदार्थो को नीणेइ निष्कासयति निकाल लेता है और असार जीर्णवस्त्रादि को अवउज्झइ अपोज्झति छोड देता है ।

एव-इसी प्रकार, लोए लोके, लोकके, जराएमरणेण जन्मजरामृत्यु रूप, आग से पलित्तम्मि प्रदीप्त, [दग्ध] होनेपर इनसे, अप्पाण आत्मानम् ,आत्मा को, तारइस्सामि, तारयिष्यामि तारूँगा, अस तुब्भेहि युष्याभ्याम्, आप दोनो से अणुमन्निओ अनुमत अनुज्ञा मांगता हूँ ।

त बितम्मा पियरो, सामण्ण पुत्त ! दुच्चरं ।
गुणाण तु सहस्साइं, धारेयव्वाइ भिक्खुणा ॥२५॥

अन्वयार्थ—(त-उस) मृगापुत्रको (अम्मापियरो-अम्बापितरौ) (बित-ब्रूत) कहने लगे हे (पुत्त पुत्र !) (सामण्ण-श्रामण्यम्) साधुवृत्ति (दुच्चर-दुष्करम्) अत्यन्त कठिन है क्योंकि (गुणाण तु सहस्साइ—गुणाना तु सहस्राणि) हजारो गुणो को तो निश्चय से (भिक्खुणा-भिक्षुणा) भिक्षुओ को, धारे यव्वाइ-धारयितव्यानि) धारण करनेपडते हे ।

समया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवायविरई, जावज्जीवाएदुक्करं ॥२६॥

अन्वयार्थ —(जगे-जगति) ससार के (सव्वभूएसु-सर्वभूतेषु) सभीप्राणियो पर अथवा (सत्तुमित्तेसु-शत्रुमित्रेषु) शत्रु—मित्रो पर (समया—समताभाव) रखना (जावज्जीवाए-यावज्जीव) जीवनपर्यन्त (पाणाइवाइं—प्राणतिपात) (हिंसा) से निवृत्ति होना (दुक्कर-दुष्करम्) बहुत कठिन है ।

निच्चकालप्पमत्तेण, मुसावायविवज्जण ।
भासियव्व हियं सच्च, निच्चा उत्तेण दुक्कर ॥२७॥

अन्वयार्थ —(निच्चकाल नित्यकाल) सदैव (अप्पमत्तेण अप्रमाद से (मुसावाय—भाषितव्यम) (हिय हित सच्च—सत्य) हितकारी सत्यरूप वचन बोलना। (निच्च नित्यम) सदा (आउत्तेण-आयुत्तेन) उपयोग के साथ। (दुक्कर—दुष्करम) अति कठिन है।

दन्तसोहणमाइस्स, अदत्तस्स विवज्जणं ।
अणवज्जेसणिज्जस्स, गिण्हणा अवि दुक्कर ॥२८॥

अन्वयार्थ —(दन्तसोहणमाइस्स—दन्तशोधनादिकम) दांत शोधन के लिए तृण (आदि) आदि पदार्थ का भी (अदत्तस्स अदत्तस्य) बिना दिये (विवज्जण विवर्जनम्) छोड़ना (अणवज्ज—अनवद्य) निरवद्य (एसणिज्जस्स—एषणीयस्य) निर्दोष पदार्थों का (गिण्हणा अवि—ग्रहणमपि) लेना भी दुष्कर-कठिन है।

विरई अबम्भचेरस्स, कामभोगरसन्नुणा ।
उग्गं महव्वयं बम्भं, धारेयव्व सुदुक्कर ॥२९॥

अन्वयार्थ —(अबम्भचेरस्स—अब्रह्मचर्यस्य) मैथुन की (विरइ—विरति) नित्त त्याग (कामभोगरसन्नुणा—कामभोगरसज्ञेन) काम भोगों को जानने वाले का (उग्ग-उग्रम) प्रधान (महव्वयं-महाव्रतम) महाव्रत (बम्भ-ब्रह्मचर्यम) ब्रह्मचर्य (धारेयव्व—धारितव्यम) धारण करना (सुदुक्कर—सुदुष्करम) अति कठिन है। अर्थात—काम भोगों के रस को कम या अधिक अनुभव किये हुये पुरुष को सर्वथा उनका त्याग करना बहुत कठिन है॥

धणधन्नपेसवग्गेसु परिग्गह विवज्जणं ।
सव्वारम्भपरिच्चागो, निम्ममत्त सुदुक्कर ॥३०॥

अन्वयार्थ —(धणधन्नपेसवग्गेसु—धनधान्यप्रेष्यवर्गेषु) धन, धान्य दास वर्ग में (निम्ममत्त—निर्ममत्वम्) मोह का त्याग तथा (परिग्गह—परिग्रहम) 'मूर्छा को परिग्रह कहा गया है' (विवज्जण—विवर्जनम) त्याग और (सव्वारम्भ—सर्वारम्भ धनोपार्जन व्यापार) सब तरह से धन के कमाने की क्रिया

का [परिच्चागो—परित्याग) बिलकुल छोडना (सुदुक्कर—सुदुष्करम्) बहुत कठिन है।

चउव्विहे वि आहारे, राई भोयण वज्जणा ।
सण्णिही संचओ चेव, वज्जेयव्वो सुदुक्कर ॥३१॥

अन्वयार्थ —(चउव्विहे वि आहारे—चतुर्विधेऽपि-आहारे) चारों प्रकार भी आहार (राई भोयणे—रात्रि भोजन्) (वज्जणा—वर्जनीय) है सन्निहीसंचओ सन्निधिसंचय)रात्रि मे घृत आदि पदार्थो का रखना(चेव-एव) निश्चय ही(वज्जेयव्वो)—वर्जितव्य) वर्जन करना (सुदुक्कर—सुदुष्करम्)बहुत कठिन है। रात्रि-भोजन मे काल, क्षेत्र के बाहर आहार का त्याग भी तथा उत्तर गुणो मे अभि-ग्रहादि को भी जानना चाहिए'।

छुहातण्हा य सीउण्हं, दसमसगवेयणा ।
अक्कोसा दुक्खसिज्जाय, तणकासा जल्लमेव य ॥३२॥
तालणा ताज्जणा चेव, वह वन्ध परीसहा ।
दुक्ख भिक्खायरिया, जायणा य अलाभया ॥३३॥

अन्वयार्थ—छुहा—क्षुधा, तण्ह—तृष्णाच (सीउण्ह—शीतोष्णम्)(दस, मसग, वेयणा—दश मशक की वेदना) (अक्कोसा—आक्रोशा) गाली आदि और और (दुक्खसिज्जा—दुःखरूप शय्या) कठोर शय्या(तृणफासा य जल्ल—तृणस्पर्श तथा शरीर का मल) एव—ही, (३२ वेगो मे भूख सहन करना आसान नही है अत भूख का नम्बर पहले है) (समणत्तण—श्रामण्यम्) संयम पालन(करेउ—कर्तुम् करना (दुक्ख—दुक्खम्)अति कठिन है।

(तालणा तज्जणा चेव—ताडना, तर्जना)मार डाट फटकार पुन (वह वन्धपरीसहा—वध, वन्धौ परीषहौ) (जदुक्ख—दुःखरूपम्) (भिक्खायरिया-भिक्षाचर्या) घर-घर से भिक्षा (जायणा—मागना) अलाभया—अलाभता) और मिलने पर तप समझकर परीषहो का सहन करना बहुत कठिन है।

कावोया जा इमा वित्ती, केस लोओ अ दारुणो ।
दुक्ख वभव्वयं घोर, धारेउ य महप्पणो ॥३४॥

अन्वयार्थ— कावोया—कपोती) कबूतर पक्षी की शकायुक्त वृत्ति के समान (जा इमा—या इमम्) जो यह (वित्ती—वृत्त) साधुका आचरण है और (केसलोओ—केशलुचन) भी (दारुणो—दारुण) भयकर है, (दुक्ख—

दुष्कन्प) (धार—धारयितुम्) (बम्भव्य—ब्रह्मचर्यव्रतम) चार ब्रह्मचर्यपव्रत (धारउ—धारयितुम धनुम) धारण करना भी (महप्पणा—महात्मना) महात्मा पुरुष को बड़ा कठिन है। तो अल्पसत्व रखने वाले जीवों के वास्ते तो कहना ही क्या है।

सुहोइओ तुम पुत्ता, सुकुमालो सुमज्जिओ।
न हुसी पभू तुम पुत्ता सामण्णमणुपालिया ॥३५॥

अन्वयार्थ — (पुत्ता—हे पुत्र!) (तुम—त्वम) तू (सुहोइओ—सुखोचित) सुखोचित-ससार के कष्टों का अनुभव नहीं किया है (सुकुमालो—सुकुमार) सुकुमार है अर्थात तेरा शरीर अति कोमल है। (सुमज्जिओ—सुमज्जित) स्नान विलेपन वस्त्राभूषणादि से सुमज्जित रहता है। अत हे पुत्र तू (सामण्ण—श्रमणत्वम) सयम के (अनुपालिया—अनुपालयितुम) पालन करने के लिए (प्रभू—प्रभु-समर्थ) नहीं-सा-रहा है ॥

जावज्जीवमविस्सामो गुणाण तु महब्भरो।
गुरुओ लोहभारव्व, जो पुत्ता! होइ दुव्वहो ॥३६॥

अन्वयार्थ — (जावज्जीवम—जावज्जीवनम्) जीवन भर (अविस्सामो अविश्राम) इसवृत्ति में विश्राम रहित होना (गुणाण—गुणानाम) गुणों का तो (महब्भरो—महाभार) बड़ा भार (लोहभारव्व—लोहभार इव) लोहे का भारी की तरह है उसका (दुव्वहो—दुर्वह) उठाना (हे पुत्ता—हे पुत्र!) दुष्कर (होइ—भवति) होता है अर्थात तेरे ऐसे बालक के लिये अति कठिन है।

आगासे गंगसोउ व्व, पडिसोउ व्व दुत्तरो।
बाहाहिं सागरो चेव तरियव्वो गुणोदही ॥३७॥

अन्वयार्थ—जैसे आगास—आकाश आकाश में गंगसोउ-गंगास्रोत व्व—इव गंगप्रवाह और पडिसोउ—प्रतिस्रोत व्व—इव उल्टे नदियों की धारा की तरह तथा बाहाहिं—बाहुभ्याम् दोनों भुजाओं से सागरो—सागर सागर को तरियव्वो—तरितव्य तरना कठिन है वैसे ही गुणोदही—गुणोदधि गुणों का समुद्र भी तरना दुत्तरो—दुस्तर अति कठिन है।

सागेरसाराला चेव, वेमणा उ अणतमो।
मएमोटाओ मोमाओ असइ दुक्खमर्पाण य ॥४६॥

अन्वयार्थः (मए मया) मैंने (सारीर शारीरिक) य-और, (माणसा मानस्य) मानसिक (एव निश्चय से) भीमाओ-भीमा-भयङ्कर (वेयणा वेदना) (पीड़ा विकर्षे) (अणतसो) अनन्तवार (सोढाओ सोढा) सहन की, तथा (जइम असकृत्) अनेकवार (दुक्ख भयाणि य दुःखभयानि च) दुःख और भयो को अनुभव-सहन किया है।

जरामरणकंतारे, चाउरते भयागरे।
मए सोढाणि भीमाइ, जम्माइं मरणाणि य ॥४७॥

अन्वयार्थः (जरा मरण) जरा-मरण रूप (कंतारे कान्तारे) जंगल मे (चाउरते चातुरन्ते) चारगति रूप (भयागरे भयाकरे) भयो को खान मे (मए मया) मैंने (भीमाइ भीमानि] भयङ्कर [जम्माइ य मरणाणि] जन्म और मरणरूप दुःखो को [सोढाणि सोढानि] सहन किया है।

जहा इहं अगणी उण्हो, इत्तोऽणंत गुणो तहिं।
नरएसु वेयणा उण्हा, अस्साया वेइया मए ॥४८॥

अन्वयार्थः [जहा यथा] जैसे [इह इह] इस लोक मे [अगणी अग्नि] आग [उण्हो उष्ण] गरम है [इत्तो इत] इस आग से [अणंतगुणो अनन्तगुण] अनन्तगुना [उण्हा उष्णा] उष्ण [वेयणा वेदना] पीड़ा मए मया] मैंने [तहिं तत्र] वहाँ [नरएसु नरकेषु] नरको मे [अस्साया असाता] असाता रूप खूब [वेइया वेदिता] अनुभव की है।

जहा इहं इमं लोयं सीयं, इत्तोऽणन्त गुणो तहिं।
नरएसु वेयणा सीया, अस्साया वेइया मए ॥४९॥

अन्वयार्थः [जहा यथा] जैसे [इह इह] इसलोक मे [सीय शीत] शीत है [इत्तो इत] इससे [अणत गुणो अनन्तगुणम्] अनन्तगुना शीत [तहिं तत्र] वहाँ पर है उन [नरएसु नरकेषु] नरको मे है इस प्रकार की [सीया शीता] ठंडी [वेयणा वेदना] [अस्साया असाता] असाता रूप मए मया] मैंने अनन्तवार [वेइया वेदिता] भोगी है।

वालुयाकवले चेव, निरस्साए उ सजमे।
अहिधारागमणं चेव, दुक्कर चरिउं तवो ॥३८॥

अन्वयार्थ — (वालुयाकवले—वालुकाकवल) बालू के ग्रास की, (चेव—एव) तरह संजम—संयम, निरस्साए—निःस्वाद संयम स्वाद रहित है जिस प्रकार [असिधारा—असिधारा] तलवार की धार पर [गमन—चलना] [दुक्कर—दुष्कर] है उसी प्रकार तप का [चरिउं—चरितुम] आचरण करना अति कठिन है।

अहीवेगन्तदिट्ठिए, चरित्ते पुत्त दुच्चरे
जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्कर ॥३९॥

अन्वयार्थ — जैसे [अही—अहि] [एगन्तदिट्ठीए—एकान्तदृष्ट्या] एक नजर से चलता है और [चेव—यथा] जैसे लोहमयाजवा—लोहमया यवा], लोहे के बने जव [चावेयव्वा—चर्वयितव्या] चबाने में [सुदुक्कर—सुदुष्करम] अति कठिन हैं उसी तरह [चरित्ते—चारित्रम] चारित्र [संयम] पर चलना और उसका पालन करना [दुच्चरं—दुश्चरम] अति कठिन है।

जहा अग्गि सिहादित्ता, पाउं होइ सुदुक्कर।
तहा दुक्कर करेउं जे, तारुण्णे समणत्तणं ॥४०॥

अन्वयार्थ — [जहा—यथा] जैसे [अग्गिसिहादित्ता—अग्निशिखा दीप्ता] अग्नि की प्रचंड ज्वाला [पाउं—पातुम्] पीना [सुदुक्करा—सुदुष्करा] अति कठिन है [तहा—तथा] उसी तरह [जे—जो] [तारुण्णे—तारुण्य] जवानी [युवा] अवस्था में [समणत्तणं—श्रमणत्वम] संयम का पालन [करेउं—कर्तुम] करना अत्यन्त कठिन है। अर्थात् संयम का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का काम नहीं है। शक्तिशाली का काम है।

जहा दुक्खं भरेउं जे, होइ वायस्स कोत्थलो।
तहा दुक्खं करेउं जे, कीवेणं समणत्तणं ॥४१॥

अन्वयार्थ — [जहा—यथा] जैसे [वायस्स वायव्य] वायु से [कोत्थलो कोस्थल] बरतन का भरना (भरेउं भर्तुम्) भरना (दुक्खं दुष्करम्) कठिन होता है [तहा तथा) उसी प्रकार (कीवेणं—क्लीवेन) नपुंसक (सत्वहीन) पुरुषों का।

जहा तुलाए तोलेउ, दुक्करो मन्दरो गिरी ।
तहा निहुयं नीसंकं दुक्करं समणत्तणं ॥४२॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (तुलाए—तुलया) तराजू से (मंदर-गिरी—मंदराचल) मन्दर(मेरु) नाम के पर्वत को (तोलेउ—तोलयितुम्) तोलना (दुक्करो—दुष्कर) कठिन है उसी प्रकार (निहुय—निभृतम्) स्थिर और (नीसंक—निःशंकम्) शंका रहित (समणत्तण—श्रामण्यम्) साधु-वृत्ति का पालन करना (दुक्कर—दुष्करम्) अति कठिन है ॥

जहा भुयाहि तरिउ, दुक्करं रयणायरो ।
तहा अणुवसन्तेण, दुक्करं दमसागरो ॥४३॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (भुयाहि—भुजाभ्याम्) भुजाओं से (रयणागरो—रत्नाकर) समुद्र को (तरिउ—तरितुम्) तैरना (दुक्करो—दुष्कर) कठिन है (तहा—तथा) इसी तरह (अणुवसन्तेण—अनुपशान्तेन) उत्कट कषाय वाले आत्मा से (दमसायरो—दमसागर) इन्द्रिय दमन रूप-समुद्र अथवा उपशम रूप समुद्र का तरना (दुक्कर—दुष्करम्) दुष्कर भाव—जिस आत्मा का कषाय उपशम भाव में रहे वही संयमवृत्ति पालन कर सकता है ।

भुंज माणुस्सए भोए, पंचलक्खणए तुमं ।
भुत्त भोगी तओ जाया ! पच्छा धम्मं चरिस्ससि ॥४४॥

अन्वयार्थ—(जाया—जात !) हे पुत्र ! (तुमं—तू अभी) (पंचलक्खणए—पंचलक्षणकान्) पांच लक्षणों वाले (माणुस्सए—मानुष्यकान्) मनुष्य-सम्बन्धी (भोए—भोगान्) भोगों के (भुंज—भुंक्ष्व) भोगकर (भुत्त-भोगी—भुक्तभोगी) बनकर (तओ—ततः) (पच्छा—पीछे) उसके बाद (धम्मं—धर्मम्) धर्म को (चरिस्ससि—चरिष्यसि) ग्रहण करना ।

सो बितऽम्मापियरो, एवमेयं जहा फुडं ।
इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचिवि दुक्करं ॥४५॥

(सो—स) वह मृगा पुत्र (अम्मापियरो—अम्बापितरौ) मात पिताने (बित—ब्रूते) कहने लगा हे माता ! और पिता ! आपने (एवं, एयं—एवं, एतद्) इसी प्रकार यह प्रव्रज्या आदि का पालन करना (जहा—यथा) जैसे (फुडं—स्फुट) सत्य है किंतु (इह—इह) (लोए—लोके) इस संसार में (निप्पि-वासस्स—निष्पिपासस्य) तृष्णा से रहित पुरुष के लिए (किंचिवि—किंचिदपि) कुछ भी दुक्करं—कठिन नात्थि—नहीं है ।

महाजतेसु उच्छूवा-आरसंतो सुभेरवं ।
पीलिओमि सकम्मेहि, पावकम्मो अणन्तसो ॥५४॥

अन्वयार्थ —[महाजतेसु-महायन्त्रेषु] कोल्हू आदि मे [उच्छूवा-इक्षुरिव] गन्नेपेरे जाने की तरह [सुभेरवं-सुभैरवम] अतिभयानक शब्द करता हुए [सकम्मेहि-स्वकर्मभि.] अपने किये कर्मों के प्रभाव से [पावकम्मो-पापकर्मा] पापकर्मवाला [अणन्तसो-अनन्तश] अनन्तबार मैं [पीलिओमि-पीडितोऽस्मि] पेला गया हूँ ।

कूवतो कोलसुणएहि, सामेहि सवलेहि य ।
पाडिओ फालिओ छिन्नो, विप्फुरन्तो अणेगसो ॥५५॥

अन्वयार्थ —[कूवतो-क्रन्दन्] आक्रन्दन करता हुआ [कोलसुणएहि-कोलशुनकै] शूकर और काले, कुत्ते सफेद कुत्ता द्वारा जो [सामेहि-श्यामै.] श्याम (य-च) और (सवलेहि-शबलै) सबल है उनसे (विप्फुरन्तो-विस्फुरन्) इधर-उधर भागता हुआ मैं (अणेगसो-अनेकश) अनेकबार धरती पर (पाडिओ-पातित) गिराया गया [फालिओ-स्फटित,] फाडागया [छिन्नो-छिन्न] वृक्ष की तरह काटा गया ।

असीहि अयसिवण्णेहि, भल्लीहि पट्टिसेहि य ।
छिन्नो भिन्नो विभिन्नोय, उववन्नो पावकम्मुणा ॥५६॥

अन्वयार्थ—[अयसिवण्णेहि-अतसीकुसुमवर्णै] अलसी के फूल के समान रगवाले [असीहि-असिभि] खड्गो [भल्लीभि] भालाओ य-और [पट्टिसेहि-शस्त्रो] से [पावकम्मुणा-पापकर्म के प्रभाव से नरक मे [उववन्नो-उत्पन्न] उत्पन्न होने पर मुझे [छिन्नो-भिन्नो, विभिन्नो] छेदन, विदीर्ण और सूक्ष्म टुकडे किया गया ।

अवसो लोहरसे जुत्तो, जलते सामिलाजुए ।
चोइओ तुत्तजुत्तेहि, रोज्झो, वा जह पाडिओ ॥५७॥

अन्वयार्थ—[अवसो-अवश] परवश हुआ मुझे [लोहरहे-लोहरथे] लोहे के रथ मे [जुत्तो-युक्त] जोटा गया [जलते-ज्वलति] अधिक जलते हुए [समिला-समिला] लोहे के कीली वाले जुए मे [जुए-युते] जोड दिया गया [चोइओ-नोदित] प्रेरित किया गया [तुत्त-तोत्र] तोत्रो से [जुत्तेहि-योक्त्रै] वर्म-

मय जुग मर गल म बांधकर जहाँ वमे [रोज्झो-वाक्य] अन्य गाय को [पाडियो पूर्तित] मार भूमि म गिराया जाता है वम मुझे गिरा दिया गया अर्थात् तीन गाय की तरह दीन असहाय मैं भी था।

हुआसणे जलनम्मि, चिआसु महिसो विव ।
दड्ढो, पक्को अ अवसो, पावकम्मेहिं पाविओ ॥५८॥

अन्वयार्थ — (जलनम्मि — ज्वलति) प्रज्वलित (हुआसणे — हुताशन) जलती हुई आग म अथवा (चिआसु चितासु) चिताओं म (महिसो-महिष) भैंसा की (विव — इव) तरह (दड्ढो पक्को अ — दग्ध, पक्व) पकाया गया (पाव कम्महि — पापकर्मभि) पापकर्मों के प्रभाव म (अवसो — अवश) परवश हुआ मैं इस दशा को (पाविओ — प्रापित) पाप करने वाला मैं

बला सडासतुडेहिं, लोहतुडेहिं पक्खिहिं ।
विलुत्तो विलवतो हं, ढंक गिद्धेहिंणतसो ॥५९॥

अन्वयार्थ — (विलवन्तो — विलपन्) विलाप करता हुआ (अहं — मैं) मैं (बला — बलात्) हठपूर्वक (सडासतुडेहिं — सडासतुण्डै) सडासी के समान चोच वाले और (लोहतुण्डेहिं — लोहतुण्ड) लोह क समान कठोर चोंच वाले तथा, (ढंक गिद्धेहिं — ढंकगृद्ध) ढंक और गीध (पक्खिहिं — पक्षिभि) पक्षियो द्वारा (अणंतसो — अनन्तश) अनन्तबार (विलुत्तो — विलुप्त) विनाश किया गया ।

तण्हा किलंतो धावतो, पत्तो वेयरणि नइं ।
जलं पाहिति चिंततो, खुरधाराहिं विवाइओ ॥६०॥

अन्वयार्थ — (तण्हा — तृष्णा) प्यास म (किलन्तो — क्लाम्यन्) क्लेश पाकर (धावंतो — धावन्) दौड़ता हुआ मैं (वेयरणि — वैतरणीम्) वैतरणी (नइं — नदीम्) नदी क (जलम — जलम) जल को (पाहिति — पास्यामि) पीऊंगा ऐसा (चिंततो — चिन्तयन्) सोचता हुआ (खुरधाराहिं — क्षुरधाराभि) छुर क समान तीक्ष्ण धाराओं म (विवाइओ — व्यापादित) विनाश किया गया ।

उण्हाभितत्तो सपत्तो, असिपत्त महावण ।
असिपत्तेहिं पडतेहिं, छिन्नपुव्वो अणेगसो ॥६१॥

अन्वयार्थ — (उण्हाभितत्तो — उष्णाभितप्त) उष्णता स अभितप्त होकर (सपत्तो — सम्प्राप्तम) असिपत्र नाम (महावण — महावनम्) पत्तों का

(मपत्तो—मप्राप्त) प्राप्तहुआ वहाँ (अग्गिवत्तेहिं—अग्निवर्णी) अग्निवर्णों के (पज्जन्तेहिं—पतद्भि) गिरनेसे (अणेगसो—अनेकश) अनेको वार मेरा अंग (छिन्नपुव्वो—छिन्नपूर्व) पहले छेदन हुआ।

मुग्गरेहि मुसुढीहिं, सूलेहिं मुसलेहि य।
गयासभग्गगत्तेहिं, पत्तं दुक्ख अणन्तसो ॥६२॥

अन्वयार्थ—मुग्गरेहि—मुद्गरो, मुसुढीहि—भुशुडियो, सूलेहि—त्रिशूलो, य—और, मुसलेहि—मुसलो द्वारा, तथा गयासभग्गगत्तेहि—गदा से अगो को तोडने पर, पत्त—प्राप्त किया, दुक्ख—दु ख को, अणन्तसो—अनन्त वार।

मूलार्थ—मुद्गरो, भुशुडियो, त्रिशूलो, मुसलो और गदाओ से मेरे शरीर के अगो को तोडने से मैंने अनन्त वार दु ख प्राप्त किया।

खुरेहि तिक्खधारेहि, छुरियाहि कप्पणीहि य।
कप्पिओ फालिओ छिन्नो, उक्कित्तो अ अणेगसो ॥६३॥

अन्वयार्थ—(तिक्खधारेहि—तीक्ष्णधारै) तेजधारवाले (खुरेहि—क्षुरै) उस्तरो से (छुरियाहि—क्षुरिकाभि.) छुरियो से (य-च) और (कप्पणीहि—कल्प—नीभि) केंचियों से (अणेगसो—अनेकश) अनेकवार मुझे [कप्पिओ—काटागया कल्पित] [फालिओ-पाटित] फाडागया [छिन्नो—छिन्न] छेदन कियागया और [उक्कित्तो-उत्कृत] चमडी उतारी गयी।

पासेहि कूडजालेहिं, मिओ वा अवसो अहं।
वाहिओ वद्धरुद्धो अ, वहू चेव विवाइओ ॥६४॥

अन्वयार्थ—[पासेहि—पाशै] पाश और [कूडजालेहि—कूटजालै] कूट पाशो से [मिओ-मृग] मृग की तरह [अवसो—अवश] परवश हुआ अह—मैं छलपूर्वक [वाहिओ—वद्ध] वाधागया अ-और (रुद्धो-रुद्ध) रोका गया एव-निश्चय ही [वहू-वहुश] वहुतवार [विवाइओ—व्यापादित] विनाश को प्राप्तकिया गया।

गलेहि मगरजालेहिं, मच्छो वा अवसो अहं।
उल्लिओ फालिओ, गहिओ मारिओ य अणतसो ॥६५॥

अन्वयार्थ—(गलेहि—गलै) वडिशो से [मगरजाहि—मकरजालै]

मबग बार जाला मे [मच्छावा—मत्य इव] मछली की तरह यमदूता स [अवसा—अवश] विवश हुआ [अह अहम] मैं अनन्त अनन्तवार [उल्लिआ-उल्लिखित] उल्लिखित किया गया तन वटिशकुटी लगन मे [फालिओ—पाटित] फाड लिया गया [गहिआ गृहीत] पकडा गया और [मारिआ मारित] मारागया।

वीदसएहिं जालेहिं, लेप्पाहिं सउणो विव।
गहिओ लग्गो वद्धो य, मारियो य अणतसो ॥६६॥

अन्वया । —(वीदसएहिं—विदंशक) श्यना बाजा पक्षिया द्वारा [जालेहि जाल) जाला म [लेप्पाहि लेपाभि] द्रव्यक द्वारा [सउणा—शकुन] पक्षी की [विव—इव] तरह (अणतसा अनन्तश) अनन्तवार [गहिआ लग्गा वद्धो मारिआ गृहीत लग्न वद्ध, मारित] पकडा गया चिपकाया गया, बाधागया मारा गया।

कुहाडफरसुमाईहिं वडढईहिं दुमो विव।
कुट्टिओ फालिओ छिन्नो तच्छिओ य अणतसो ॥६७॥

अन्वयार्थ—(वड्ढईहि—वार्धिक) बढ़ईया (तरखानो) द्वारा (कुहाड—कुठार) कुल्हाडी (फरसु—परशु) फरसा (आईहि आदिभि) आदि स (विव इव) जस(दुमा—द्रुम) वक्ष काटा जाता है उसी प्रकार अनन्तवार (कुट्टिआ—कुट्टित) द्वारा टुकडा किया गया (फालिआ—पाटित) फाड लिया गया (छिन्ना तच्छिआ य छिन्न तक्षित) छन्न किया गया छीला गया।

चवेडमुट्ठिमाईहिं, कुमारेहिं अय पिव।
ताडिओ कुट्टिओ भिन्नो, चुण्णिओ य अणतसो ॥६८॥

अन्वयार्थ — (चवड—चपड) चपत और (मुट्ठिमाईहि—मुष्ट्यादिभि) मुष्टि आदि स (कुमारेहि—कुमार) लोहकाराने (अयपिव—अय इव) लोह की तरह (अणतसा अनन्तश) अनतवार (ताडिआ—ताडित) ताडित कियागया (कुट्टिओ-कुट्टित) (भिन्ना भिन्न) (चुण्णिअ-चूर्णित) पीटा गया, भिन्न भिन्न किया गया और चूर्ण किया।

तत्ताइ तम्ब लोहाइ तउयाइ सीसगाणिय।
पाइओ कलकलताइ, आरसतो सुभेरव ॥६९॥

अन्वयार्थ—यमदूतों द्वारा मुझे (तत्ताइ—तप्तानि) तप्त (तम्बलोहाइ—ताम्रलोहादीनि) गरम किया गया ताम्बा लोहा, (तउयाइ, सीसगाणि-त्रपुकानि, सीसकानि) त्रपु लाख; और सीसा ये पदार्थ (कलकलनाइ—कलकलायमानानि) कलकलाते हुए (सुभेरवं—सुभैरवम्) अतिभयानक (आरसन्तो—आरसन्) शब्द करते हुये (पाइयो—पायित.) पिलाया गया।

तुहं पियाइं मसाइं, खण्डाइं सोल्लगाणि य ।
खाविओमि समसाइं, अग्गि वण्णाइंअणेगसो ॥७०॥

अन्वयार्थ—(तुहं—तव) तुझे (पियाइ, मसाइं—प्रियाणि-मांसानि) मांस के (खडाइं-खंडानि) टुकड़े और (सोल्लकाइं—सोल्लकानि) भुने हुये मांस (कबाब) प्रिय थे अत (समसाइं—स्वमांसानि) मेरे ही मांसो को (अग्गिवण्णाइं—अग्निवर्णानि) आग की तरह लाल करके अणेगसो—अनेकवार खिलाया गया ॥

तुहं पिया सुरा सीहू, मेरओ य महूणि य ।
पज्जिओमि जलंतीओ, वसाओ रुहिराणि य ॥७१॥

(तुहं—तव) तुझे (सुरा, सीहू, मेरओ, महूणि—सुरा, सीधु, मेरका, मधूनि) सुरा, सीधू, मुरक और मधु नाम की मदिरा (पिया-प्रिया) अत्यन्त प्रिय थी। अत मुझे यमदूतो ने (जलंतीओ—ज्वलंती) अग्नि के समान जलती हुई (वसाओ, रुहिराणिय—वसा, रुधिराणि च) चर्बी और रक्त (पज्जियोमि—पायितोऽस्मि) पिला दिया ॥

नोट—(सुरा-चन्द्रहास्यादि, सीधू-ताड़ी, मेरक दूध आदि उत्तम रस पदार्थों से खींची गई। मधु महुआ आदि के फूलो से बनाई गई।

निच्चं भीएण तत्थेण, दुहिएण वहिएण य ।
परमा दुहसंबद्धा, वेयणा वेदिता मए ॥७२॥

अन्वयार्थ—(निच्चं—नित्यम्) सदा (भीएण—भीतेन) भय से (तत्थेण—त्रस्तेन) त्रास से [दुहिएण—दु खितेन] दु ख से [य—और] [वहिएण—व्यथितेन] व्यथा से परमा—अत्यन्त उत्कृष्टा] (दुह संबद्धा—दु खसंबद्धा] दु ख सम्बन्धिनी [मए—मया] मैंने [वियणा—वेदना) वेदना को (वेइया—वेदिता) भोगी है।

तिव्वचण्डप्प गाढाओ, घोराओ अइदुस्सहा ।
महब्भयाओ भीमाओ, नरएसु दुहवेयणा ॥७३॥

अन्वयार्थ—[तिव्व-तीव्रा] तीव्र [चण्ड प्रचण्डा] [पगाढाओ—प्रगाढा] अत्यन्त गाढी [घोराओ—घोरा] अति भयंकर [अइदुस्सहा—अतिदु सहा] अत्यन्त कठिन [महब्भयाओ—महाभया] [भीमाओ भीमा] महाभय को उत्पन्न करनवाली [मए मया] मैंने [नरएसु नरकेषु] नरकों में [दुहवेयणा दु खवेदना) दु खरूपवेदनाएँ अनुभव की।

जारिसा माणुसे लोए, ताया ! दीसन्ति वेयणा।
इत्तो अणतगुणिया, नरएसु दुक्खवेयणा ॥७४॥

अन्वयार्थ—[ताया—तात] हे पिता ! [जारिसा—यादृश्य] जैसी [वेयणा वेदना] वेदनाएँ [माणुसे लोए—मनुष्यलोके] ससार में [दीसन्ति—दृश्यन्ते] देखी जाती हैं। इत्तो इत] इससे [अणतगुणिया अनन्तगुणिता] अनन्तगुना अधिक [दुक्खवेयणा—दु खवेदना] दु खवेदनाएँ [नरएसु—नरकेषु] नरकों में देखी जाती है।

सव्व भवेसु अस्साया, वेयणा वेदिता मए।
निमिसतर मित्तपि, जे साया नत्थि वेयणा ॥७५॥

अन्वयार्थ—(मए—मया) मैंने (सव्वभवेसु—सर्वभवेषु) सभी जन्मों में (अस्साया—असाता) असातारूप (वेयणा—वेदना) (वेइया—वेदिया) अनुभव की है किन्तु (जे—जो) (साया—सातारूप) सुखरूप (वेयणा—वेदना) (निमिसतर—रमित्तपि—निमेषान्तरमात्रमपि) आखझपने मात्रसमय में भी नत्थि—नास्ति) नहीं अनुभव की है।

त वितम्मापियरो, छदेण पुत्त ! पव्वया।
नवर पुण सामण्णे, दुक्ख निप्पडिकम्मया ॥७६॥

(त—तम्) मृगापुत्रको (अम्मापियरो—अम्मापितरौ) माता और पिता (वित—ब्रूत) कहने लगे (पुत्त ! हे पुत्र !) (छन्देण—छन्दसा) स्वेच्छा-पूर्वक (पव्वया—प्रव्रजित) दीक्षित हो जो (नवर—केवलम्) इतना विशेष है (पुण—फिर) (सामण्णे—श्रामण्य) सयम में (दुक्ख—दु ख) दु ख का हेतु यह है जो कि (निप्पडिकम्मया—निष्प्रतिकर्मता) रोगादि होने पर उसको हटाने के लिए औषधी नहीं की जाती।

नोट—जिनकल्पी—औषधी नहीं करते किन्तु स्थविरकल्पी का निषेध औषधी करने का प्रतिषेध नहीं है।

सो बितऽम्मापियरो, एवमेय जहा फुड ।
पडिकम्मं को कुणई, अरण्णे, मियपक्खिणं ॥७७॥

अन्वयार्थ— (सो—स) वह मृगापुत्र (बित—ब्रूते) कहते हैं कि (अम्मापियरो—अम्बापितरौ !) हे मातापिता ! (एव—इस प्रकार है) एयमे (एतद्) यह (जहा—यथा) जैसे (आपने कहा है कि औषधोपचार नहीं होना साधुवृत्ति मे । सो (फुड—स्फुटम्) यह सब सत्य है किन्तु (अरण्णे—अरण्ये) वन मे (मियपक्खिण—मृगपक्षिणाम्) मृगो औपक्षियो का रोगा दि समय मे (को—क) कौन (पडिकम्य—प्रतिकर्म) औषधी को कुणई—करोति) करता है अर्थात् कोई नही ।

एगऽभूओ अरण्णे वा जहा उ चरई मिगो ।
एव धम्मं चरिस्सामि, सजमेण तवेण य ॥७८॥

अन्वयार्थ —(जहा—यथा) जैसे (उ—निश्चयार्थक) (अरण्णे—अरण्ये) वन मे (मिगो—मृग) मृग (एगऽभूओ—एक भूत') अकेला ही (चरई—चरति) विचरता है । (एव—उसी तरह) (धम्म—धर्मम्) धर्म का मैं (सयमेण, तवेण—सयमेन—तपसा) सयम और तपसे (चरिस्सामि—चरिष्यामि) आचरण करूँगा

जह मिगस्स आयको, महारण्णमि जायई ।
अच्छन्त रुक्खमूलम्मि, को ण ताहे चिगिच्छई ॥७९॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (महारण्णमि—महारण्ये) महाभयानक जगल मे रहने वाले (मिगस्स—मृगस्य) मृग को जब (आयको—आतक) कोई रोग (जायई—जायते) उत्पन्न होता है (ताहे—तदा) तब (रुक्खमूलम्मि वृक्ष-मूले) वृक्षके नीचे (अच्छन्त—तिष्ठन्त) बैठे हुए (ण—तम्) उस मृग की (को—क) कौन चिगिच्छई चिकित्सति दवा करता है ॥

कोवा से ओसह देइ, को वा से पुच्छई सुहं ।
को से भत्तं च पाणं वा, आहारिण पणामई ॥८०॥

अन्वयार्थ— (वा—अथवा) (को—क) कौन (से—तस्मै) उसको (ओसह—ओषधम्) दवा को (देइ—ददाति) देता है अथवा (को—कौन) (सुह—सुखम्) सुख साता को (पुच्छई—पृच्छई) पूछता है अथवा (को—क)

वान (से—तस्म) उसके लिए (भत्त—पाण च भत्तम—पानम्) भोजन पानी को (आणिरत्त—आनृत्य) लाकर (पणामई—प्रणामयत्) देता है ॥

जया य से सुही होइ तया गच्छ इ गोयर ।
भत्तपाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ॥८१॥

अन्वयार्थ—(य—च) और(जया—यदा) जब(स—स)वह मृग (सुही—सुखी)(होइ—भवति) स्वस्थ हो जाता है (तया—तदा)तब(गोयर—गोचरम) गोचरी को (गच्छइ—गच्छति) चल पडता है (भत्त—भक्तय और पाणस्स—पानस्य) भोजन और पानी के (अट्ठाए—अर्थम) लिये वल्लराणि (सराणिय—वल्लराणि सरांसि च) वन और तालाबो को पहुँच जाता है ॥

खाइय, पाणिय पाउ वल्लरेहि सरेहि य ।
मिगचारिय चरित्ता ण, गच्छई मिगचारिय ॥८२॥

अन्वयार्थ—वह मृग (वलरहिं सरेहि य—वल्लरषु सरस्सु च) वनों और तालाबो म घास आदि को (खाइत्ता—खादित्वा) खाकर पाणिय पानीयम पानी (पाउँ पात्वा) पीकर (मिगचारिय—मृगचर्याम) मृगचर्या को चरित्ता चरित्वा आचरण करके मृगचर्या म अपने स्थान को जाता है ॥

एव समुट्ठिओ भिक्खू एवमेव अणेगए।
मिगचारिय चरित्ता ण, उड्ढ पक्कमई दिस ॥८३॥

अन्वयार्थ—एव इसी—प्रकार (भिक्खू—भिक्षु) साधु (समुट्ठिओ—समुत्थित) सयम म सावधान हुआ (एवमेव—इसी प्रकार) (अणेगए—अनेकग) अनेक स्थानो म फिरने वाला (मिगचारिय—मृगचर्याम) मृगचर्या को(चरित्ता—चरित्वा) आचरण करके (उड्ढ—ऊर्ध्व) ऊची (दिस—दिशम) दिशा को (पक्कमई—प्रक्रामति) प्रक्रमन करता है।

भाव—सयम—क्रिया के अनुष्ठान करने का फल मोक्ष और स्वर्ग है।

जहा मिए एग अणेगचारी,
अणेगवासे धुव गोयरे य

एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे,
नो होलए नोविय खिससज्जा ॥८४॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (मिए—मृग) (एग—एक) अकेला होता हुआ य-और (अणेगचारी—अनेकचारी) अनेक स्थानों मे वास करता है। तथा (धुवगोअरे—ध्रुवगोचर) सदागोचरी किये हुए आहार का ही आहार करता है (एव—इसी प्रकार) (मुणी—मुनि) मुनि (गोयरियं—गोचर्याम्) गोचरी मे (पविट्ठ—प्रविष्ट) प्रविष्ट हुआ (नो हीलए—नो हीलयेत्) य और कदन्न कुत्सित(खराब) आहार मिलने पर(नो विहनोऽपि) न खिसएज्जा—खिसयेत्) मिलने पर निन्दा न करे।

मिग चारियं चरिस्सामि, एवं पुत्ता ! जहासुहं।
अम्मापिऊहिं अणुण्णाओ, जहाइ उवहिं तओ ॥८५॥

अन्वयार्थ— मैं (मिगचारियं—मृगचर्या) मृगचर्या का (चरिस्सामि—चरिष्यामि) आचरण करुगा। (एव—इस प्रकार) (पुत्ता—हे पुत्र!) (जहासुह—यथासुखम्) जैसे तुमको सुख हो वैसा करो। (अम्मापिऊहिं—अम्बापितृभ्याम्) इस प्रकार माता-पिता की (अणुण्णाओ—अनुज्ञात) आज्ञा होने पर (उवहिं—उपधिम्) उपाधि— (द्रव्य उपाधि—वस्त्रादि भावउपाधि—मायादि) को (जहाइ—जहाति) छोड दिया (तओ—तत) उसके वाद दीक्षित हो गया ॥

मिगचारिय चरिस्सामि, सव्वदुक्ख विमोक्खणि।
तुब्भेहि अम्ब अणुण्णाओ, गच्छ पुत्त ! जहासुहं ॥८६॥

अन्वयार्थ — हे अम्ब ! (तुब्भेहि—युष्माभ्याम्) आप दोनो की आज्ञा होने पर मैं (मिगचारिय—मृगचर्याम्) मृगचर्या (सयमवृत्ति) का (चरिस्सामि—चरिष्यामि) आचारण करुगा जो कि (सव्वदुक्ख—सर्व—दुःख) सर्व दुःखो से (विमोक्खणि—विमोक्षिणीम्) मुक्त करने वाली है (तव उसके माता—पिता ने कहा कि) (पुत्त! हे पुत्र) (जहासुह—यथासुखम्) जैसे तुमको सुख हो, वैसे करो ॥

एवं सो अम्मापियरं, अणुमाणित्ताण वहु विहं।
ममत्तं छिन्दई ताहे, महानागो धव्व कंचुय ॥८७॥

अन्वयाय—एव—इस प्रकार (सो—स) वह मृगा पुत्र (अम्मापियर—अम्बा—पितरा) माता पिता को (अणुमाणित्ता—अनुमान्य) सम्मत कर लेनेपर (बहुविह—बहुविधम) अनेक प्रकार के (ममत्त—ममत्वम) ममता को (ताह—तदा)उस समय (व्व—इव) जैसे (महानगो—महानाग) सर्प (कचुय—कचुकम) काचली को (छिन्दइ) बिल्कुल छोड देता है। वैसे बिल्कुल छोड दता है।

इड्ढी वित्त च मित्ते य, पुत्तदार च नायओ।
रेणुअ व पडे लग्ग, निद्धुणित्ता ण निग्गओ ॥८८॥

अन्वयाय—(इड्ढी—ऋद्धिम)ऋद्धि च—और (वित्त—वित्तम)धन य और (मित्ते—मित्राणि) (पुत्त, दार—पुत्र दाराम) पुत्र स्त्री (नायओ—ज्ञातीन) और (जाति—सम्बन्धी)जन (पडे—पटे)वस्त्र (लग्ग—लग्नम)लगी हुइ (रेणुअ रेणुकम) धूलि की इव-तरह (निद्धुणित्ता निधूय) झाडकर (निग्गओ निर्गत) घर से निकल गया।

पच महव्वय जुत्तो, पचसमिओ तिगुत्ति गुत्तो य।
सब्भिन्तर बाहिरिए, तवो कम्मसि उज्जुओ ॥८९॥

अन्वयाय—(पचमहव्वयजुत्ता—पच महाव्रत युक्त) अहिंसादि पाच महाव्रतो से युक्त (पचसमिओ—पचसमित) ईर्या समिति आदि पाच समितियो से युक्त (तिगुत्ति गुत्ताय त्रिगुप्ति गुप्तश्च) मन गुप्ति आदि तीन गुप्तियो से गुप्त हुआ (सब्भिन्तर बाहिरिए—आभ्यन्तर बाह्ये) आभ्यन्तर और बाह्य (तवो कम्मसि—तप कर्मणि) तपकर्म मे (उज्जुओ—उद्यत) सावधान हो गया॥ (तप की व्याख्या ३०वें अध्ययन मे है)

निम्ममो निरहकारो, निस्सगो चत्तगारवो।
समो अ सव्वभूएसु, तसेसु थावरे अ ॥९०॥

अन्वयाय—(निम्ममो—निमम) ममत्वरहित (निरहकारो—निरहकार) अहकार से रहित (निस्सगो—निसग) गृहस्थो का साथ त्याग दिया है। (चत्त गारवो—त्यक्त गौरव) ऋद्धि रस साता तीनो गर्व को छोड दिया है जिसने (अ—च) और (तसेसु थावरेसु अ—स स्थावरेषु च) त्रस और स्थावरो आदि (सव्वभूएसु—सर्वभूतेषु) सभी जीवो पर (समो—सम) समभाव रखनेवाला हुआ॥

लाभालाभे सुहे दुक्खे, जीविए मरणे तहा ।
समो निन्दा पससासु, तहा माणावमाणओ ॥ ६१ ॥

अन्वयार्थ—वह मृगापुत्र (लाभालाभे—लाभ और हानि मे) (सुहे—सुखे) (दुक्खे—दु खे) सुख और दु ख मे (तहा—तथा) (जीविए, मरणे—जीवने, मरणे) जीवन और मरण मे (निन्दा पससासु—निन्दा प्रशसयो) निन्दा और प्रशसा मे (माणावमाणाओ—मानापमानयो) मान अपमान मे भी समभाव रखने-वाला हुआ ।

गारवेसु कसाएसु दड सल्लभएसु अ ।
नियत्तो हाससोगाओ, अनियाणो अवन्धणो ॥६२॥

अन्वयार्थ—(गारवेसु—गौरवेभ्य) ऋद्धि, रस, साता गौरव (गर्व) से (कसाएसु—कषायेभ्य) कषायो मे (दड सल्ल भएसु—दण्डशल्यभयेभ्य) मन वचन, काया के दड, मायादि शल्य और मिथ्या दर्शन रूप शल्य अतएव सात प्रकार भयो से (नियत्तो—निवृत्त) रहित तथा (हाससोगाओ—हास्यशोकात्) हास्य और शोक से (अनियाणो—अनिदान) तथा निदान से रहित (अवन्धणो—अवन्धन) वन्धन से रहित हो गया ।

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ ।
वासी चन्दण कप्पी य, असणे अणसणे तथा ॥ ६३ ॥

अन्वयार्थ—(इह—इह) (लोए—लोके) लोक मे (अणिस्सिओ—अनिश्रित) आश्रयरहित (परलोए—परलोके) परलोक मे (अणिस्सिओ—आश्रयरहित) इस लोक व परलोक के सुखो की थोडी भी इच्छा जिसके मन मे नही है उसका शरीर यदि कोई (वासी—परशु) फरसा से काटता है (य—और) (चदण—चन्दन) चन्दन से पूजता है किन्तु दोनो पर (कप्प—समकल्प) समभाव है इसी प्रकार अन्न के मिलने और न मिलने पर भी समभाव है ।

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवो ।
अज्झप्पज्झाणजोगेहिं, पसत्थ दम सासणो ॥ ६४ ॥

अन्वयार्थ—(अप्पसत्थेहिं दारेहि—अप्रशस्तेभ्यो द्वारेभ्य) मृगापुत्र प्रशस्त योगो, मन, वचन, काया के व्यापारो द्वारा आने वाले कर्मपरमाणु को

(म वजा—मवन) मभी प्रकार स (पिहियामवा—पिहिताश्रव) आन के माग का बन्द कर अथान मवरयुक्त होकर (अ यप्पज्याणजोगहि—अध्यात्मध्यान योग)अध्यात्मध्यानयोग म युक्त हुआ(पमत्थ—प्रशस्त) सुन्दर (दम—उपशम) और (मामणा—शमन) भगवान के सिद्धान्त आगम का जानकार बन गया ।

एव नाणेण चरणेण, दसणेण तवेण य ।
भावणाहि य सुद्धाहि, सम्म भावेत्तु अप्पय ॥ ९५ ॥

अ वयाय—(एव—इसप्रकार) (नाणण—ज्ञानन) ज्ञान स (चरणेण—चारित्रेण) चारित्र म (दसणेण तवेण य—दर्शनन तपमा च) दर्शन और तप म तथा (सुद्धाहि—शुद्धाभि) विशुद्ध (भावणाहि—भावनाभि) १२ भावनाओ म (सम्म—सम्यक) भली प्रकार (अप्पय—आत्मानम) आत्मा का (भवत्तु—भावयित्वा) भावित कर के-अनिरजित करके ।

बहुयाणि उवासाणि, सामण्णमणु पालिया ।
मासिएण उ भत्तेण, सिद्धि पत्तो अणुत्तर ॥ ९६ ॥

अ वयाय—(बहुयाणि—बहूनि) बहुत(वासाणि—वर्षाणि) वर्षों तक (सामण्ण—श्रामण्यम) श्रमण धर्म का (अणुपालिया—अनुपाल्य) परिपालन करके (उ—विशेषतु) तो (मासिएण भत्तेण—मासिकेन भक्तेन) एक मास का उपवास करके (अणुत्तर—अनुत्तराम) सबसे उत्तम (सिद्धि -सिद्धगतिम) सिद्धगति (मोक्ष) को (पत्तो—प्राप्त) प्राप्त हुआ ।

एव करति सबुद्धा, पडियापवियक्खणा ।
विणिअट्टति भोगेसु मियापुत्ते जहा मिसी ॥ ९७ ॥

अ वयाय— (एव—इसप्रकार (सबुद्धा—सबुद्धा) तत्ववत्ता पुरुष जो (पडियापवियक्खणा—पण्डिता प्रविचक्षणा) पडित और चतुर हैं व (भोगसु—भोगेषु) भोगों स (मियापुत्ते जहा—मृगापुत्र यथा) मृगापुत्र (मिसी—ऋषि) की तरह (विणिअट्टति—विनिवर्तन्त) निवृत्त हो जाते हैं ।

महप्पभावस्स महाजसस्स,
मियाइपुत्तस्स निसम्म भासिय

तवप्पहाण चरियां च उत्तमं ।
गइप्पहाणा च तिलोअविस्सुत ॥९८॥

अन्वयार्थ— (महप्पभावस्स—महाप्रभावस्य) श्रेष्ठ प्रभाववाले असस्स—महायशस) महान् यशवाले (मियाइपुत्तस्स-मृगाया पुत्रस्य —) मृगा-के पुत्र का (भासिय—भाषितम्) भाषण को (निसम्य) अच्छी तरह सुन कर (तवप्पहाण, उत्तमा चरिय तप प्रधान उत्तमचारित्रम) तप प्रधान उत्तम चरित्र (गइप्पहाना—गतिप्रधानम्) और गति प्रधान को तथा (तिलोअविस्सुत —त्रिलोक विश्रुताम्) तीनो लोको मे प्रसिद्ध ऐसे उत्तम पूर्वोक्त भाषणों को विचार पूर्वक श्रवण करके धर्म मे पुरुषार्थ करना चाहिए ।

वियाणिया दुक्ख विवड्ढण धग,
ममत्तवंधं च महाभयावहं ।
सुहावहं धम्मधुर अणुत्तरं,
धारेह निव्वाण गुणावह महं ॥९९॥ त्ति वेमि ।

अन्वयार्थ—(धण—धनम्) धन को (दुक्खविवट्ढण—दु खविवर्धनम्) दु खो को बढाने वाला (च) और (ममत्त्ववध—ममत्त्ववन्धनम्) ममत्त्व और वधन को वटानेवाला (महाभयावह—महान्) भयको देनेवाला (वियाणिया—विज्ञाय) जानकर (सुहावह—सुखावहाम्) सुखदेनेवाली (धम्मधुर—धर्मधुराम्) धर्मधुरा (धर्मरूप भार) को जो (अणुत्तर—अणुत्तराम्)जो प्रधान है उसको तू (धारेह—धार्यच्चम्) धारण कर जो कि (निव्वाण गुणावह—निर्वाणगुणावहाम्) निर्वाणगुणो को धारण करने वाली और (मह—महतीम्) अत सबसे वडी है । त्तिवेमि—इतिब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ ॥

इति मियापुत्तीय अज्झयणं समत्त—इतिमृगापुत्रीयाध्ययनयम् समाप्तम्

अह महानियण्ठिज्ज वीसइम अज्झयण
अथ महानिर्गन्थीय विंशतितममध्ययनम्

सिद्धाण नमो किच्चा, सजयाण च भावओ ।
अत्यधम्म गइ तच्च, अणुसिट्टिं सुणेह मे ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(सिद्धाण—सिद्धान) सिद्धो को (च—और) (सजयाण—सयतान) सयता का (भावओ—भावत) भावस (नमा किच्चा—नमस्कृत्य) नमस्कार करके (अत्यधम्मगइ—अर्थधर्म गतिम्) अर्थ धर्म की गति जो (तच्च—तथ्यम) तथ्य है। उसकी (अणुसिट्टिं अनुशिष्टम) अनुशिक्षा को (मे-मम) मुझस (सुणेह-श्रणुत) सुनो।

मूलार्थ — सिद्धा और सयताको भावस नमस्कार करके अर्थ धर्म की तथ्यगति को मुझस सुनो।

पभूयरयणो राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
विहारजत्त निज्जाओ, मण्डिकुच्छिसि चेइए ॥ २ ॥

अन्वयार्थ —(पभूय—प्रभूत) (रयणा—रत्न) बहुत रत्ना वाला (राया—राजा) राजा (सेणिओ—श्रेणिक) श्रेणिक (मगहाहिवो—मगधाधिप) मगधदेशका जो अधिपति है वह (विहारजत्त—विहारयात्राम) विहारयात्रा के लिये (मण्डिकुच्छिसि—मण्डिककुक्षौ) मण्डिक कुक्षि नामक (चेइए—चैत्य) चैत्य (उद्यान) म (निज्जाओ—निर्यात) गया।

मूलार्थ —प्रभूत रत्ना का स्वामी और मगधदेश का राजा श्रेणिक मण्डिककुक्षि नामके उद्यान म विहारयात्रा के लिए गया। नोट— गाव के समीप के बागा को उद्यान कहते हैं।

नाणा दुमलयाइन्न, नाणापक्खिनिसेविय ।
नाणाकुसुमसछन्न, उज्जाण नन्दणोवम ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ —(नाणा—नाना) अनेक प्रकार के (दुम—द्रुम) वृक्ष और (लया—लता) लताओ मे (आइन्न—आकीर्णम्) व्याप्त (नाणा पक्खि—नानापक्षि) अनेक प्रकारके पक्षियो से (निसेविय—परिसेवितम्) परिसेवित और (नाणाकुसुम—नानाकुसुम) अनेक प्रकार के फूलो से (संछन्न—सञ्छन्नम्) आच्छादित (नन्दणोवम—नन्दणोपमम्) नन्दन वन के समान (उज्जाणं—उद्यानम्) बगीचा था ।

मूलार्थ —वह मण्डिकुक्षि नामक उद्यान अनेक प्रकार के वृक्षो और लताओ से व्याप्त, नाना प्रकार के पक्षियो से परिसेवित और नाना प्रकार के पुष्पो से आच्छादित तथा नन्दनवन के समान था ।

तत्थ सो पासई साहुं, संजयं सुसमाहियं ।
निसन्नं रुक्खमूलम्मि, सुकुमालं सुहोइयं ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ —(तत्थ—तत्र) उस उद्यान मे (सो—स) वह राजा श्रेणिक (संजय—संयतम्) संयत और (सुसमाहिय—सुसमाहितम्) समाधिवाला (सुकुमाल—सुकुमारम्) सुकुमार (सुहोइय—सुखोचितम्) सुखशील (साहु—साधुम्) साधु को (रुक्खमूलम्मि—वृक्षमूले) वृक्ष के नीचे (निसन्न—निषण्णम्) बैठा हुआ (पासई—पश्यति) देखता है अर्थात् देखा ।

मूलार्थ —उस मण्डिकुक्षि नामक उद्यान में राजा श्रेणिक ने वृक्षके नीचे बैठे हुए एक साधु को देखा जो संयमशील, समाधिवाला, सुकुमार तथा प्रसन्न-चित्त था ।

तस्स रूवं तु पासित्ता, राइन्नो तम्मि संजए ।
अच्चन्तपरमो आसी, अउलो रूवविम्हओ ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ —(तस्स—तस्य) उस मुनि के (रूव—रूपम्) रूप को (पासत्ता—दृष्ट्वा) देखकर (राइन्नो—राजा) राजाको (तमि—तस्मिन्) उस (संजए—संयते) संयमी मे (अच्चन्त—अत्यन्त) (अउलो—अतुल) जिसकी बराबरी न की जा सके ऐसा (परमो—परम) उत्कृष्ट (रूवं—रूप) मे (विम्हओ—विस्मय) आश्चर्य हुआ, तु-अलंकारार्थ मे है ।

मूलार्थ —उस मुनि के रूप को देखकर राजा उस संयमी केअतुल और उत्कृष्टरूपमे अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हुआ ।

सयत ! आपने भोग काल मे ही मयम को ग्रहण कर लिया है। अत मै सर्व प्रथम इस अर्थ को मुनना चाहता हूँ ।

अणाहोमि महाराय! नाहो मज्झ न विज्जई ।
अणुकम्पगं सुहिं वावि, कची नाहि तुमे मह ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ :— (महाराय ! हे महाराज ! (अणाहोमि—अनाथोऽस्मि) मै अनाथ हूँ। (मज्झ—मम) मेरा (नाहो—नाथ) नाथ (नविज्जई—नविद्यते) कोई नही है। (वा—अथवा (अणुकम्पग—अनुकम्पक) अनुकम्पा करनेवाला (सुहिं—सुहृद्) (वि—अपि) भी (कची—कश्चित्) कोई (मह—मम मेरा नही है (तुमे—त्व) (नाहि—जानीहि) जाने ।

मूलार्थ —मुनि कहते हैं—हे महाराज ! मै अनाथ हूँ, मेरा कोई भी नाथ नही है और न मेरा कोई मित्र है कि जो मेरे ऊपर दया करे ऐसा आप जाने ।

तओ सो पहसिओ राया, सेणिओ मगहाहिवो ।
एवं ते इड्ढिमन्तस्स, कहं नाहो न विज्जई ॥ १० ॥

अन्वयार्थ :— (तओ—तत) उसके वाद (सो,राया—स राजा) वह राजा (पहसिओ—प्रहसित) जोर से हसा अथवा आश्चर्य मे पडा हुआ (सेणिओ—श्रेणिक) (मगहाहिवो—मगधाधिप) मगध देश का राजा विचारने लगा कि (एव—इस प्रकार (इड्ढिमन्तस्स—ऋद्धिमत) ऋद्धिवाले (ते—तव आपका कोई (नाहो—नाथ) (न विज्जई—न विद्यते) कैसे नही है ।

मूलार्थ .— उसके वाद प्रहसित और विस्मित हुआ वह मगधराज महाराजा श्रेणिक मन मे विचारने लगा कि इस प्रकार की ऋद्धिवाले आपका कोई नाथ कैसे नही है !

होमि नाहो भयंताणं, भोगे भुजाहि संजया ।
मित्तनाईपरिवुडो, माणुस्सं खु सुदुल्लहं ॥११॥

अन्वयार्थ —(सजया—हे सयताभयताण-भदन्तानाम्)आपका मैं (नाहो-नाथ)नाथ(होमि-भवामि)होता हूँ (मित्तनाई—मित्रज्ञाति)मित्र ज्ञाति वालो से (पविुरडो—परिवृत सन्) घिरा हुआ (भोगे—भोगान्) भोगो को (भुंजाहि-

सुन्द) भागो क्या कि (माणुस्य माणुस्सम) मनुष्य जन्म (सु निश्चय ही) (सुदुल्लह—सुदुर्लभम) अति दुर्लभ है।

भावार्थ—हे संयत! आपका मैं नाथ होता हूँ। मित्रों तथा सम्बन्धि जनों से घिरे हुए आप भोगों का उपभोग करें। क्योंकि इस मनुष्य जन्म का मिलना अति दुर्लभ है।

अप्पणाऽवि अणाहोऽसि, सेणिया ! मगहाहिवा ।
अप्पणा अणाहो सन्तो, कह नाहो भविस्ससि ॥१२॥

अन्वयार्थ—(सेणिया श्रेणिक) हे श्रेणिक (मगहाहिवा! मगधाधिप तू (अप्पणावि—आत्मनापि (आत्मा से भी (अनाहो—अनाथ) (असि—है) सो (अप्पणा आत्मना) आत्मा से (अनाहो-अनाथ) (सन्तो-सन्) होता हुआ (कह कथम्) कैसे (नाहो-नाथ) नाथ (भविस्ससि भविष्यसि) हो सकता है।

भावार्थ—हे मगध देश के स्वामी श्रेणिक! तुम आप ही अनाथ हो स्वयं अनाथ होता हुआ तू दूसरे का नाथ कैसे हो सकता है?

एव वुत्तो नरिंदो सो, सुसभतो सुविम्हिओ ।
वयण अस्सुयपुव्व, साहुणा विम्हयन्निओ ॥१३॥

अन्वयार्थ—(एवं—इस प्रकार) (वुत्तो—उक्त) कहा हुआ (सो—स) वह (नरिंदो—नरेन्द्र) राजा (सुसभंतो—सुसम्भ्रान्त) अतिव्याकुल हुआ (सुविम्हिओ—सुविस्मित) विस्मित हुआ (वयण—वचनम्) वचन (अस्सुयपुव्व—अश्रुतपूर्वम) पहले नहीं सुना गया है इस वचन का (साहुणा-साधुना) साधु के द्वारा सुनकर जो (विम्हयन्निओ—विस्मयान्वित) चकित सा हो गया।

भावार्थ—इस प्रकार कहा हुआ वह राजा साधु के वचन को सुन कर अतिव्याकुल और विस्मय को प्राप्त हुआ। क्योंकि साधु के उक्त वचन उसने अश्रुतपूर्व थे अर्थात् पहले कभी नहीं सुने थे।

अस्सा हत्थी मणुस्सा मे पुर अंतेउर च मे ।
भुजामि माणुसे भोगे, आणा इस्सरियं च मे ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अस्सा—अश्वा) घोड़े (हत्थी—हस्तिन) हाथी (मणुस्सा—मनुष्य) मनुष्य (मे—मेरे हैं (पुर—नगर) (च और) (अंतेउर—अन्तःपुरम्)

अन्त पुर (मे-मम) मेरे हैं (माणुसे—मनुष्यान्) मनुष्य सबन्धी (भोगे-भोगान्) भोगो को (भुजामि-भोगता हूँ (आणा—आज्ञा) आज्ञा (च-और) (इस्सरियं-ऐश्वर्य) ऐश्वर्य (मे—मेरे) है

मूलार्थ —हे मुने ! घोडे, हाथी और मनुष्य मेरे पास हैं। नगर और अन्त पुर भी है तथा मनुष्य सम्बन्धी विषय—भोगो का भी मे उपभोग करता हू, एव शासन और ऐश्वर्य भी मेरे पास विद्यमान है।

एरिसे संपयग्गम्मि, सव्वकामसमप्पिए।
कहं अणाहो भवई, मा हु भंते मुसं वए ॥१५॥

अन्वयार्थ —(एरिसे—ईदृशे) इस प्रकार की (संपयग्गम्मि—सम्पदग्रे) प्रधान सपदा मे (सव्वकामसमप्पिए—सर्वकामसमर्पित) मेरे सम्पूर्ण काम समर्पित है तो फिर (कह—कथम्) कैसे मै (अणाहो—अनाथ) अनाथ (भवई—भवति) हूं (हु—जिससे) भंते—हे भगवन् ! आप (मुस—मृषा) असत्य (मा—मत वए—वदतु) बोलें

मुलार्थ —हे भगवन् इस प्रकार की प्रधान सम्पदा मेरे को प्राप्त है और सब प्रकार के काम-भोग भी मुझे मिले हैं तो फिर मैं अनाथ कैसे हूं। हे पूज्य ! आप झूठ न बोले॥

न तुम जाणे अणाहस्स, अत्थ पोत्थ च पत्थिवा !
जहा अणाहो भवई, सणाहो वा नराहिव ! ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ — (पत्थिवा !—हे राजन् ! (तुम —त्वम्) तू (अणाहस्स—अनाथस्य) अनाथ का (अत्थ—अर्थम्) अर्थ और (पोत्थ—प्रोत्था) उसकी पूर्ण उपपत्ति भावार्थ को (न जाणे—न जानीषे) नहीं जानता है (च—पुन) नराहिव !—नराधिप !) हे राजन् (जहा—यथा) जैसे (अणाहो—अनाथ) अनाथ (भवइ—भवति) होता है (वा—अथवा) (सणाहो —सनाथ) सनाथ होता है ।

मूलार्थ—हे राजन् तू अनाथ शब्द के अर्थ और भावार्थ को नही जानता कि अनाथ अथवा सनाथ कैसा होता है ।

सत्थं जहा परमतिक्ख, सरीरविवरन्तरे ।
पविसिज्ज अरो कुद्धो, एव मे अच्छिवयणा ॥२०॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (कुद्धो—क्रुद्ध) क्रोधित हुआ (अरी—अरि) शत्रु (परमतिक्ख—परमतीक्ष्णम्) अत्यन्ततेज सत्थ—शस्त्रम्) हथियार को (सरीरविवरन्तरे—शरीरविवरान्तरे) शरीर के छिद्रों मे (पविसिज्ज—प्रवेशयेत्) प्रवेशकरावे चुभाता है (एव—इसी प्रकार) (मे—मम) मेरी (अच्छिवेयणा—अक्षिवेदना) आंखो मे वेदना हो रही थी ।

मूलार्थ—जैसे कुपित हुआ शत्रु अत्यततीक्ष्ण शस्त्र को शरीर के मर्मस्थानो मे चुभाता है । उससे जिस प्रकार की वेदना होती है, उसी प्रकार की असह्य वेदना मेरी आंखो मे हो रही थी ।

तिय मे अन्तरिच्छं च, उत्तमग च पीडई ।
इन्दासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारुणा ॥२१॥

अन्वयार्थ—(मे—मम) मेरा (तिय—त्रिकम्) कटिभाग मे (च—और) (अन्तरिच्छ—अन्तरेच्छम्) हृदय की पीडा वा भूख, प्यास का न लगना (च—और) (उत्तमग—उत्तमाङ्गम्) मस्तक मे (इन्दासणिसमा—इन्द्राशनि समा) इन्द्र के व्रज के लगने के समान (घोरा—भयकरा) (परमदारुणा—अत्यन्त कठोर (पीडइ—पीडयति) पीडा हो रही थी ॥

उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामन्ततिगिच्छगा ।
अबीया सत्थकुसला, मन्तमूलविसारया ॥२२॥

अन्वयार्थ—(मे—मेरे लिए) (विज्जामन्तचिगिच्छगा—विद्यामन्त-चिकित्सका) विद्या और मन्त्र द्वारा चिकित्सा करने वाले (अबीया—अद्वितीया) सर्वश्रेष्ठ (सत्थकुसला—शास्त्रकुशला) शस्त्रऔरशास्त्रक्रिया मे अतिनिपुण, (मन्त्रमूल विसारया—मन्त्र औपधि आदि मे अत्यन्त कुशल) (आयरिया—आचार्येर्या) आचार्य उपस्थित ।

मूलार्थ—मेरी चिकित्सा करने के लिए विद्या और मत्र के द्वारा चिकित्सा करते सर्वप्रथम, शस्त्र और शास्त्र क्रिया मे अतिनिपुण तथा मत्र और औपधि आदि के प्रयोग मे अत्यन्त कुशल गुरुजन उपस्थित थे ।

ते मे तिगिच्छं कुव्वति, चाउप्पाय जहाहियं ।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसामज्झ अणाहया ॥२३॥

अन्वयार्थ —(ते—वे) वैद्याचार्य आदि (मे—मम) मेरी (तिगिच्छं—चिकित्साम्) दवा को (कुव्वंति—कुर्वन्ति) करते रहे (चाउप्पायं—चतुष्पादम्) चतुष्पाद—वैद्य, औषधि आतुरता परिचारक (जहा जैसे) (हियं—हितम्) हित माने (य—फिर) (मे—मुझे) (दुक्खा—दुःखात्) दुःख से (न—नहीं) (विमोयन्ति—विमोचयन्ति) (बिल्कुल छुटकारा नहीं करा सके) (एसा—एषा) यह (मज्झ—मम) मेरी (अणाहया अनाथता) है।

मूलार्थ—वे वैद्याचार्य मेरी १—योग्य वैद्य हो २—उत्तमऔषधि पास में हो ३—रोगी को चिकित्सा कराने अधिक इच्छा हो ४—रोगी की सेवा करने वाले मौजूद रहे। इन चार उपचारों से चिकित्साकरते रहे परन्तु मुझे दुःख से छुटकारा न दिला सके यह मेरी अनाथता है॥

पिया मे सव्वसारंपि, दिज्जाहि मम कारणा ।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२४॥

अन्वयार्थ —(मे पिया—ममपिता) मेरे पिता ने (ममकारणा—मम कारणात्) मेरे कारण से (सव्वसारंपि—सर्वसारमपि) सब बहुमूल्य पदार्थ भी (दिज्जाहि—अर्पण) किये किन्तु (य—फिर वे) (दुक्खा—दुःखात्) (न—नहीं) (विमोयन्ति—विमोचयन्ति) विमुक्त कर सके (एसा—एषा) यह (मज्झ—मम) मेरी (अणाहया—अनाथता) है।

मूलार्थ—मेरे पिता ने मेरे कारण से पारितोषिक रूप में बहुमूल्य पदार्थों को वैद्यों के लिए दिये किन्तु फिर भी वे मुझे दुःख से विमुक्त न कर सके यह मेरी अनाथता है।

माया वि मे महाराय, पुत्तसोग दुहट्टिया ।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२५॥

अन्वयार्थ —(महाराय! महाराज!) हे महाराज (पुत्तसोग दुहट्टिया—पुत्रशोक दुःखार्ता) (मे—मेरी) (माया—माता) माता (वि—अपि) भी

(य—फिर) (दुक्खा—दु खात्) न (विमोयन्ति—विमोचन्ति) विमुक्त कर सकी (एसा—यह) (मज्झ—मेरी) (अणाहया—अनाथता) है।

मूलार्थ—हे महाराज! पुत्र के शोक से अत्यन्त दु खी हुई मेरी माता भी मुझे दु ख से विमुक्त नही कर सकी, यही मेरी अनाथता है।

भायरो मे महाराय! सगा जेट्ठकणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२६॥

अन्वयार्थ.—(महाराज!—हे महाराज!) (मे—मेरे) (सगा—स्वका) सगे (जेट्ठ, कनिट्ठगा—ज्येष्ठा, कनिष्ठका) ज्येष्ठ और छोटे (भायरो—भ्रातर) भाई (य—पुन) (दुक्खा—दु खात्) दु ख से (न—नही) (विमोयन्ति—विमोचन्ति) विमुक्त करसके (एसा—एषा) यह (मज्झ—मम) मेरी (अणाहया—अनाथता) है।

मूलार्थ—हे महाराज! मेरे बडे और छोटे सगे भाई भी मुझे दु ख से विमुक्त नही कर सके, यही मेरी अनाथता है।

भइणीओ मे महाराय!, सगा जेट्ठ कणिट्ठगा।
न य दुक्खा विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२७॥

अन्वयार्थ—(महाराय!—हे महाराज!) (मे—मेरे) मेरी (सगा—स्वका) सगी (जेट्ठा—ज्येष्ठा) (कणिट्ठगा—कनिष्टका) ज्येष्ठ और छोटी (भइणीओ—भगिन्य) वहने भी थी, (य—युन) [दुक्खा—दु खात्] न—नही [विमोयन्ति—विमोचयन्ति] विमुक्तकर सकी [एसा—एषा] यह [मज्झ—मम] मेरी [अणाहया—अनायता] है।

मूलार्थ—हे महाराज! मेरी सगी वडी और छोटी वहनें भी विद्यमान थी। परन्तु वे भी मुझ को दु ख से विमुक्त न करा सकी। यह मेरी अनाथता है।

भारिया मे महाराय! अणुरत्ता अणुव्वया।
असुपुण्णेहिं नयणेहिं, उर मे परिसिंचई ॥२८॥

अन्वयार्थ—[महाराय ! हे महाराज !] [मे—मेरी] [अणुरत्ता—अनुरक्ता] अत्यन्त अनुराग रखने वाली और [अणुव्वया—अनुव्रता] पतिव्रता [भरिया—भार्या] स्त्री थी वह भी [असुपुण्णेहिं—अश्रुपूर्णाभ्याम] आंसू भरी हुई [नयणहिं—नयनाभ्याम] आंखो से [मे—मेरे] [उर—उर] वक्ष स्थल को [परिसिञ्चइ—परिसिञ्चति] परिसिञ्चन करती था। परन्तु वह भी मुझे दुःख से विमुक्त न कर सकी।

मूलार्थ—हे महाराज ! मुझमे अत्यन्त अनुराग रखने वाली मेरी पतिव्रता भार्या भी अपना आंसू भरी हुई आंखो से मेरी छाती का सिंचन करती थी। परन्तु वह भी मुझे दुःख से विमुक्त न करा सकी॥

अन्नं पाणं च ण्हाणं च, गंधमल्लविलेवणं।
मए नायमनायं वा, सा बाला नेव भुंजई ॥२९॥

अन्वयार्थ —[सा बाला—वह—अभिनवयौवना] मेरी भार्या भी मेरे दुःख से दुःखी हुई [अन्नं पाणं ण्हाणं—अन्न पान च स्नानम] अन्न पानी और स्नान तथा [गंधमल्ल विलेवणं—गन्ध, माल्य विलेपनम] चन्दनादि गन्ध पुष्प की माला शरीर पर सुगंधादि से विलेपन आदि का [मए—मया] मेरे द्वारा [नायम—ज्ञातम] जानते हुए [अनाय—अज्ञातम] न जानते हुए [नेव—नैव] नहीं [भुंजइ—भुंक्ते] सेवन करती थी।

मूलार्थ—अभिनव यौवना होती हुई भी मेरी भार्या मुझे दुःखी देखकर मेरे द्वारा जानते हुए न जानते हुए अन्न पानी स्नान गन्ध, माला विलेपन आदि का सेवन नहीं करती थी।

खणं पि मे महाराय ! पासाओ वि न फिट्टई।
न य दुक्खा विमोएइ, एसा मज्झ अणाहया ॥३०॥

अन्वयार्थ—[महाराय ! महाराज !] [खणंपि—क्षणमपि] [मे—मेरे] [पासाओ—पार्श्वत] पास से [वि—पिर] [नफिट्टई—न अपयाति] दूर नहीं होती थी वह भी [य—फिर] [दुक्खा—दुःखात्] दुःख से [न—नहीं] [विमोएइ—विमोचयति] विमुक्त करा सकी यही मेरी अनाथता है॥

मूलार्थ—हे महाराज ! क्षणमात्र भी वह स्त्री मेरे पास से पृथक

नही होती थी परतु वह भी मुझको दु ख मुक्त मे छुडा न सकी । यही मेरी अनाथता है ॥

तओ ह एवमाहसु, दुक्खमा हु पुणो पुणो ।
वेयणा अणुभविउ जे, संसारम्मि अणन्तए ॥३१॥

अन्वयार्थ —[तओ—तत] उसके बाद [अह—मै] [एव—इस प्रकार) [आहसु—अब्रुवम्] कहने लगा कि [अणन्तए—अनन्तके] [ससारम्मि—ससारे] [पुणो पुणो—पुन पुन] बार बार [वेयणा—वेदना] का [अणुभविउ—अनुभवितुम्] अनुभव करती [हु—निश्चय ही] दुक्खमा—दु क्षमा] दुस्सह है, जे—पाद पूर्ति मे है ।

मूलार्थ —उसके बाद मै इस प्रकार कहने लगा कि इस अनत ससार मे बार बार वेदना का अनुभव करना बहुत कठिन है ।

सय च जइ मुंचिज्जा, वेयणा विउला इओ ।
खन्तो दन्तो निरारम्भो, पव्वइए अण गारियं ॥३२॥

अन्वयार्थ —[सय—सकृत्] एक बार भी [जइ—यदि] [इओ—[इत] इस [विउला—विपुला] असह्य [वेयणा—वेदना] मे [मुचिज्जा—मुच्ये छूट जाऊँ तो [खतो—क्षान्त] क्षमावान् [दन्तो—दान्त] वशेन्द्रिय [निरारम्भ—आरम्भ से रहित] हुआ [अणगरियं—अनगारिताम्] अनगार-वृत्ति मे [पव्वइए—प्रव्रजामि] दीक्षित हो जाऊँ ।

मूलार्थ —अत मै इस असह्य वेदना मे एकबार भी मुक्त हो जाऊँ, तो क्षमावान्, जितेन्द्रिय और सर्वप्रकार के आरम्भ से रहित होकर प्रव्रजित होता हुआ अनगारवृत्ति को धारण करलूँ ॥

एव च चिन्तइत्ताण, पसुत्तो मि नराहिवा !
परीयत्तन्तीए राइए, वेयणा मे खय गया ॥३३॥

अन्वयार्थ —[एव—इस प्रकार] [च—पुन] [चिन्तइत्ताणं—चिन्तयित्वा] चिन्तन करके [पसुत्तोमि—प्रसुप्तोऽस्मि] मै सो गया [नराहिवा !—नराधिप !] हे राजन् [राइए—रात्री] रात [परियत्तन्तीए—परिवर्तना-

याम] व व्यतीत होने पर [मे—मम] मेरी [वेयणा—वेदना] [खय—क्षयम] समाप्त [गया—गता] हो गई।

मूलार्थ—हे राजन्! इस प्रकार सोच करके मैं सो गया और रात्रि के व्यतीत होने पर मेरी वेदना शान्त हो गई।

तओ कल्ले पभायम्मि, आपुच्छित्ता ण बंधवे।
खन्तो दन्तो निरारम्भो, पव्वईओऽणगारियं ॥३४॥

अन्वयार्थ—[तओ—ततः] उसके बाद [कल्ले—कल्य] निरोग हो जाने पर [पभाए—प्रभाते] प्रातःकाल में [बंधवे—बान्धवान्] बन्धु जनों से [आपुच्छित्ताण—आपृच्छ्य] पूछ कर [खन्तो दन्तो निरारम्भो—क्षान्तः, दान्तः निरारम्भः] क्षमायुक्त इन्द्रियों का दमन करने वाला आरम्भ से रहित [पव्वइओ—प्रव्रजितः] दीक्षित हो गया [अणगारियं—अनगारिताम्] अनगार भाव को ग्रहण किया।

मूलार्थ—तदनन्तर निरोग हो जाने पर प्रातःकाल में बन्धुओं से पूछकर क्षमा शान्तभाव और आरम्भत्याग रूप अनगार भाव को ग्रहण करता हुआ मैं दीक्षित हो गया॥

टीका—गाथा में बताई गई हैं—१—की गई मानसिक प्रतिज्ञा २—साधुता के लक्षण ३—माता पिता आदि की आज्ञा से दीक्षित होना।

तो हं नाहो जाओ अप्पणो य परस्स य।
सव्वेसिं चेव भूयाणं, तसाणं थावराण य ॥३५॥

अन्वयार्थ—[तो—ततः] उसके बाद [अहं—मैं] [नाहो—नाथ] [जाओ—जातः] हो गया [अप्पणो—आत्मनः] अपना य—और [परस्स—परस्य] दूसरे का य—और [सव्वेसिं भूयाणं—सर्वेषाम् भूतानाम्] सभी प्राणियों [च—पुनः—एव—ही] [तसाणं—त्रसानाम्] त्रसों का य—और, थावराणं—स्थावरों का।

मूलार्थ—हे राजन्! उसके पश्चात् मैं अपना और दूसरे का तथा सभी जीव चाहे त्रस हों या स्थावर हों उनका स्वामी बन गया॥

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूड सामली ।
अप्पा कामदुहा घेणू, अप्पा मे नन्दण वण ॥३६॥

अन्वयार्थ —[अप्पा—आत्मा [नई-नदी] वेयरणी-वैतरणी] है, [मे-मम] मेरा [अप्पा—आत्मा] [कूडसामली—कूटशाल्मली] कूट शाल्मली वृक्ष है मे—मेरा [अप्पा—आत्मा] [कामदुहाधेणू—कामदुधाधेनु] कामदुधाधेनु है और मेरा [अप्पा—आत्मा] [नन्दण वण—नन्दन वनम्] नन्दन वन है ।

मूलार्थ — मेरा यह आत्मा वैतरणी नदी और कूट शाल्मली वृक्ष है तथा मेरा आत्मा ही कामदुधा धेनु और नन्दनवन है ।

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य ।
अप्पा मित्तममित्त च, दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥३७॥

अन्वयार्थ — [अप्पा—आत्मा] [दुहाण—दु खानाम्] दु खो का [य—और [सुहाण—सुखानाम्] सुखो का [कत्ता—कर्त्ता] है । [अप्पा—आत्मा अपना [मित्त—मित्रम्] मित्र य—और [अमित्त—अमित्रम्] शत्रु है । [दुप्पट्ठिओ—दु प्रास्थत]और [सुपट्ठिओ=सुप्रस्थित] है ।

मूलार्थ— हे राजन् ! हे राजन् यह आत्मा कर्म का कर्त्ता तथा विकर्त्ता (कर्म—फल—भोक्ता) है । एव यह आत्मा ही शत्रु और मित्र है । दु प्रस्थित शत्रु और सुप्रस्थित मित्र है । अर्थात् जब आत्मा दुराचरणों मे फस जाता है तो वह आत्मा, आत्मा का शत्रु तथा जब आत्मा सदाचरणो लवलीन हो जाता है तब आत्मा, आत्मा का मित्र वन जाता है ।

इमाहु अन्ना वि, अणाहया निवा
तामेग चित्तो निहुओ, सुणेहि मे
नियण्ठधम्म लहियाण वी जहा,
सीयन्ति एगे वहुकायरा नरा ॥३८॥

अन्वयार्थ— निवा !—हे नृप !, हे राजन् (इमा—इयम्) यह (हु—पादपू-) तिमे (अन्नावि—अन्यापि) और भी (अणाहया—अनाथता) है (ता—ताम्) उसको (एगचित्तो—एकचित्त) एकचित्त होकर (निहुओ—निभृत) स्थिरता से (मे—मात) मुझसे (सुणेहि—शृणु—सुनो) (नियण्ठधम्म—निर्ग्रन्थ-

धम्म) निग्रन्थधर्म को (लहियाण—लब्ध्वा) पाकर भी (वी—अपि) भी (जहा—यथा) जम (एगे—कोईकाइ) (सीयन्ति—सीदंति) ग्लानि को प्राप्त हो जाते हैं जो (बहुकायरा—बहुकातरा) बहुत कायर (नरा—पुरुषा) पुरुष हैं।

मूलार्थ— हे नृप! अनाथता के अन्य स्वरूप को भी तुम मुझसे एकाग्र और स्थिरचित्त से सुनो। जैसे कि कई एक कायर पुरुष निग्रन्थधर्म के मिलने पर भी उसमें शिथिल हो जाते हैं।

जो पव्वइत्ताण महव्वयाइं
सम्मं च नो फासयई पमाया।
अनिग्गहप्पा य रसेसु गिद्धे,
न मूलओ छिंदइ बंधणं से ॥३९॥

अन्वयार्थ— जो (पव्वइत्ताण—प्रव्रज्य) दीक्षित होकर (महव्वयइं—महाव्रतानि) महाव्रतों को (पमाया—प्रमादात्) प्रमाद से (सम्मं—सम्यक्) भली प्रकार (न नो—नहीं) (फासइ—स्पृशति) सेवन नहीं करता है (य—और) (रसेसु—रसेषु) रसों में (गिद्धे—गृद्ध) मूर्छित (य—और) (अनिग्गहप्पा—इन्द्रियों को वश में न करने से) (से—स) वह (मूलओ—मूलत) मूल से अनिगृहीतात्मा) (बंधणं—कर्मबंधनम्) कर्मबंधन को (न—नहीं) (छिंदइ—छिनत्ति) काट सकता है।

मूलार्थ—जो ही दीक्षित होकर प्रमादवश से महाव्रतों का भली प्रकार सेवन नहीं करता तथा इन्द्रियों के अधीन और रसों में मूर्छित है। वह जड़ से कर्मबंधन को नहीं काट सकता।

आउत्तया जस्स न अत्थि काइ,
इरियाइ भासाइ तहेसणाए।
आयाणनिक्खेवदुगंछणाए
न वीरजायं अणुजाइ मग्गं ॥४०॥

अन्वयार्थ —(जस्स—यस्य) जिसकी (इरियाइ—ईर्यायाम्) ईर्या में (भासाइ—भाषायाम्) भाषा में (तह—तथा) (एसणाए—एषणा में) (आयाण आदान) में (निक्खेव—निक्षेप) निक्षेप में तथा (दुगंछणाए—जुगुप्सायाम्)

जुगुप्सा में (आउत्तया—आयुक्तता) यतना (कावि—कापि) कोई भी (न वत्थि—नास्ति) नहीं है। वह (वीरजाय—वीरयातम्) वीरसेवित (मग्ग—मार्गम्) मार्ग का (नअणुजाए—नअनुयाति) अनुसरण नहीं करता ॥

मूलार्थ—हे राजन्! जिसकी ईर्या समिति में, भोजन, आहार आदि के करने में, वस्तु के उठाने, रखने में, मलमूत्र त्याग में और उत्सर्ग समिति में कुछ भी यतना नहीं है, वह वीर सेवितमार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता। अर्थात् वीर भगवान् अथवा शूर वीर पुरुषों ने जिस मार्ग में गमन किया है, उस मार्ग में नहीं चल सकता।

चिरं पि से मुण्डरुई भवित्ता,
अथिरव्वए तवनियमेहिं भट्ठे।
चिर पि अप्पाण किलेसइत्ता,
न पारए होई हु सपराए ॥४१॥

अन्वयार्थ—[चिर पि—चिरमपि] चिरकालपर्यन्त [मुण्डरुई—मुण्डरुचि] मुण्डरुचि (भवित्ता—भूत्वा) होकर (अथिर—अस्थिर) अस्थिर (व्वए, तव—नियमेहिं—व्रत तप, नियमैः) अस्थिर, व्रत, तप, नियमों से (भट्ठे—भ्रष्ट है (से—सह) (चिर पि—चिरमपि) चिरकाल तक (अप्पाण—आत्मानम्) आत्मा को (किलेसइत्ता—क्लेशयित्वा) दुःखित करके (हु—निश्चये) 'खलु' (सपराए—सपरायस्य) ससार से (पारए—पारग) पार जाने वाला (होइ न—भवति) नहीं होता।

मूलार्थ—जो जीव चिरकाल तक मुण्डरुचि होकर व्रतों में स्थिर नहीं है और यप-नियमों में भ्रष्ट है, वह अपने आत्मा को चिरकाल तक दुःखित करके भी इस ससार से पार नहीं हो सकता।

पुल्लेव मुट्ठी जह से असोर,
अयंतिए कूडकहावणे वा।
राढामणी वेरुलियप्प गासे,
अमहग्घए होइ हु जाणएसु ॥४२॥

अन्वयार्थ —(जह—यथा) जस (एव—निश्चय) (पुल्ल—पुल्ल) पोली मुट्ठी—मुष्टि) (असारे—असार) असार है यथा (अयन्तिए—अयन्त्रित) अनियमित (कूडकहावणे— कूटकार्षापण) खोटामुहर (वा—च) तरह (राढा मणी—राढामणि) काचमणि जस (वेरुलिय—वैडूर्यमयि) की तरह (पगास—प्रकाश) प्रकाशित होती है परन्तु (जाणय—ज्ञेषु) विज्ञ (जानकार) पुरुषों में (ह—खलु) निश्चय ही (अमहग्घए—अमहार्घक) अल्पमूल्य वाला (होइ—भवति) हो जाता है ॥

मूलार्थ —जस पोला मुट्ठी असार होती है और खोटी मोहर में भी कोई सार नहीं होता इसी प्रकार वह द्रव्यलिंगी मुनि भी असार है । तथा जस काचकीमणि वैडूर्यमणि की तरह प्रकाशित करती है परन्तु विद्वानों के सम्मुख उसका कुछ कीमत नहीं होती इसीप्रकार वालद्रलिंग न मुनियों की भांति प्रतीत होने पर भी वह द्रव्यलिंगवालामुनि बुद्धिमान पुरुषों के सामने तो कुछ भी मूल्य नहीं रखता ।

कुसीललिंग इह धारइत्ता,
इसिज्झयं जीविय वूहइत्ता ।
असजए सजयलप्पमाणे,
विणिग्घायमागच्छइ से चिरंपि ॥४३॥

अन्वयार्थ —(कुसीललिंग—कुशीललिंगम) कुशीलवृत्ति को (इह—इस ससार) (धारइत्ता—धारयित्वा) धारण करके (इसिज्झय—ऋषिध्वजम्) ऋषिध्वज से (जीविय—जीवितम) जीवन को (वूहयित्ता—बृहयित्वा) बनाकर (असजए—असयत) असयत होकर भी (सजय—सयतोऽस्मि) सयत हूँ एवम् (लप्पमाणो—लपन्) (से—वह) (चिरपि—चिरमपि) बहुत काल तक (विणिग्घाय—विनिघातम) दुःख को (आगच्छइ—आगच्छति) प्राप्त होता है ।

मूलार्थ—वह द्रव्यलिंग मुनि कुशीलिंग कुशीलवृत्ति को धारण करके और ऋषिध्वज 'रजोहरणमुखवास्त्रिकादिचिन्ह' से जीवन को बनाकर तथा असयत होने पर भी मैं सयत हूँ इस प्रकार बोलता हुआ इस ससार में चिर काल दुःख पाता है ।

विसं तु पीय जह कालकूड
हणाइ सत्य जह कुगाहीयं ।
एसो वि धम्मो विसओ व वन्नो
हणाइ वेयाल इवाविवन्नो ।।४४

अन्वयार्थ—(जह—यथा) मानो (कालकूड—कालकूटम्) (विस विपको) (पीय—पीतम्) पी लिया हो (जह—जैसे) मानो (कुगहीय—कुगृहीतम्) उल्टा पकडा हुआ (सत्य—शस्त्रम्) हथियार अपने को (हणाइ—हन्ति) मारता है । और इव जैसे (वेयाल—वैताल) पिशाच जो (अविवन्नो—अविपन्न) वशमे नही हुआ है वह शब्दादि युक्त हुआ साधक को मार देता है । (एसो—यह) (धम्मोवि—धर्मोऽपि) वैसे ही यह धर्म भी (विसओववन्नो—विषयोपपन्न) शब्दादि विषयो मे युक्त हुआ साधक को (हणाइ—हन्ति) मार देता है ।

मूलार्थ.—जैसे पीया हुआ कालकूट विष प्राणो का विनाश कर देता है । और उल्टा पकडा हुआ हथियार अपना नाश करने वाला होता है, और जैसे वशमे न हुआ पिशाच साधक को मार डालता है वैसे ही धर्म भी शब्दादि विषयो से युक्त द्रव्यलिगी 'केवल साधुवेशधारी' का नाश कर देता है अर्थात् नरक मे ले जाता है ।

जे लक्खणं सुविणपउंजमाणो,
निमित्त कोउहल संपगाढे ।
कुहेडविज्जासवदार जीवी,
न गच्छई सरण तम्मिकावे ।।४५।।

अन्वयार्थः—(जे—य) जो पुरुष (लक्खण—लक्षण) वा (सुविण—स्वप्नविद्या) को (पउजमाणो—प्रयुञ्जमान) प्रयोग करता हुआ (निमित्त—भूकम्पादि) भविष्यकथन (कोऊहलसंपगाढे कौतुहल सम्प्रगाढ.) कौतुक (इन्द्रजालादि) ये (संपगाढे—सम्प्रगाढ) आसक्त है (कुहेडविज्जा—कुहेटक) असत्य और आश्चर्य उत्पन्न करने वाली जो विद्याएँ हैं उन सेवा (आसव-जीवी—आश्रवजीवी) आश्रव द्वारे से जीवन विताने वाला (तम्मिकाले—तस्मिन्काले) कर्मभोगने के समय (सरण—शरणम्) (नगच्छइ—नगच्छति) किसी की शरण नही पाता ।

मूलार्थ.—अगाध वह पुरुष औद्देशिक, क्रीतकृत, नित्य पिण्ड और अकल्पनीय किंचिन्मात्र भी पदार्थ नही छोड़ता अग्नि की तरह सर्वभक्षी होकर पापकर्म करता हुआ नरकादि गतियों मे जाता है।

न त अरी कंठछित्ता करेइ,
ज से करे अप्पणिया दुरप्पा।
से नाहिई मच्चुमुह तु पत्ते
पच्छाणुतावेण दयाविहूणो ॥४८॥

अन्वयार्थ—(त—तम्) उस अनर्थ को (कण्ठछित्ता—कण्ठछेत्ता) कठकाटने वाला (अरी—अरि) शत्रु भी (न करेइ—न करोति) नही करता है [ज—यत्] जिस अनर्थ को (से—तस्य) उसकी (अप्पणिया—आत्मीया) अपनी (दुरप्पा—दुष्टात्मा) (करे—करोति) करती है। (से—स) (दयाविहूण—दयाविहीन) वह पुरुष (मच्चुमुह—मृत्युमुखम्) तु—तो (पत्ते—प्राप्त) (पच्छाणुतावेण—पश्चादनुतापेन) पश्चात्ताप से दग्ध हुआ (नाहिई—ज्ञास्यति) जानेगा।

मूलार्थ—दुराचार मे प्रवृत्त हुआ यह अपना आत्मा जिस प्रकार का अनर्थ करता है, वैसा अनर्थ तो कठ—छेदन करनेवाला शत्रु भी नही कर सकता। वह दयाविहीन पुरुष जब मृत्यु के मुँह मे पड़कर पश्चात्ताप से दग्ध होगा तब जानेगा।

निरट्ठिया नग्गरुई उ तस्स,
जे उत्तमट्ठे विवियासमेइ।
इमे वि से नत्थि परे वि लोए,
दुहओ वि से झिज्झइ तत्थ लोए ॥४९॥

अन्वयार्थ—'तस्स—तस्य' उसकी उ—तु तो 'नग्गरुई—नग्नरुचि' 'निरट्ठिया—निरर्थिका' उत्तम अर्थ मे 'विवियासमेई—विपर्यासम्' विपरीत रूपसे 'एइ—एति' प्राप्त करता है। 'इमे—अयम्' 'विलोए—अपिलोक' यहलोक भी 'से—तस्य' उसका 'नत्थि—नास्ति' नही है परेलोए वि—परलोके अपि' परलोक भी नही है अत. 'दुहओ—द्विधापि'

दोना प्रकार स (सो—स) वह (तत्थ—तत्र) वहाँ (लोए—उभयलोक) स भी (झिज्झइ—क्षीयन) नष्ट हो जाता है ।

मूलार्थ—उसकी साधु-वृत्ति में रुचि रखना व्यर्थ है कि जो उत्तम अर्थ में भी विपरीत भाव को प्राप्त होता है । उसका न तो यह लोक है और न परलोक ही है । अत दोनों लोक से ही भ्रष्ट हो जाता है ।

एमेव हाछन्द कुसीलरूवे,
मग्ग विराहित्तु जिणुत्तमाण ।
कुररी विवा भोगरसाणुगिद्धा,
निरट्ठसोया परितावमेइ ॥५०॥

अन्वयार्थ—(एमेव—एवमेव) इसी प्रकार (हाछन्द—यथाछन्द) स्वच्छाचारी (कुसीलरूव—कुशीलरूप) दुराचारी रूप (जिणुत्तमाण—जिनोत्तमानाम्) जिनेन्द्र भगवान के उत्तम (मग्ग—मार्गम्) (मार्ग—नियम) का (विराहित्तु—विराध्य) विराधना करके (कुररीविवा—कुररीपक्षी) स्त्री की तरह (भोगरसाणुगिद्धा—भोगरसानुगृद्धा) भोगरसों में सदा लीन हुआ (निरट्ठिया—निरर्थिका) निरर्थक शोक करने वाला होकर (परितावमेति—परितापमेति) पश्चात्ताप प्राप्त करता है ।

मूलार्थ—इसी तरह स्वच्छाचारी कुशील रूप साधु जिनेन्द्र भगवान के नियमको विराधना करके भोगादि रसों में सदा आसक्त होकर निरर्थक शोक करने वाली कुररी पक्षिणी की तरह पश्चात्ताप करता है ।

सुच्चाण मेहावि सुभासियं इमं,
अणुसासणं नाणगुणोववेयं,
मग्गं कुसीलाण जहाय सव्वं ।
महानियंठाण वए पहेणं ॥५१॥

अन्वयार्थ—(हे मेहावि—हे मेधाविन्) (नाणगुणो ववेय—ज्ञानगुणो पेतम्) ज्ञानगुणों से युक्त (सुभासियं—सुभाषितम्) सुन्दर एवं मधुर (अनुशासन—अनुशासनम्) (सुच्चा—श्रुत्वा) सुनकर (सव्व—सर्वम्) सबप्रकार से

(कुशीलण—कुशीलों के(मग्ग—मार्गम्) मार्ग को (जहाय—हत्वा) त्यागकर (महानिगठाण —महानिग्रन्थानाम्) महानिग्रन्थों के हेण—पथा)पथ मे (वए— व्रज) चल ॥

मूलार्थ —हे मेधाविन् ! ज्ञान गुण से युक्त इस अनोक (सुभषित अनुशासन सुनकर कुशीलियों के कुत्सितमार्ग को सवथा छोडकर तू निर्ग्रन्थों के प्रशस्त मार्ग का अनुसरण कर) अर्थात् उनके निर्दिष्ट मार्ग पर चलो ।

चरित्तमायारगुणन्निए तओ,
वणुत्तरं संजम पालियाणं
निरासवे सरववियाए कम्म,
उवेइठाणं विउलुत्तयं धुव ॥५२॥

अन्वयार्थ —(चरित्तम्—चारित्रम्) (आयार —आचार) और (गुणन्निए गुणान्वित) गुणयुक्त (तओ—तत) उनके बाद (अणुत्तर—प्रधानम्) सजम—सयम (पालियाण—पालित्वा) पालन कर (निरश्रवे—निराश्रव) आश्रवसे रहित) कम्म-कर्म को (सरवयियाण—सक्षपय्य) सम्यक् क्षय करके (धुव—ध्रुवम्) निश्चय (विउलुत्तम—विपुलोत्तमम्) विस्तार युक्त उत्तम (ठाण—स्थानम् मोक्ष को (उवेइ—उपैति) जाता है ।

मूलार्थ— चारित्र, ज्ञानादि गुणो से युक्त होकर तदनन्तर प्रधान सयम का पालन करके आश्रव से रहित होता हुआ कर्मो का क्षय करके विस्तीर्ण तथा सर्वोत्तम ध्रुव स्थान—मोक्ष स्थान को प्राप्त हो जाता है ।

एवमुग्गदन्ते वि महातवोधणे,
महामुणी महापइण्णे महायसे ।
महानियण्ठिज्जमिण महासुयं,
से काहए महया वित्थरेणं ॥५३॥

अन्वयार्थ —(एव—इस प्रकार से) से वह, अर्थात् मुनि ने राजाश्रेणिक के पूछने पर (इण—इदम्) यह (महासुय—महाश्रुतम्) (काहए—कथयति) (महापवित्थरेण—महाविस्तरेण) महान् विस्तार से । वह मुनि (उग्गो, दन्ते, महातवोधणे—उग्र, दान्त, महातपोधन) (महामुणी—महामुनि)(महापइण्णे—

महाप्रतिन) श्रेष्ठ प्रतिज्ञावाले और (महायसे—महायशाः महान यशस्वी (महानियंठिज्जम—महानिग्रंथीय) अत्यंत अपरिग्रही।।

मूलार्थ—इस प्रकार उग्र, दांत महातपस्वी महामुनि दृढप्रतिज्ञ और महान यशस्वी उस अनाथीमुनि ने इस महा निग्रंथीय महाश्रुत को महाराजा श्रेणिक के प्रति कहा।

तुट्ठोय सेणियो राया, इणमुदाहु कयंजली।
अणाहयं जहाभूयं, सुट्ठु मे उवदंसियं ।।५४।।

अन्वयार्थ—(तुट्ठो—तुष्ट) हर्षित हुआ (अयंजली—कृताञ्जली) हाथ जोड़कर (सेणिया राया—श्रेणिकराजा) (इण—इदम) यह वचन (उदाहु—उवाह) कहने लगा कि (अणाहयं—अनाथत्वम) (जहाभूयं—यथाभूतम) सुट्ठु—सुष्ठु सुन्दर 'मे मुझे' उवदंसियं-उपदर्शितम' उपदर्शित किया।

मूलार्थ—राजा श्रेणिक हर्षित होकर और हाथ जोड़कर और हाथ कहने लगा कि भगवान! अनाथता का यथार्थ स्वरूप भली प्रकार से आपने मुझको दिखला दिया।

तुज्झं सुलद्धं खु मणुस्सजम्मं,
लाभा सुलद्धा य तुमे महेसी।
तुब्भे सणाहा य सबंधवा य,
जं भे ठिया मग्गि जिणुत्तमाण ।।५५।।

अन्वयार्थ—(तुज्झं—त्वया) आपने (खु—खलु) निश्चय ही (मणुस्स जम्म—मानुष्यजन्म) मनुष्य जन्म (सुलद्धं—सुलब्धम) सुन्दर प्राप्त किया है और (लाभा—लाभा) स्वर्गादि का लाभ भी (तुमे—त्वया) आपने (सुलद्धा—सुलब्धा) बहुत सुन्दर प्राप्त किया है। (महेसी!—हे महर्षे!) (तुब्भे—यूयम्) (सणाहा—सनाथा) सनाथ हैं (य—च) और (सबंधवा—सबान्धवा) भाई बन्धु सहित हैं य-और (जं—यद्) क्योंकि (भे—भवन्त) आप (जिणुत्तमाण—जिनोत्तमानाम) जिनेन्द्र भगवान् के (मग्गे—मार्गे) (ठिया—स्थिता) स्थित हैं।

मूलार्थ—हे महर्षे! आपका ही मनुष्य जन्म सफल है आपने ही वास्तविक लाभ प्राप्त किया है, आपही सनाथ और सबान्धव हैं क्योंकि आप

सर्वोत्तम जिनेन्द्र मार्ग मे स्थित हुए हैं ।

तसि नाहो अणाहाणं, सव्वभूयाण सजया ।
खामेमि ते महाभाग ! इच्छामि अणुसासिउ ॥५६॥

अन्वयार्थ —(सजया !—हे सयत !) (अणाहाण—अनाथानाम्) अनाथो को और (सव्वभूयाण—सर्वभूतानाम्) सब जीवो के (तसि—त्वमसि) तू—आप (नाहो—नाथ) हो (महाभाग !—ते-त्वाम्) आपसे मैं (खामेमि—क्षमे) क्षमापना करता आपसे (अणुसासिउ—अनुशासयितुम्) अपने को शिक्षित करना (इच्छामि—चाहता हूँ ।

मूलार्थ —हे भगवान् ! आप ही अनाथो के नाथ हैं । हे सयत ! आप सर्वजीवो के नाथ है । हे महाभाग ! मै आप से क्षमा की याचना करता हूँ और अपने आत्मा को आप के द्वारा शिक्षित बनाने की इच्छा करता हूँ ।

पुच्छिऊण मए तुब्भ, झाणविग्घो य जो कओ ।
निमन्तिया य भोगेहिं, त सव्व मरिसेहि मे ॥५७॥

अन्वयार्थ—(मए—मया) मैंने (पुच्छिऊण—पृष्ट्वा) पूछकर (तुब्भ—युष्माकम्) आपके (झाणविग्घो—ध्यानविघ्न) ध्यान मे विघ्न जो-य (कओ—कृत) जो किया है (य—च) और (भोगेहि—भोगै) भोगोद्वारा (नियतिया—निमन्त्रिता) निमत्रित किया है (त—तत्) वह (सव्व—सर्वम्) (मे—मम) मेरे अपराध को (मरिसेहि—मर्षयन्तु)—आप क्षमा करें ।

मूलार्थः—मैंने प्रश्नो को पूछकर आपके ध्यान मे बाधा डाली है, और भोगो के लिए आपको निमत्रित किया है । इन सब अपराधो को आप क्षमा करें । आप क्षमा करने के योग्य है ।

एव थुणित्तांण स रायसीहो,
अणगारसीहं परमाइ भत्तिए ।
सओरोहो सपरियणो सबन्धवो,
धम्माणुरत्तो विमलेण चेयसा ॥५८॥

अन्वयार्थ —एव-इसतरह (थुणित्ताण—स्तुत्वा) स्तुति करके (स—वह)

(रायगीहो—राजसिंह) राजाओं में सिंह समान राजा श्रेणिक (अणगारसीह—अनगारसिंहम्) साधुओं में सिंह के समान-मुनिको (परमाइ—परम) (भत्तिए—भक्त्या) अत्यन्त भक्ति से (सओरोहो—सावरोध) अन्तःपुरके सहित (सपरियणो—सपरिजन) मन्त्री सेवकादि के साथ (सबंधवो—सबान्धव) भाइयों के साथ (विमलेण चेयसा—विमलेन चेतसा) निर्मलचित्तसे (धम्माणुरत्तो—धर्मानुरक्त) धर्म में अनुरक्त हो गया ॥

मूलार्थ—इस प्रकार राजाओं में सिंह के समान श्रेणिक मुनि की स्तुति करके परम भक्ति से अपने अन्तःपुर परिजनों और भाइयों के साथ निर्मल चित्त से धर्म में अनुरक्त हो गया।

ऊससियरोमकूवो, काऊण य पयाहिणं।
अभिवंदिऊण सिरसा, अइयाओ नराहिवो ॥५९॥

अन्वयार्थ—(ऊससिय—उच्छ्वसित) विकसित हुए हैं (रोमकूवो—रोमकूप) रोमकूप हैं जिसके (नराहिवो—नराधिप) राजा श्रेणिक (पयाहिणं—प्रदक्षिणाम्) प्रदक्षिणा (काऊण—कृत्वा) करके (सिरसा—शिरसा) सिर से (अभिवन्दिऊण—अभिवन्द्य) वन्दना करके (अइयाओ—अतियात) अपने स्थान पर चला गया।

मूलार्थ—विकसित रोमकूप वाला राजा श्रेणिक श्री अनाथी मुनि जी की प्रदक्षिणा करता हुआ सिर से वन्दना करके अपने स्थान को चला गया।

इयरो वि गुणसमिद्धो, तिगुत्तिगुत्तो तिदण्डविरओ य।
विहग इव विप्पमुक्को, विहरइ वसुहं विगयमोहो ॥६०॥

अन्वयार्थ—(इयराेवि—इतरो पि) मुनि भी (गुणसमिद्धो—गुणसमृद्ध) गुणों से समृद्ध (तिगुत्तिगुत्तो—त्रिगुप्तिगुप्त) तीनोंगुप्तियों से गुप्त और (तिदण्डविरओ—त्रिदण्ड (मनादि दण्ड) विरत) (विप्पमुक्क—विहगव्व) पक्षी की तरह (विगयमोहो—विगतमोह) मोह रहित हो (वसुहं—वसुधाम्) पृथ्वीपर (विहरइ—विहरति) विचरता है।

मूलार्थ—इधर वह अनाथी मुनि भी जो गुणों से समृद्ध तीनगुप्तियों से गुप्त और तीन दण्डों से विरत थे। बन्धन से रहित हुए पक्षी की तरह विगत मोह होकर वसुधातल पर विचरने लगे ॥ इति ब्रवीमि

(इति महानिर्ग्रन्थीय विंशतितममध्ययनं समाप्तम्)

इस प्रकार निर्ग्रन्थीय २० वां अध्ययन समाप्त हुआ।

अह समुद्दपालीयं एगवीसइमं अज्झयणं

चंपाए पालिए नाम, सावए आसि वाणिए ।
महावीरस्स भगवओ, सीसे सो उ महप्पणो ॥१॥

अन्वयार्थ —(चपाए—चम्पायाम्) चपा नगरी मे (पालिए—पालित) पालितनाम-नामका (सावए—श्रावक) श्रावक (वाणिए—वणिक) वैश्य (आसि आसीत्) रहता था (सो—स) वह श्रावक, (नु—वितर्क) (महप्पणो—महात्मन) महात्मा का (भगवओ—भगवत) भगवात् (महावीरस्स—महावीरस्य) महावीर का (सीस—शिष्य) शिष्य था ।

मूलार्थ —चम्पा नगरी मे पालित नाम का एक वैश्य श्रावक रहता था । वह महात्मा भगवान् महावीर का शिष्य था ।

निग्गथे पावयणे, सावए से वि कोविए ।
पोएण ववहरते, पिहुंड नगरमागए ॥२॥

अन्वयार्थ —(से—स) वह (सावए—श्रावक) (वि—अपि) भी (निग्गथे—नैर्ग्रन्थे) निर्ग्रन्थ के (पावयणे—प्रवचने) प्रवचन मे (कोविए—कोविद) विशेष पडित था । (पोएण—पोतेन) जहाज से (ववहरते—व्यवहरन्) व्यवहार करता हुआ (नयर—नगरम्) शहर मे (आगए—आगत) आ गया ।

मूलार्थ —वह श्रावक निर्ग्रन्थ प्रचवन के विषय मे विशेष जानकार था। और जाहाज द्वारा व्यापार करता हुआ पिहुण्ड नाम के शहर मे आ गया ।

पिहुंडे ववहरंतस्स, वाणिओ देइ धूयर ।
तं ससत्त पइगिज्झ, सदेसमह पत्थिओ ॥३॥

अन्वयार्थ —(पिहुंड—पिहुण्ड) पिहुण्ड नगर में (ववहरतस्स—व्यवहरत) व्यापार करते हुए (तस्स) उसके लिए (वाणिओ—वणिक) किसी वणिक ने (धूयर—दुहितरम्) अपनी पुत्री (देइ—ददाति) दे दी (अह—अथ) उसके बाद (तं—ताम्) उस अपनी (ससत्त—ससत्त्वाम्) गर्भवती स्त्री को (पइगिज्झ—प्रतिगृह्य) लेकर (सदेसं—स्वदेशम्) अपने देश को (पत्थिओ—प्रस्थित) प्रस्थान कर दिया।

मूलार्थ —उसके बाद पिहुंड नगर में व्यापार करते हुए उस पालित सेठ को किसी वणिक ने अपनी कन्या दे दी कुछ समय बाद अपनी गर्भवती स्त्री को लेकर वह अपने देश की ओर चल पड़ा।

अह पालियस्स घरणी, समुद्दम्मि पसवई।
अह दारए तहिं जाए, समुद्दपालित्ति नामए ॥४॥

अन्वयार्थ —(अह—अथ) उसके बाद (पालियस्स—पालितस्य) पालित की (घरणी—गृहिणी) स्त्री (समुद्दम्मि—समुद्रे) समुद्र में (पसवई—प्रसूते) प्रसूत हो गई। अह इस बाद में (तहिं—तत्र) वहाँ पर (दारए—दारक) पुत्र (जाए—जात) उत्पन्न हुआ (समुद्दपालि—समुद्रपाल—इति) समुद्रपाल ऐसा (नामए नामक) नाम से वह प्रसिद्ध हुआ।

मूलार्थ —उसके बाद पालित की स्त्री को समुद्र में प्रसव हुआ और वहाँ उसका पुत्र उत्पन्न हुआ जो कि (समुद्रपाल) नाम से प्रसिद्ध हुआ।

खेमेण आगए चंप, सावए वाणिए घरं।
संवड्ढई घरे तस्स, दारए से सुहोइए ॥५॥

अन्वयार्थ — (खेमेण—क्षेमेण) कुशल पूर्वक (वाणिए—वणिजि) वणिक (सावए—श्रावके) श्रावक के (चंप—चम्पायाम्) चम्पा में (घरं—गृहम्) घर को। (आगए—आगते) आने पर (तस्स—तस्य) उसके (घरे—गृहे) घर में (से दारए—स दारक) वह पुत्र (सुहोइए—सुखोचित) सुख पूर्वक (संवड्ढई—संवर्धते) अच्छी तरह बढ़ता है।

मूलार्थ —वणिक वह श्रावक कुशलतापूर्वक अपने घर आ गया और वह बालक उसके घर में सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

बावत्तरीकलाओ य सिक्खिए नीइकोविए ।
जोव्वणेण य अप्फुण्णे, सुरूवे पियढंसणे ॥६॥

अन्वयार्थ — (बावत्तरीकलाओ—द्वासप्ततिकला) बहत्तर कलाओं को (सिक्खिए—शिक्षित) सीख गया (नीइकोविए—नीतिकोविद) नीति शास्त्र का पंडित (जोव्वणेण—यौवनेन) युवावस्थासे (अप्फुण्णे—आपूर्ण.) परिपूर्ण (य—च) और (सुरूवे—सुरूप) सुन्दर (पियदसणे—प्रियदर्शन.) प्रियदर्शी बन गया ।

मूलार्थ —उसके बाद वह समुद्रपाल पुरुष की ७२ कलाओं को सीख गया, और नीति शास्त्र मे भी निपुण हो गया तथा तरुणाई मे वह सब को सुन्दर और प्यार लगने लगा ।

तस्स रुपवइ भज्ज, पिया आणेई रुविणि ।
पासाए कीलए रम्मे, देवो दोगु दगो जहा ॥७॥

अन्ववार्थं —(तस्स—तस्य) उसके (पिया—पिता)पिता ने (रुविणि—रुपिणीम्) रुपिणाम वाली (रुववइं—रुपवतीम्) रुपवाली (भज्ज—भार्याम् स्त्री को (आणेइ—आनयति) लाकर दी (दोगुदगो—दोगुदक) दोगूंदक]दोगूदक'देवो देव की (अहा—यथा)तरह (रम्मे—रम्मे) सुन्दर (पासाए—प्रासाद) महल मे (कीलए—क्रीडति) क्रीडा करता था ।

मूलार्थ — उसके पिता ने रुपिणी नाम वाली अति रुपवती भार्या उसको लाकर दी । अर्थात् एक परम सुन्दरी कन्या के साथ विवहा कर दिया । वह उस भार्या के साथ दोगुद कदेव की तरह अपने सुन्दर महल मेस्वर्गीय सुख काअनु—भव करता था ।

अह अन्नया कयाई, पासायालोयणो ठिओ ।
वज्झ मडण सोभाग, वज्झ पासाइ वज्जग ॥८॥

अन्वयार्थं —(अह—अथ) [अन्नया—अन्यदा] दुसरे दिन (कमाई—कदाचित्) किसी समय (पासायालोयणे—प्रासादालोकने) महल के खिडकी मे (ठिओ—स्थित)बैठा हुआ (वज्झ मडण सोभाग—वध्यमणुनशोभकनम्) वध—

याग्य मन्न ने मौभाग्य जिमका ,व-य—वध्यम वध के योग्य वज्भगं—वध्यगम, वध्य न्थान पर न जान हुय चौर को (पामइ—पश्यति) दगना है।

मूलाथ—किसी समय मह्ल की खिड्की म बठा हुआ समुद्रपाल वध याग्यचिन्हों सुसज्जित वध्य—चोर को मारने क स्थान म ले जाते हुए देखता हैं।

त पासिऊण सविग्गो, समुद्द पाला इन मब्बवी।
अहा असुहाण कम्मण, निज्जाण पावग इय ॥६॥

अ वयाय —'त—तम उसको पासऊण—दृष्ट्वा' देखकर 'सविग्गो—संवेगम, संवेग को प्राप्त हुआ समुद्रपाल इण—इदम् इस वचन को अब्रवी अब्रवात कहने लगा। अहो— आश्चय है असुहाण कम्मण—अशुभ कमणाम् अशुभ कर्मों का निज्जाण—निर्याणम परिणाम 'इय—इदम' यह पवग पापरम पापरूप ही है।

मलाथ—इस चोर का देखकर संवेग को प्राप्त हुआ समुद्रपाल इस प्रकार कहने लगा—अहो अशुभ कर्मों का अन्तिम फल पापरूप ही है। जसे कि इस चोर का हो रहा है।

सबुद्धो सो तहि भगव, परमसंवेगमागओ।
आपुच्छम्मापियरो, पव्वए अणगारिय ॥१०॥

अन्वयाथ—'भगव—भगवान्' 'सो—स', वह समुद्रपाल 'तहि—तत्र उस खिड़की म बठा हुआ ही सबुद्धो—सम्बुद्ध तत्ववेत्ता होकर 'परम संवेग—परमसंवेगम् परमसम्वेगको 'आगओ—आगत प्राप्त हो गया अम्मापियरो—अम्बापितरौ माता पिता से आपुच्छ—आपृच्छ्य पूछकर 'अणगारिय—अनगारिता अनगारी 'पव्वए—प्रव्रजित' दीक्षा ले ली।

मूलाथ—भगवान् समुद्रपाल तत्ववेत्ता होकर उत्कृष्ट सम्वेग को प्राप्त हो गए। फिर माता पिता से पूछ कर अनगार वृत्ति के लिए दीक्षित हो गए।

जहित्तु सग च महाकिलेस,
महातमोह कसिण भयाणग।

परियाय धम्म चयामि रोय राज्जा,
वयाणि सोलाणि परीसहे य ॥११॥

अन्वयार्थ—'महान्तमोह—महामोहम्, महामोह तथा 'महक्लिेनम्—महावलेशम्' तथा 'महाभयाणकम्' अत्यन्त भय करने वाला 'कनिण—कृत्स्नम' सम्पूर्ण 'सग—सन्गम स्वजन सग को 'जहितु—हित्वा, छोडकर च—और 'परि—यायधम्म्—पर्यायधर्मम्' प्रवज्या—रूप धर्म मे 'अभिरोय रज्जा—अभिरोच-यति, मन लगता हुआ 'वयाणि मिलाणिय=व्रतनिशीलनिच, व्रत और शील 'हसीस हे—परीयहान्—परिषहो को महन करने लगा ।

मूलार्थ—महामोह और महाक्लेश तथा भयानक स्वजनादि के सग को छोड कर यह समुद्रपाल प्रवज्यारूप धर्म मे अभिरुचि करने लगा । जो कि व्रत शील और परिषहो के महन रूप है ।

अहिन्स सच्च च अतेणग च,
तत्तो य बम अपरिग्गह च ।
पडिवज्जिया पचमपधयाणि,
चरिज्जधम्मं जिणदेसिय विऊ ॥१२॥

अन्वयार्थ—'विऊ—विद्वान् विद्वान् पुरुष 'अहिसा, सच्च—अहिसा, सत्यम्' 'च—और' 'अतेणग—अस्तेनकम्' अचौर्य कर्म 'च—पुन' 'तत्तो-तत.' उसके वाद 'वभ—ब्रह्म' ब्रह्मचर्य 'य—और' 'अपरिग्गह—अपरि-ग्रहम्' अपरिग्रह 'च—पादपूर्ति मे 'पडिवज्जिया—प्रतिपाद्य' ग्रहण करके पचमहव्वयणि—पचमहाव्रतानि' पाच महाव्रतो को 'चरिज्ज—चरति' आचरण करे 'जिणदेसिय—जिनदेशितम्' जिनेन्द्र देव द्वारा उपदेश किये हुए 'धम्म—धर्मम्' धर्म को आचरण करे ।

मूलार्थ—विद्वान् पुरुष अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह रूप पाच महाव्रतो को ग्रहण करके जिनेन्द्र देव के उपदेश किये हुए धर्म का आचरण करे ।

सव्वेहिं भूएहिं दयाणुकंपी,
खंतिक्खमे संजयबंभयारी।
सावज्जजोगं परिवज्जयंतो
चरिज्ज भिक्खू सुसमाहिइंदिए ॥१३॥

अन्वयार्थ — सव्वेहिं—सर्वेषु सब भूएहिं—भूतेषु भूतों पर 'दया णुकंपी—दयानुकम्पी दया द्वारा अनुकम्पा करने वाला खंतिक्खमे—क्षान्तिक्षम क्षमा करने में समर्थ संजय—संयत संयमी बंभयारी—ब्रह्मचारी सुसमाहिइंदिए—सुसमाहितेन्द्रिय सुन्दर समाधि वाला और जितेन्द्रिय भिक्खू—भिक्षु सावज्जजोगं—सावद्ययोगम् सावद्य कर्म को परिवज्जयंतो—परिवर्जयन् बिल्कुल छोड़ता हुआ चरिज्ज—चरेत् आचरण करे।

मूलार्थ—सब भूतों पर दया द्वारा अनुकम्पा करने वाला, क्षमावान, संयमी ब्रह्मचारी समाधियुक्त जितेन्द्रिय भिक्षु सब प्रकार के सावद्य व्यापार को छोड़ता हुआ धर्म का आचरण करे।

कालेण कालं विहरेज्ज रट्ठे,
बलाबलं जाणिय अप्पणो य।
सीहो व सद्देण न संतसेज्जा,
वयजोग सुच्चा न असब्भमाहु ॥१४॥

अन्वयार्थ — रट्ठे—राष्ट्रे राष्ट्र में साधु अप्पणो—आत्मनः अपने आत्मा के बलाबलं—बल+अबल को जाणिय—ज्ञात्वा जानकर य—और कालेण कालं—कालेन कालम् समयानुसार विहरेज्ज—विहरेत विचरे, सीहोव—सिंह इव सिंह की तरह केवल सद्देण—शब्देन शब्द मात्र से न संतसेज्जा—न संत्रस्येत भयभीत न होवे वयजोग—वाग्योगम् वचनयोग अप्रियवचनम् को सुच्चा—श्रुत्वा सुनकर असब्भं—असभ्यम् अपशब्द वचन को न आहु—न ब्रूयात् न बोले।

मूलार्थ—मुनि राष्ट्र में यथा समय क्रियानुष्ठान करता हुआ देश में विचरे। अपने आत्मा के बल अबल को जानकर संयमानुष्ठान में प्रवृत्त होवे।

तथा केवल शब्द को सुनकर भयभीत न होवे और यदि कोई अपशब्द 'अयोग्य-वचन' बोले तबभी उनके बदले अपशब्द वचन न बोले ।

उवेहमाणो उ परिव्वएज्जा,
पियमप्पियं सव्व तितिक्खएज्जा ।
न सव्व सव्वत्थऽभिरोयएज्जा,
न यावि पूय गरहं च संजए ॥१५॥

अन्वयार्थ—'संजए—संयत' संयमी साधु 'उवेहमाणो—उपेक्षमाण' उपेक्षा करता हुआ 'परिव्वएज्जा—परिव्रजेत्' संयम मार्ग में विचरे 'पियमप्पियं—प्रियम्—अप्रियम्' प्रिय और अप्रिय 'सव्व—सर्वम्' 'तितिक्खएज्जा-तितिक्षेत्' सहन करे 'न—नहीं' और 'सव्व—सर्व' सव्वत्थ—सर्वत्र' 'अभिरोयएज्जा—अभिरोचयेत्' इच्छा लगावे 'च—और' नयावि—नचापि' और न 'पूय,गरहं—पूजा, गर्हाम्' सत्कार, निन्दा कभी न चाहे ।

मूलार्थ—संयमी साधु उपेक्षा करता हुआ संयम मार्ग में विचरे । प्रिय-अप्रिय सब को सहन करे । तथा सब पदार्थ वा सर्वस्थानों में अभिरुचि न करे कोई पूजा 'सत्कार' गर्हा, निन्दा, करे उसको भी न चाहे ।

अणेगछन्दामिह माणवेहिं,
जे भावओ संपगरेइ भिक्खू ।
भयभेरवा तत्थ उइन्ति भीमा,
दिव्वा माणुस्सा अदुवा तिरिच्छा ॥१६॥

अन्वयार्थ—'अणेगछन्दाम्—अनेकछन्दानि' अनेक प्रकार के अभिप्राय है 'इह—इस लोक मे' 'माणवेहि—मानवेषु' मनुष्य के जे—यान्' जिनको 'भावओ—भावत' भाव से 'संपगरेइ—संप्रकरोति' ग्रहण करता है । 'भिक्खू—भिक्षु' साधु 'भय भेरवा—भयभैरवा' भयोत्पादक अति भयकर 'तत्थ—तत्र' वहां पर 'उइन्ति—उद्यन्ति' उदय होते हैं 'भीमा—भीमा' अति रौद्र 'दिव्वा—दिव्या' देवसम्बन्धी 'माणुसा—मानुष्या' मनुष्य सम्बन्धी 'अदुवा—अथवा' 'तिरिच्छा—तैरश्चा' तिर्यंचसम्बन्धीकष्ट ।

मूलार्थ- इस लोक में मनुष्यो के अनेक प्रकार के अभिप्रायो को साधु

भाव से जानकर—उनपर खूब विचार करे। तथा उन्य म आये हुए भय देने वाले अनि रोग पेव मनुष्य नियन्त्रमम्बन्धी कष्टो को शान्ति स सहन करे।

परीसहा दुव्विसहा अणेगे,
सीयंति जत्था बहुकायरा नरा।
से तत्थ पत्ते न वहिज्जपडिए,
संगामसीसे इव नागराया ॥१७॥

अन्वयार्थ—'अणेग—अनेक' प्रकार के दुव्विसहा—दुर्विषहा' बाल्नाइ से सहन योग्य 'परीसहा—परिषहा के' उपस्थित होने पर 'जत्था—यत्र' जहाँ बहुकायरा नरा—बहुकातरा नरा' बहुत से कायर पुरुष सीयंति—मीदन्ति ग्लानि को प्राप्त होते हैं। 'तत्थ—तत्र' वहाँ से—स वह मुनि पत्ते—प्राप्त पडिए—पतित न वहिज्ज—नान्यथत व्यथित न हो। इव—जैसे (संगामसीसे—संग्रामशीर्षे) संग्राम में (नागराया—नागराज) गजेन्द्र नहीं घबराता।

मूलार्थ—अनेक प्रकार के दुर्जय परीषहों के उपस्थित हो जाने पर बहुत से कायर पुरुष घबरा जाते हैं। परन्तु वह समुद्रपाल मुनि संग्राम म गजेन्द्र की तरह उन घोर परीषहों के आनपर भी उनसे घबराये नहीं।

सीओसिणा दसमसगाय फासा,
आयंका विविहा फुसंति देहं।
अकुक्कुओ तत्थ अहियासएज्जा,
रयाइ खेवेज्ज पुराकडाइं ॥१८॥

अन्वयार्थ—(सीओसिणा—शीतोष्णा) शीत उष्ण (दंसमसगा—दंशमशका) डंस मच्छर (फासा—स्पर्शा) तृणादिका स्पर्श (य—और) (आयंका आतंका) आतंक घातक रोग (विविहा—विविधा) अनेक प्रकार के उनके (देहं—शरीर को) यद्यपि (फुसंति—स्पृशन्ति) स्पर्श करते हैं तथापि (अकुक्कुओ अकुत्कुच) कुत्सित शब्द न करता हुआ (तत्थ—वहाँ) (अहियासएज्जा—अधिसहेत सहन करता है (पुराकडाइं—पुराकृतानि) पूर्व में किये हुए (रयाइ—रजांसि) कर्मरज को (खवेज्ज—क्षपयेत्) क्षय करके।

मूलार्थ—समुद्र पाल मुनि शीत उष्ण, दंश, मच्छर, तृणादि का स्पर्श तथा नाना प्रकार के भयकर रोग, जो देह को स्पर्श करते हैं, उनको सहन करता हुआ और पूर्वसचित कर्मरज को क्षय करता हुआ विचरा था।

पहायराग च तहेव दोसं,
मोहं च भिक्खू सययं वियक्खणे।
मेरुव्व वाएण अकम्पमाणो,
परीसहे आयगुत्ते सहिज्जा ॥१६॥

अन्वयार्थ—(राग—रागम्) राग को च—और (तहेव—तथैव) उसी प्रकार (देस—द्वेषम्) द्वेष को (च—और) (मोह—मोह को) (वियक्खणे—विचक्षण) विद्वान् (भिक्खू—भिक्षु) (आयगुत्ते—गुप्तात्मा) साधु (वाएण—वातेन) वायु द्वारा (अकम्पमाणो—अकम्पमान) नहीं कपाया जाता हुआ (मेरुव्व—मेरु इव) मेरु पर्वत की तरह (परीसहे—परीषहान्) परीषहों को (सीहज्जा—सहेत्) सहन करे।

मूलार्थ—ज्ञानी साधु सदा ही राग, द्वेष और मोह का परित्याग करके वायु के वेग से कम्पायमान न होने वाले मेरु पर्वत की तरह आत्मरक्षक होकर परीषहों को सहन करे।

अणुन्नए नावणए महेसी,
न यावि पूयं गरिहं च संजए।
से उज्जुभावं पडिवज्ज सजए,
निव्वाणमग्गं विरए उवेइ ॥२०॥

अन्वयार्थ—(से—स) वह (महेसी—महर्षि) (अणुन्नए—अनुन्नत) उन्नत भाव से रहित (नावणए—नावनत) अवनत भाव रहित (पूय—पूजाम्) पूजा मे (गरिह—गर्हाम्) निन्दा मे (नचावि—नचापि) नही (सजए—सयत) सग न करता हुआ (उज्जुभाव- ऋजु भावम्) सरल भाव-समान भाव को (पडिवज्ज—प्रतिपद्य) ग्रहण करके (सजए—सयत) सयमी साधु (विरए—विरत) वैराग्य भाव प्राप्त कर (निव्वाणमग्ग—निर्वाणमार्गम्) मोक्ष मार्ग को (उवेइ—उपैति) प्राप्त होता है।

मूलार्थ —निन्दा प्रशंसा तथा सत्कार में उन्नत भाव नहीं निन्दा में अवनत भाव नहीं किन्तु समभाव रखता है। वह साधु विरागी बनकर मोक्ष मार्ग को प्राप्त करता है।

अरइरइसहे पहीणसंथवे,
विरए आयहिए पहाणवं ।
परमट्ठपएहिं चिट्ठई
छिन्नसोए अममे अकिंचणे ॥२१॥

अन्वयार्थ —(अरइ रइसहे) अरति रति का सहन करता है (पहीणसंथवे—प्रहीणसंस्तव) संस्तव त्यागी (विरए—विरतः) रागादि रहित (आयहिए—आत्महितः) आत्महितैषी (पहाणवं प्रधानवान) (परमट्ठपएहिं—परमार्थपदेषु) परमार्थ पदों में (छिन्नसोए अममे अकिंचणे—छिन्नशोक, अमम अकिंचन) शोक रहित अपरिग्रह होकर (चिट्ठई—तिष्ठति) रहता है।

मूलार्थ —सम्यग्भाव मुनि चिन्ता और रति को सहता हुआ गृहस्थों का संस्तव छोड़ दिया है। रागादि से रहित होकर आत्मा के हितकारी प्रधान पद का परमार्थ पदों में स्थित है। वह शोक तथा ममत्व को काटकर ममत्व से रहित अपरिग्रह हो गया है।

विवित्त लयणाइ भइज्ज ताई,
निरोवलेवाइ असंथडाइ ।
इसीहिं चिण्णाइ महायसेहिं,
काएण फासिज्ज परीसहाइं ॥२२॥

अन्वयार्थ —(ताइ—त्रायी) षट्कायरक्षक साधु (विवित्त—विविक्त) स्त्री आदि से रहित (निरोवलेवाइ—निरुपलेपानि) लेप रहित (असंथडाइ—असंस्तृतानि) बीज आदि से रहित (लयणाइ—लयनानि) (महायसेहिं—महायशोभिः) जो बड़े यशस्वी (इसीहिं—ऋषियों द्वारा (चिण्णाइ—चीर्णानि) आचरण किए गए हों (काएण—कायद्वारा) (परीसहाइ—परीषहान्) परीषहों को (फासिज्ज—स्पृशति) सहन करे।

मूलार्थ—षट्काम का रक्षक साधु महायशस्वी ऋषियो द्वारा स्वीकृत, लेपादि (लिपन पोतन तत्काल) मे तथा बीजादि मे रहित ऐसी विविक्त वसती उपाश्रय आदि का सेवन करता हुआ वहां उपस्थित होने वाले परीषहो को शरीर द्वारा सहन करे।

स नाणाणोवगए महेसी,
अणुत्तर चरिउं धम्म संचयं ।
अणुत्तरे नाणधरे जसंसी,
ओभासई सूरि एवऽतलिक्खे ॥२३॥

अन्वयार्थ—स—वह समुन्द्रपाल (महेसी—महर्षि) (णण—श्रुतज्ञान) से (नाणोवगए—ज्ञानोपगत) पदार्थो के रूप को जानकर (अणुत्तर—अद्वोय नुत्तरम्) प्रधान (धम्मसचय—धर्मसचयम्) क्षमादिधर्म का सचय (चरिउ—चरित्वा) आचरण करके (अणुत्तरे—अणुत्तर) प्रधान (नाणधरे—ज्ञानधर) केवल ज्ञान धारण करने वाला (जससी—यशस्वी) यश वाला (अतलिक्खे—अतरिक्षे) आकाश मे (सूरिएव—सूर्य की तरह) (ओभासई—अवभासते) प्रकाश करने लगा।

मूलार्थ—समुन्द्रपाल ऋषि श्रुतज्ञान के द्वारा पदार्थो के स्वरूप को जाकर और प्रधान क्षमादिधर्मो का सचय करके केवलज्ञान से उपयुक्त होकर आकाश मे प्रकाशित सूर्य की तरह अपने केवल ज्ञान से प्रकाश करने लगा।

दुविहं खवेऊण य पुण्ण पावं,
निरजणे सव्वओ विप्पमुक्के ।
तरित्ता समुद्दं व महाभवोह,
समुद्दपाले अपुणागम गए ॥२४॥

अन्वयार्थ—(दुविह—द्विविधम्) दोनो घाती और अघाती कर्मो को (खवेऊण—क्षपयित्वा) खपाकर और (पुण्णपाव—पुण्यपापम्) पुण्य पाप को क्षय करके (निरजणे—निरजन) कर्म सग रहित (सव्वओ—सर्वत) सर्व प्रकार से (विप्पमुक्के—विप्रमुक्त) मुक्त होकर (समुद्दपाल—समुद्रपाल) (समुद्देव—समुद्रइव) समुद्र की तरह (महाभवोह—महाभवौघम्) महाभवो

वे समूह को (तरित्ता—तीर्त्वा) तरकर (अपुणागम—अपुनरागम—अपुनरागमम) आवागमन से रहित स्थानको (गए—गत) चले गए।

मूलार्थ—दोनों प्रकार घाती—अघाती कर्मों का तथा पुण्य और पाप का क्षय करके कममल से रहित हुआ समुद्रपाल मुनि सब प्रकार के बंधनों से सर्वथामुक्त होकर महाभवसमुद्ररूप समुद्र को पार करके मोक्ष पद को प्राप्त हो गया।

इति समुद्दपालीय एगवीसइम अज्झयण समत्त ॥
इति समुद्रपालीयमेकविंशतितममध्ययन समाप्तम ॥

—०—

अह रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणम्
अथ रथनेमीयं द्वाविंशमध्ययनम्

सोरियपुरम्मि नयरे, आसि राया महिड्ढिए।
वसुदेव त्ति नामेणं, रायलक्खणसंजुए ॥१॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) सौर्यपुर नाम (नयरे—नगरे) नगर मे (महिड्ढिए—महर्द्धिकः) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसयुत) राज लक्षणो के सहित (वसुदेवत्ति—वसुदेव इति) वसुदेव नाम से प्रसिद्ध (राया—राजा) (आसि—आसीत्) था।

मूलार्थ—सौर्यपुर नाम के नगर मे महती समृद्धि वाला, राजलक्षणो से युक्त वसुदेव नाम का राजा राज्य करता था।

राजलक्षण—चक्र, स्वस्तिक, अकुश, छत्र, चमर, गज, अश्व, सूर्य, चन्द्रादि।

तस्स भज्जा दुवे आसी, रोहिणी देवई तहा।
तासिं दोण्हपि दो पुत्ता, इट्ठा रामकेसवा ॥२॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस वसुदेव महाराजा की (रोहिणी, देवई—रोहिणी-देवकी) नामवाली (दुवे—द्वे) दो (भज्जा—भार्ये) स्त्रिया (आसी—आस्ताम्) थी। (तासि—तयो) उन (दोण्हपि—द्वयोरपि) दोनो के (इट्ठा—इष्टौ) प्रिय (रामकेसवा—रामकेशवौ) बलराम और कृष्ण (दो-पुत्ता—द्वौ पुत्रौ) (आसी आस्ताम्) थे।

मूलार्थ—उस वसुदेव महाराजा की रोहिणी तथा देवकी दो महारानियाँ थी। उनके प्रिय बलराम और कृष्ण नाम के क्रमश दो पुत्र थे।

सोरियपुरंमि नयरे, आसि राया महिड्ढिए ।
समुद्दविजये नाम, रायलक्खणसंजुए ॥३॥

अन्वयार्थ—(सोरियपुरंमि—सौर्यपुरे) (नयरे—नगरे) सौर्यपुर नाम नगर में (महिड्ढिए—महर्द्धिक) महती ऋद्धिवाला (रायलक्खणसंजुए—राजलक्षणसंयुत) राजलक्षणों से युक्त (समुद्दविजय—समुद्रविजय) नाम—नाम का (राया—राजा) (आसि—आसीत) था ।

भावार्थ—सौर्यपुर नाम नगर में राजचिह्नों से युक्त और महती समृद्धि वाला समुद्र विजय नाम का राजा था वसुदेव तथा समुद्र विजय दोनों भाई थे ।

तस्स भज्जा सिवा नाम, तीसे पुत्तो महायसो ।
भगवं अरिट्ठनेमि त्ति, लोगनाहे दमीसरे ॥४॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस समुद्र विजय की (सिवा—शिवा) नाम की थी (भज्जा—भार्या) (तीसे—तस्याः) उसका (पुत्तो—पुत्र) पुत्र (महायसो—महायशाः) अत्यन्त यशस्वी (लोगनाहे—लोकनाथ) त्रिलोकीनाथ (दमीसरे—दमीश्वरः) जितेन्द्रिय (भगवं—भगवान्) (अरिट्ठनेमित्ति—अरिष्टनेमिरिति) अरिष्टनेमि नाम से हुआ ।

भावार्थ—समुद्र विजय राजा की शिवा नाम की रानी थी और उसका पुत्र महायशस्वी जितेन्द्रिय त्रिलोकीनाथ भगवान अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) हुआ ।

सोऽरिट्ठनेमिनामो अ, लक्खणस्सरसंजुओ ।
अट्ठसहस्सलक्खणधरो, गोयमो कालगच्छवी ॥५॥

अन्वयार्थ—(सो—वह) (अरिट्ठनेमि नामो—अरिष्टनेमि नाम) कुमार (अ—पुनः) (लक्खणस्सरसंजुओ—लक्षणस्वरसंयुत) स्वर लक्षणों से युक्त (अट्ठसहस्सलक्खणधरो—अष्टसहस्रलक्षणधर) एक हजार आठ लक्षणों का धारक (गोयमो—गौतम) गौतम गोत्र वाला (कालगच्छवी—कालच्छविः) कृष्ण कान्तिवाला था ।

मूलार्थ—अरिष्टनेमि नामक कुमार स्वर लक्षण से युक्त और एक हजार आठ लक्षणों का धारक, गौतमगोत्र का और कृष्ण कांति वाला था।

वज्जरिसहसघयणो, समचउरसो झसोयरो।
तस्स राईमई कन्न, भज्जं जायइ केसवो ॥६॥

अन्वयार्थ—(वज्जरिसहसंघयणो—वज्रर्षभसहनन) वज्रऋषभ नाराच सहनन के धारक (समचउरसो—समचतुरस्र) समचतुरस्र सस्थान और (झसो-यरो—झषोदर) मत्स्य के समान उदर वाले (तस्स—तस्य) उसके लिये (केसवो—केशव) (राईमईकन्न—राजीमतीकन्याम्) राजीमती नाम की कन्या को (भज्ज—भार्याम्) स्त्री रूप से (जायई—याचते—मगनी करता है।

मूलार्थ—वज्रऋषभ नाराच सहनन के धरने वाले, समचतुरस्रसस्थान से युक्त उस अरिष्ट नेमि कुमार के लिए राजीमती कन्या को भार्या रूप से केशव ने मगनी की।

अह सा रायवरकन्ना, सुसीला चारुपेहिणी।
सव्वलक्खणसंपन्ना, विज्जुसोआमणिप्पभा ॥७॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) (सा—वह) (रायवरकन्ना—राजवरकन्या) राजश्रेष्ठ कन्या (सुसीला—सुशीला) सुन्दर आचरण वाली (चारुपेहिणी—चारुप्रेक्षिणी) सुन्दर दिखने वाली (सव्वलक्खणसपन्ना—सर्वलक्षणसपन्ना) सर्व-लक्षणो से युक्त (विज्जुसोआतणिप्पभा—विद्युत्सौदामिनीप्रभा) अति दीप्त बिजली के सामान कान्ति वाली।

मूलार्थ—वह राजवरकन्या, सर्वलक्षणसपन्ना, अच्छे स्वभाव वाली, सुन्दर दिखने वाली, परम सुशील और प्रदीप्त बिजली, और प्रधानमणि के समान कान्ति वाली थी।

अहाह जणओ तीसे, वासुदेवं महड्ढिय।
इहागच्छउ कुमरो, जा से कन्नं ददामि हं ॥८॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) इसके बाद (तीसे—तस्या) उस राजीमती का (जणओ—जनक) पिता (महिड्ढिय—महर्द्धिकम) समृद्धिवान (वासुदेव—वासुदेव से) (जाए—याचना) (इह—यह) यहां मेरे घर (कुमरो—कुमार) (आगच्छउ—आगच्छतु) आजाय (जा—यत) जिससे (से—तस्मै) (अह—मैं) (कन्न—कन्याम) कन्या (दलामि) देता हूँ ।

सव्वोसहीहिंण्हविओ, कयकोऊयमंगलो ।
दिव्वजुयलपरिहिओ, आभरणेहिं विभूसिओ ॥९॥

अन्वयार्थ—(कयकोऊय मंगलो—कृतकौतुकमंगल) किया गया है कौतुकमंगल जिसका यह (सव्वसहीहिं—सर्वौषधिभि) सब औषधि (विभयादि) से (ण्हविओ—स्नपित) स्नान कराया गया (दिव्व—दिव्य) प्रधान (जुयल—युगल) दो वस्त्र (परिहिआ—परिहित) धारण किया (आभरणेहिं—आभरण) आभूषणों से (विभूसिओ—विभूषित) विभूषित हुआ ।

मूलार्थ—कौतुक मंगलादि से ललाट का स्पर्श । मंगल दधि दूर्वा अक्षत चन्दनादि द्वारा विधान किया गया सर्वौषधियों (विभयादि) से स्नान कराया गया और सुन्दर युगल वस्त्र पहनाया गया तथा आभूषणों से सुसज्जित किया गया ।

मत्त च गंधहत्थि च, वासुदेवस्स जिट्ठय ।
आरुढो सोहई अहिय, सिरे चूडामणी जहा ॥१०॥

अन्वयार्थ—(वासुदेवस्स—वासुदेवस्य) वासुदेव का (जिट्ठय—ज्येष्ठकम्) सबसे बड़ा (मत्त—मदमस्त) (गंधहत्थि—गंधहस्तिनम) गंधहस्ती पर (आरुढो—आरूढ) चढे हुए (अहिय—अधिकम) (सिरे—शिरसि) सिर पर (चूडामणी जहा—चूडामणि यथा) चूडामणि की तरह (सोहई—शोभते) शोभा पाता है ।

मूलार्थ—वासुदेव के मतवाले और सबसे बड़े गंध हस्ती नामक हस्ती पर सवार होकर वह नेमीकुमार सिर पर रखा हुआ चूडामणि नामक आभूषण की तरह अधिक शोभा पाता है ।

अह ऊसिएण छत्तेण चामराहि य सोहिओ ।
दसारचक्केण तओ, सव्वओ परिवारिओ ॥११॥

अन्वयार्थ —(अह अनन्तर) ऊसिएण—उच्छ्रितेन) ऊँचे (छत्तेण—छत्रेण) छत्रसे (चामराहि—चामराभ्याम्) (य—च) और चमरो से (सोहिओ—शोभित.) तओ-तत (दसारचक्केण—दशार्हचक्रेण) दशार्ह-चक्रसे (सव्वओ—सर्वत) सब ओर से (परिवारिओ—परिवारित) घिरा हुआ ।

मूलार्थ —उसके बाद ऊँचे छत्र, दो चामर और दशार्ह (समुद्र विजय आदि दस भाइयो से) चक्र समूह से सर्व प्रकार से घिरा हुआ राजकुमार विशेष सुशोभित हो रहा था ।

चउरगिणीए सेणाए, रइयाए जहक्कम ।
तुडियाण सन्निनाएणं, दिव्वे गगणफुसे ॥१२॥

अन्वयार्थ --(चउरगिणीए—चतुरगिण्या) (सेणाए—सेनया) (रइयाए—रचितया) (जहक्कम—यथा क्रमम्) क्रमानुसार (तुडियाण—तूर्याणाम्) बाजियो के (सन्निाएण—सन्निनादेन) विशेष नाद से (दिव्वेण—दिव्येन) प्रधान शब्दो से (गगणफुसे—गगनस्पृश.) आकाश का स्पर्श हो रहा था ।

मूलार्थ —उस समय कामानुसार बनायी गई चतुरगिणी सेना से तथा वादित्र के प्रधान शब्दो से आकाश व्याप्त हो रहा था ।

एयारिसीइ इड्ढीए, जुइए उत्तमाइ य ।
नियमाओ भवणाओ, निज्जाओ वण्हिपुंगवो ॥१३॥

अन्वयार्थ —(एयरिसीइ—एताद्दृश्य) इस प्रकार की (इट्ठीए ऋध्या) ऋद्धि से (वण्हिपु गवो—वृष्पिपु गव) यादव प्रधान अरिष्ट नेमि (नियगाओ—निजकात्) अपने (भवणाओ—भवनात्) भवन से (निज्जाओ—निर्यात) निकले ।

मूलार्थ —इस प्रकार की सर्वोत्तम युतियुक्त समृद्धि से घिरा हुआ यादव प्रधान भगवान अरिष्टनेमिजी अपने भवन से निकले ।

अह सो तत्थ निज्जन्तो, दिस्स पाणे भयद्दुए ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धे सुदुक्खिए ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) अनन्तर (सो—स) यह (तत्थ—तत्र) वहाँ (निज्जन्तो—नियन्) निकलता हुआ (वाडेहिं पंजरेहिं—वाटक पंजरश्च) बाड़ा और पिंजरा से (सन्निरुद्धे—सन्निरुद्धान) भय से भागते हुए (पाणे—प्राणिन) (दिस्स—दृष्ट्वा) प्राणियों को देखकर।

मूलार्थ—इसके बाद वह नेमिकुमार आगे गये तो उन्होंने बाड़ों और पिंजरों में रोके गये अत्यन्त दुःखित भय से इधर-उधर भागते हुए प्राणियों को देख कर।

जीवियन्तं तु संपत्ते, मंसट्ठा भक्खियव्वए ।
पासित्ता से महापण्णे, सारहिं इणमब्बवी ॥१५॥

अन्वयार्थ—(महापण्णे—महाप्रज्ञ) अत्यन्त बुद्धिमान (से—स) (जीवियन्त—जीवितान्तम्) (संपत्ते—समाप्तान) जीवन का अन्त होने वाला जिनका उनको (मंसट्ठा—मांसार्थम) मांस के लिए (भक्खियव्व—भक्षियतव्यान) खाने योग्य जीवों को (पासित्त—दृष्ट्वा) देखकर (सारहिं—सारथिम्) सारथि से (इण—इदम) इस वचन को (अब्बवी—अब्रवीत) बोला।

मूलार्थ—वह महाबुद्धिमान नेमिकुमार के जीवन का अन्त होने वाला तथा जो मांस के लिए रखे गये हैं उन प्राणियों को देखकर अपने सारथि से इस प्रकार बोला।

कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो ।
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धा य अच्छहिं ॥१६॥

अन्वयार्थ—(कस्स—कस्य) किसके (अट्ठा—अर्थम) लिये (इमेपाणा—इमे प्राणिन) ये प्राणी (एए—एते) ये (सव्वे—सर्वे) सब (सुहेसिणो—सुखैषिण) सुख के चाहनेवाले (वाडेहिं—वाटक) बाड़े से (पंजरेहिं—पञ्जर) पिंजरा से (सन्निरुद्धा—सन्निरुद्धा) रोके गये (अच्छहिं—तिष्ठन्ति) स्थित हैं (य—पादपूर्ति में।

मूलार्थ—ये सब सुख के चाहनेवाले प्राणी किसलिए प्राणी पिंजरे मे डाले हुए और वाडे मे स्थित है ।

अह सारही तओ भणइ, एए भद्दा उ पाणिणो ।
तुज्झ विवाहकज्जंमि, भोयावेउ वहु जणं ॥१७॥

अन्वयार्थ—अति—इसके वाद (सारही—सारथि) (तओ—तत) उस के वाद (भणइ—भणड) वोलता है (एए—एते) ये (भद्दा—भद्रा) अच्छे (पणिणो—प्राणिन) प्राणी (तुज्झ—युष्माकम्) आपके (विवाहकज्जमि) विवाह कार्य मे (वहु जण—वहुजनम्) वहुत लोगो को (भोयावेउ—भोजायितुम्) भोजन कराने के लिए ।

मूलार्थ —इसके वाद सारथिने कहा ये सब सरल प्रकृति वाले प्राणी आपके विवाह-कार्य मे वहुत से लोगो को भोजन कराने के लिए इकट्ठे किये गये है ।

सोऊण तस्स वयणं, वहुपाणिविण सण ।
चिन्तेइ से महापन्ने, साणुक्को से जिएहि ऊ ॥१८॥

अन्वयार्थ.—(तस्स—तस्य) उस सारथि के (वहुपाणिविणासण—वहुप्राणिविनाशनम्) वहुत से प्राणियो का नाश हो गया ऐसे (वयण—वचनम्) वचन को (सोच्च—श्रुत्वा) सुनकर (से—स) वे (महापन्ने—महाप्राज्ञ) महावुद्धि वाली (साणुक्कोसे—सानुक्रोश) कृपालु जिएहि—जीवेपु) जीवो का हित चिन्तक (चिन्तेइ—चिन्तयति) सोचने लगे ।

मूलार्थ —उस सारथि के वहुत से प्राणियो के विनाश सम्वन्धी वातो को सुनकर दया से पिघले हृदय वाले और महावुद्धिमान् राजकुमार सोचने लगे ।

जइ मज्झ कारणा एए हम्मति सुवहूजिया ।
नमे एय तु निस्सेस, परलोगे भविस्सई ॥ १९ ॥

अन्वयार्थ - (ज—यदि) (मज्झ—मम) मेरे (कारणा—कारणात्) कारण से (एए—एते) ये (सुबहूजिया—सुबहुजीवा) बहुत से जीव (हम्मति—हन्यन्ते) मारे जाते हैं (तु—तो) (परलोगे—परलोके) परलोक में (मे—मम) मेरे लिए (एय—एतत्) यह (निस्सेसं—निःश्रेयसम्) कल्याणकारी (न—नहीं) (भविस्सइ—भविष्यति) होगा।

मूलार्थ —यदि बहुत से जीव मेरे विवाह के कारण मारे जाते हैं तो मेरे लिए यह परलोक में कल्याणकर नहीं होगा।

सो कुण्डलाण जुयल, सत्तगं च, महायसो।
आभरणाणि य सव्वाणि सारहिस्स पणामई ॥२०

अन्वयार्थ —(सो—वह) (महायसो—महायशाः) महायशस्वी नमिनाथ जी (कुण्डलाण—कुण्डलयो) कुण्डलों का (जुयल—युगलम् दोनों और (सुत्तग—सूत्रकम्) कटि सूत्र (सव्वाणि—सर्वाणि) सब (आभरणाणि आभूषणों को (सारहिस्स—सारथये) सारथि को (पणामई—प्रणामयति) दे देते हैं।

मूलार्थ —वह महान यश वाले नमिनाथजी दोनों कुण्डल कटिसूत्र तागड़ी और अन्य सभी आभूषण सारथी को दे देते हैं।

मणपरिणामो य कओ, देवा य जहोइय समोइण्णा।
सव्विड्ढिइ सपरिसा, निक्खमण तस्स काउ गे ॥२१॥

अन्वयार्थ —(मणिपरिणामो—मनःपरिणाम) मन के परिणाम (कओ—कृत दीक्षा के लिए गये (य—और) (देवा—देवा) देवता भी (जोहिय—यथोचितम्) यथोचित रूप से (सव्विड्ढि—सर्वऋद्धया) सर्वऋद्धि से (सपरिसा—सपरिषद्) सर्वपरिषद् के साथ (तस्स—तस्य) उस भगवान के (निक्खमण—निष्क्रमणम् (काउ—कर्तुम्) करने के लिए (समोइण्णा—समवतीर्णा आ गये।

मूलार्थ —जिस समय भगवान ने दीक्षा के लिए मन के परिणाम किए उस समय देवता भी अपनी सर्वऋद्धि और परिषद् के साथ उनकी दीक्षा महोत्सव करने के लिए आगए।

देवमणुस्स परिवुडो, सिवियारयणं तओ समारूढो ।
निक्खमिय वारगाओ, रेवययंमि ठिओ भयव ॥२२॥

अन्वयार्थ —(देवमणुस्सपरिवुडो—देवमनुष्यपरिवृत) घिरे हुए (तओ—तत) उसके बाद (सिवियारयण—शिविकारत्नम्) शिविकारत्न मे (समारूढो—समारूढ) चढ़ते हुए (निक्खमिय—निष्क्रम्य) निकलकर (वारगाओ—द्वारकात) द्वारका मे (रेवययमि—रैव—तके) रैवत गिरि पर (भवय—भगवान) (ठिओ—स्थित) ।

मूलार्थ —तब देवता मनुष्य से घिरे हुए भगवान उत्तम पालकी मे विराजमान होकर रैवतक पर्वत पर जा पहुँचे ।

उज्जाण सपत्तो ओइण्णो उत्तमाउ सीयाओ ।
साहस्सीए परिवुडो, अह निक्खमई उ चित्ताहिं ॥२३॥

अन्वयार्थ —(उज्जाण—उद्यानम्) उद्यान मे (सपत्तो—समाप्त.) पहुँच कर (उत्तमाउसीयाओ—उत्तमाया शिविकाया) उत्तम पालकी से ओइण्णो—अवत्तार्ण) उतरे (साहस्सीए—सहस्त्रेण) हजारो से (परिवुडो—(परिवृत घिरे हुए (अह—अथ) इसके बाद (चित्ताहिं—चित्रानक्षत्रे) चित्रा नक्षत्र मे (निक्खमई—निष्क्रामति) दीक्षित हो गये ।

मूलार्थ —उद्यान मे पहुँच कर और सर्वश्रेष्ठ पालकी से उतर कर हजारो पुरुषो से घिरे हुए भगवान् अरिष्टनेमि ने चित्रा नक्षत्र मे श्रमण वृत्तिग्रहण किया अर्थात् दीक्षित हो गए ।

अह से सुगन्धगन्धिए, तुरिय मउअकुंचिए ।
सयमेव लुंचई केसे, पचमुट्ठीहिं समाहिओ ॥२४॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) उसके बाद (से—स) वह अरिष्टनेमि भगवान् (समाहिओ—समाहित) एकाग्रचित्त होकर (सामायिक युक्त) (सयमेव—स्वयमेव) अपनी ही (सुगन्धगन्धिए—सुगन्धगन्धिकान्) सुगन्ध द्रव्यो से वासित (सुगन्धित) (मउअ—मृदुक) कोमल और (कुचिए—कुञ्चितान्) टेढे (केसे—केशान्) बालो को (पचमुट्ठीहिं—पचमुष्टिभि) पाच मुट्ठियो से (लुच—लुञ्चति) लुचन करते हैं ।

मूलार्थ—तदनन्तर भगवान अरिष्टनेमि ने समाधियुक्त होकर स्वभाव से सुगन्धित और कोमल तथा कुटिल केशों का स्वयं ही पाँच मुष्टियों से केशलोच कर दिया अर्थात् अपने हाथ से केशों को सिर से अलग कर दिया।

वासुदेवो य णं भणई, लुत्तकेसं जिइंदियं।
इच्छियमणोरहो तुरियं पावसू तं दमीसरा ॥२५॥

अन्वयार्थ—(वासुदेव—वासुदेव) कृष्ण (य—च) और बलभद्रादि (लुत्तकेसं—लुप्तकेशम्) लुप्त केशों वाले (जिइंदियं—जितेन्द्रियम्) जितेन्द्रिय (णं—तम्) उस अरिष्टनेमि जी से (भणई—भणति) बोले कि हे (दमीसरा—दमीश्वर) मन सहित इन्द्रियों को वश में करने वाला में श्रेष्ठ। (तं—त्वम्) तू (इच्छियमणोरहं—इच्छितमनोरथम्) इच्छितमनोरथ को (तुरियं—त्वरितम्) शीघ्र (पावसु—प्राप्नुहि) प्राप्त कर।

मूलार्थ—वासुदेव ने लुप्तकेश और जितेन्द्रिय भगवान से कहा कि हे जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ तू इच्छित मनोरथ को शीघ्र ही प्राप्त कर।

नाणेणं दंसणेणं च, चरित्तेण तवेण य।
खन्तीए मुत्तीए वड्ढमाणो भवाहि य ॥२६॥

अन्वयार्थ—(नाणेण दंसणेण चरित्तेण तवेण—ज्ञानेन दर्शनेन चरित्रेण तपसा च) ज्ञान दर्शन चरित्र और तप से (खन्तीए—क्षान्त्या) क्षमा से (मुत्तीए—मुक्त्या) मुक्ति (निर्लोभिता से) (वड्ढमाणो—वर्द्धमान) बढ़ता हुआ (भवाहि—भव) रह।

मूलार्थ—हे भगवान! आप ज्ञान दर्शन चारित्र और तप क्षमा निर्लोभिता से सदा बढ़ते रहें।

एवं ते रामकेसवा, दसारा य बहूजणा।
अरिट्ठनेमिं वंदित्ता, अइगया बारगाउरिं ॥२७॥

अन्वयार्थ—(एव—इस प्रकार) (ते—वे) (रामकेसवा—रामकेशवौ) राम और केशव (दसारा—दशार्हा) यादवो का समूह (च—और) (बहुजणा=बहुजना) बहुत से लोग (अरिट्ठनेमि—अरिष्टनेमिम्) अरिष्टनेमि भगवान् को (वदित्ता—वन्दित्वा) वन्दन। करके (वारगउरि—द्वारकापुरीम्) द्वारकापुरी को (अइगया—अतिगता) लौट गये ।

मूलार्थ—इस तरह वे दोनो राम और कृष्ण, यदुवशी तथा अन्य बहुत से लोग भगवान् अरिष्टनेमि को वन्दना करके द्वारका नगरी को लौट गये ।

सोऊण रायकन्ना, पव्वज्ज सा जिणस्स उ ।
णीहासा उ निराणंदा, सोगेण उ समुच्छिया ॥२८॥

अन्वयार्थ—(सा—वह) (रायकन्ना—राजकन्या) (जिणस्स—जिनस्य) जिन भगवान् की (उ—तु) तो (पव्वज्ज—प्रव्रज्याम्) दीक्षा को (सोऊण—श्रुत्वा) सुनकर (उ—पादपूर्ति मे) (णीहासा—निर्हास्या) हँसी से रहित हो गई (निराणदा—निरानन्दा) आनन्द रहित होकर (सोगेण उ—शोकेनतु) शोक से (समच्छिया समवसृता—समूर्छिता) वेहोश हो गया ।

मूलार्थ—वह राजकन्या राजीमती जिन भगवान् की दीक्षा को सुनकर हँसी से, आनन्दसे रहित हो गई और शोक से मूर्छित हो गई ।

राईमई विचिन्तेई, धिरत्थु मम जीवियं ।
जाऽहं तेण परिच्चत्ता, सेयं पव्वइउं मम ॥२९॥

अन्वयार्थ — (राईमई—राजीमती) (विचिन्तेई—विचिन्तयति) सोचती है कि (मम मेरे) (जीविय—जीवितम्) जीवन को (धिरत्थु—धिगस्तु धिक् है) (जा—या) जो (अह—मैं) (तेण—उसके द्वारा (परिच्चत्ता—परित्यक्ता) सर्व प्रकार से छोडी गई अत. (मम—मेरा) (पव्वइउ—प्रव्रजितुम् प्रव्रज्या लेना ही (सेय—श्रेय.) कल्याणकारी है ।

मूलार्थ —राजीमती विचार करती है कि मेरे इस जीवन को धिक्कार है जो मुझे उसने भगवान नेमिनाथ ने सर्वथा त्याग कर दिया । अत मेरा दीक्षा लेना ही कल्याणकारी है ।

अह सा भमरसन्निभे, कुच्चफणगप्पसाहिए।
सयमेव लुचई केसे, धिइमतो ववस्सिया ॥३०॥

अन्वयार्थ—(अह—इसके बाद) (सा—वह राजीमती) (भमसनिभे—भ्रमरसन्निभान) भंवरा के समान काले (कुच्च—कूर्च) और (फणग—फनक) कंघा से (पसाहिए—प्रसाधितान) सवारे हुए (केसे—केशान) बालों को (धिइमती—धृतिमती) धैर्य युक्त और (ववस्सिया—व्यवसिता) शुभ विचार युक्त होकर (सयमेव—स्वयमेव) अपने आपही (लुचइ—लुञ्चति) लोच कर लिया अपने आप सिर से उखाड़ लिया।

मूलार्थ—इसके बाद धैर्ययुक्त और धार्मिक व्यवसाय वाली उस राजीमती ने ब्रुश और कंघी से सवारे हुये बालों को अपने आप ही अपने सिर से उखाड़ कर अलग कर दिया।

वासुदेवो य ण भणई, लुत्तकेस जिइदिय।
ससारसागर घोर, तर कन्ने लहु लहु ॥३१॥

अन्वयार्थ—(वासुदेवो)वासुदेव ने (लुत्तकेस—लुप्तकेशा) लुप्त केशों वाली (जिइन्दिय—जितेन्द्रिय) (ण—ताम्) उस राजीमती से (भणइ—भणति) कहा कि (कन्ने—कन्ये) हे कन्ये तू (ससारसागर—ससारसागरम) ससार रूप सागर को (लहु लहु—लघु लघु) जल्दी जल्दी (तर—तरजा) पार कर जा।

मूलार्थ—वासुदेवादि लुंचित केश वाली तथा इन्द्रियों को वश में करनेवाली राजीमती से कहते हैं कि हे कन्ये तू जल्दी ससार सागर को पार कर जा।

सा पव्वईया सन्ती, पव्वावेसी तहिं बहु।
सयण परियण चेव, सीलवन्ता बहुस्सुआ ॥३२॥

अन्वयार्थ—(सा—वह) राजीमती (सीलवन्ता—शीलवती) शीलवाली (बहुस्सुआ—बहुश्रुता) धर्मशास्त्रों को पढ़ा तथा अनुभव की हुई (पव्वईआ—प्रव्रजिता) (सती—सती) दीक्षित हुई (तहिं—तस्याम्) उस द्वारका नगरी में

(वहु —वहून्) वहुत से (सयण—स्वजनम्) स्वजनो को (च—और) (परियण—परिजनम्) सेवकादियो को (एव—निश्चयही) (पव्वोवेमी—प्रव्राजयामास) दीक्षित करने लगी ।

मूलार्थ —वह शीलमती और धर्मशास्त्रो को पढी तथा अनुगम की हुई राजीमती दीक्षित होकर उस द्वारका पुरी मे वहुत से अपने कुलवालो तथा सेवकादियो को दीक्षित करने लगी ।

गिरिं रेवतय जन्ती, वासेणोल्ला उ अन्तरा ।

वासते अंधयारम्मि, अंतो लयणस्स सा ठिया ।।३३।।

अन्वयार्थ—(रेवतय—रैवतकम्) रैवतक (गिरि—पर्वतको) (जती—यान्ति) जाती हुई (अन्तरा—वीच) आवे मार्ग मे (वासेणोल्ला—वर्पणाद्रा) वर्पा से भीगी हुई (वासते—वर्पति) वर्पा होते हुए (सा—वह) (अधयारम्मि—अधकारे) अधकारमे (लयणस्स—लयनस्य) गुफा के (अतरा—अन्तरा) भीतर (ठिया—स्थिता) ठहर गई ।

मूलार्थ—रैवत पर्वत पर जाती हुई वह (राजीमती) वर्पा से भीग गई और वर्पा होते ही अधकारमयी गुफा मे जाकर ठहर गई ।।

चीवराणि विसारंती, जहा जायत्ति पासिया ।

रहनेमी भग्गचित्तो, पच्छा दिट्ठो अ तीइवि ।।३४।।

अन्वयार्थ—(रहनेमी—रथनेमि) उस गुफा मे स्थित रथनेमि नाम मुनि (चीवराणि—वस्त्रो को) (विसारती—विस्तारयन्ती) फैलाती हुई (जहा-जायत्ति—यथा जातेति) जैसे जन्म समय विना पर्दे का शरीर रहता है उसी प्रकार नग्न शरीर वाली राजीमती को (पासिया—दृष्ट्वा) देख करके (भग्ग-चित्तो—भग्नचित्त) चित्त (भग्न-विकारयुक्त) हो गया (अ—और) (तीइ वि—तथापि) उसने भी (पच्छा—पश्चात्) पीछे (दिट्ठो—दृष्ट) उस मुनि को देखा ।

मूलार्थ—भीग हुए वस्त्रों को फैलाती हुई यथाजात-नग्न राजीमती को देखकर रथनेमि मुनि का चित्त विकारयुक्त हो गया। उस राजीमती ने भी उस मुनि को बाद में देखा।

भीया य सा तहिं दट्ठु, एगन्ते संजयं तयं।
बाहाहिं काउ संगुप्फं वेवमाणी निसीयई ॥३५॥

अन्वयार्थ—(भीया—भीता) डरी हुई (सा—वह) राजीमती (तहिं तत्र) वहां (एगन्ते—एकान्ते) एकान्त गुफा में (तयं—तकम्) उस (संजयं—संयतम्) संयमी को (दट्ठु—दृष्ट्वा) देखकर (बाहाहिं—बाहुभ्याम्) दोनों बाहुओं से (संगुप्फं—संगोपम्) स्तनादि का गुप्त (काउ—कृत्वा) करके (वेवमाणी—कम्पमाना) कांपती हुई (निसीयइ—निषीदति) बैठ गई।

भावार्थ—वहां पर एकान्त स्थान में उस संयमी को देखकर भयभीत होती हुई राजीमती अपनी भुजाओं से अपने गोपनीय अंगों को छिपाकर कांपती हुई बैठ गई॥

अह सो वि रायपुत्तो, समुद्दविजयंगओ।
भीयं पवेवियं दट्ठु, इमं वक्कमुदाहरे ॥३६॥

अन्वयार्थ—(समुद्दविजयंगओ—समुद्रविजयाङ्गज) समुद्र विजय के पुत्र (सो—स) वह (रायपुत्तो—राजपुत्र) राजपुत्र (वि—अपि) भी (भीयं—भीताम्) डरी हुई (पवेवियं—प्रवेपिताम्) कांपती हुई राजीमती को देखकर (इमं वक्कं—इमम्‌वाक्यम्) इस वाक्य को (उदाहरे—उदाहृतवान्) कहने लगा।

भावार्थ—उसके बाद समुद्रविजय के अंग से उत्पन्न हुआ वह राजपुत्र रथनेमि डरती और कांपती हुई राजीमती को देखकर इस प्रकार कहने लगा।

रहनेमी अहं भद्दे ! सुरूवे ! चारुभासिणी।
ममं भयाहि सुयणु ! न ते पीला भविस्सई ॥३७॥

अन्वयार्थ —(भद्दे—भद्रे !) हे भद्रे (अह—मैं) (रहनेमी—रथनेमि) हूँ (सुरूवे—सुरूपे) हे सुन्दर रूप वाली (चारुभासिणी—चारुभाषिणी) हे सुन्दर भाषण देने वाली (ममं—माम्) मुझको (भयाहि—भजस्व) भजो (सेवनकर) (सुयणु ! सुतने !) हे सुन्दर शरीर वाली (ते—तुभ्यम्) तेरे लिये (पीला—पीडा) (न—नही) (भविस्सइ—भविष्यति) होगा।

मूलार्थ —हे भद्रे ! मैं रथनेमि हूँ। अत हे सुन्दरि हे मनोहर-भाषिणी ! हे सुन्दर शरीर वाली ! तुम मुझको सेवन करो। तुम्हे किसी प्रकार का दुःख नही होगा।

एहि ता भुंजिमो भोए, माणुस्सं खु सुदुल्लहं।
भुत्तभोगा तओ पच्छा, जिनमग्ग चरिस्समो ॥ ३८॥

अन्वयार्थ —(एहि—इधर आओ) (ता—तावत्) पहले हम दोनो (भोए—भोगान्) भोगो को (भुंजिमो—भुञ्जीवहि) भोगें (माणुस्स—मानुष्यम्) मनुष्य-जन्म (खु—निश्चय ही) (सुदुल्लह—सुदुर्लभम्) अति कठिन है (भुत्तभोगा—भुक्तभोगी) भोगो को भोगकर (तओ पच्छा—तत पश्चात्) उसके पीछे (जिणमग्ग—जिनमार्गम्) जिनमार्ग को (चरिस्समो—ग्रहण करेंगे।

मूलार्थ—तुम इधर आओ। प्रथम हम दोनो भोगो को भोगेंगे क्योकि मनुष्य-जन्म मिलना बहुत कठिन है। अत भुक्तभोगी बनकर फिर जिन मार्ग को हम दोनो ग्रहण कर लेंगे।

दट्ठूण रहनेमिं तं, भग्गुज्जोयपराजियं।
राईमई असभंता, अप्पाण संवरे तहिं ॥३९॥

अन्वयार्थ —(भग्गुज्जोयपराजिय—भग्नोद्योगपराजितम्) संयम से चित्त चचल हो रहा था (पराजिय—पराजितम्) स्त्री परिग्रह से पराजित (त—उस रथनेमि को (दट्ठूण—दृष्ट्वा) (असभंता—असम्भ्रान्ता) निर्भय हुई राजीमती (तहिं—तत्र) वहाँ (अप्पाण—आत्मानम्) अपनी आत्मा को (शरीर को) वस्त्रो से (संवरे—समवारीत्) ढक लिया।

मूलार्थ—चचल चित्त और स्त्री परिग्रह से पराजित हुए उस रथनेमि को देखकर निर्भय हुई राजीमती ने वहाँ अपने तन को वस्त्रों से ढक लिया।

अह सा रायवरकन्ना, सुट्ठिया निममव्वए।
जाइं कुलं च शीलं च, रक्खमाणी तयं वए ॥४०॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) अनन्तर (रायवरकन्ना—राजवरकन्या) राजकन्या (सा—वह राजीमती) (नियमव्वए—नियमव्रते) नियम और व्रत में (सुट्ठिया—सुस्थिता) भली भांति स्थिर हुई (जाई कुलं शीलं—जातिम् कुलम् शीलम्) जाति कुल और शील का (रक्खमाणी—रक्षन्ती) रक्षा करती हुई (तयं—तम) उस रथनेमि को (वए—अवदत्) बोली।

मूलार्थ—तदनन्तर ग्रहण किये गये नियमों तथा शीलव्रत में भली भांति स्थित हुई वह राजकन्या—राजीमती—अपने जाति कुल और शील की रक्षा करती हुई उस रथनेमि से इस प्रकार कहने लगी।

जइसि रूवेण वेसमणो, ललिएण नलकूवरो।
तहावि ते न इच्छामि जइसि सक्खं पुरंदरो ॥४१॥

अन्वयार्थ—(जइ—यदि) तू (रूवेण—रूपेण) रूप में (वेसमणो—वैश्रवण) वैश्रवण वैश्रवण के समान (ललिएण—ललितेन) लीला आदि से (नलकूवरो—नलकूबर के समान) (सि—असि) है तथा (जइ—यदि) यदि तू (सक्खं—साक्षात्) (पुरन्दरो—इन्द्र के समान) (सि—असि) है (तहावि—तथापि) (ते—त्वाम) तुझे (न इच्छामि—नेच्छामि) नहीं चाहती।

मूलार्थ—यदि तू रूप में वैश्रवण और लीला विलास में नलकूबर के समान भी हो अधिक क्या कहूँ। यदि तू साक्षात् इन्द्र भी हो तो भी मैं तुझे नहीं चाहती हूँ।

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं।
नेच्छंति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥४२॥

अन्वयार्थ—(अगधणेकुले जाया—अगन्धने कुले जाता) अगधनकुलमे उत्पन्न हुए सर्प (दुरासदम्) कठिन (धूमकेउ—धूमकेतुम्) धूम ही है केतु-ध्वजा का जिस की ऐसी (जलिय—ज्वलितम्) प्रज्वलित (जोइ—ज्योतिषम) अग्निमे (पक्खदे—प्रस्कन्दन्ते) गिर जाते हैं किन्तु (वन्तय—वान्तम्) वमन किए हुये को (भोत्तु—भोक्तुम्) फिर खाने के लिए (नेच्छन्ति—नहीं इच्छा करते हैं।

मूलार्थ—अगन्धन कुल मे उत्पन्न हुआ सर्प, धूमकेतु (अग्नि) जो प्रज्वलित है उस मे पड़ना स्वीकार कर लेते है किन्तु मुखसे वमन की हुई वस्तु को फिर ग्रहण नही करते।

धिरत्यु तेऽजसोकामी, जो तं जीवियकारणा।
वन्तं इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे ॥४३॥

अन्वयार्थ—(अजसोकामी—अयश कामिन्) हे अयश की कामना करने वाले (ते—त्वाम्) तुमको (धिरत्यु—धिगस्तु) धिक्कार है (जो—जो (त—त्वम्) (जीवियकारणा—जीवितकारणात्) जीवन के कारण से (वन्त—वान्तम्) वमन किये हुए को (आवेउ—आपातुम्) पीने की (इच्छसि—इच्छा करता है) अत (ते—तव) तेरी (मरण—मृत्यु) (भवे—भवेत्) हो जावे इति (सेय—श्रेय) अच्छा है।

मूलार्थ—हे अयश की कमना करने वाले! तुझे धिक्कार है! जो कि तू असयत जीवन के कारण से वमन किए को फिर पीना चाहता है। इससे तो मर जाना ही अच्छा है।

अहं च भोगरायस्स, तं चासि अन्धगवण्हिणो।
मा कुले गन्धणाहोमो, सजमं निहुओ चर ॥४४॥

अन्वयार्थ—(अह—मैं राजीमती) (भोगरायस्स—भोगराजस्य) उग्रसेन की पुत्री हूँ (च—और) (त—त्वम्) तू (अन्धगवण्हिणा—अन्धकवृष्णे) समुद्र विजय का पुत्र (असि—है) (गन्धणा—गन्धनानाम्) गन्धन-कुल में उत्पन्न सर्प के समान। (मा होमो—मा भूव) हम दोनो न होवे। अत (निहुओ—निभृत) निश्चलचित होकर (सजम—सयमम्) सयम मे (चर-विचर)

मूलार्थ—मैं उग्रसेन की पुत्री हूँ और तुम समुद्र विजय के पुत्र हो। हम दोनों का गन्धन कुल के सर्पों के समान नहीं होना चाहिए। अत निश्चल होकर संयम की आराधना करो।

जइ त काहिसि भाव, जा जा दिच्छसि नारिओ।
वायाविद्धो व्व हडो, अट्ठिअप्पा भविस्ससि ॥४५॥

अन्वयार्थ—(जइ—यदि) (त—त्वम्) तू (जाजा—या या) जो जो (नारिओ—नार्य) नारियों को (दिच्छसि—द्रक्ष्यसि) देखेगा और उनपर (भाव—दुष्टविचार) (काहिसि—करिष्यसि) करेगा तो (वायाविद्धो—वाताविद्ध) वायु से हिलाया गया (हडोव्व—हड इव) हड नाम वृक्ष की तरह (अट्ठिअप्पा—अस्थितात्मा) चचल आत्मा वाला (भविस्ससि—भविष्यसि) हो जावेगा।

मूलार्थ—यदि तू उक्त प्रकार का दुष्ट विचार करेगा तो जहाँ २ पर स्त्रियाँ को देखेगा वहाँ २ वायु से हिलाए गए हड नाम के वृक्ष की तरह तू चचल आत्मा हो जावेगा अर्थात तेरी आत्मा मन के निरन्तर अस्थिर हो जायगा।

गोवालो भडवालो वा, जहा तद्दव्वणिस्सरो।
एव अणिस्सरो त पि, सामणस्स भविस्ससि ॥४६॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (गोवालो—गोपाल) गोपाल (वा—अथवा) (भडवालो—भडपाल) कोषाध्यक्ष (तद्दव्वणिस्सरो—तद्द्रव्यानीश्वर) उस द्रव्य का स्वामी नहीं होता (एव—उसी प्रकार) (तपि—त्वमपि) तू भी (सामणस्स—श्रामण्यस्य) साधु धर्म का (अणिस्सरो—नहीं अधिकारी (पि—अपि) भी (भविस्ससि—भविष्यसि) होगा।

मूलार्थ—जैसे गोपाल अथवा कोषाध्यक्ष उस द्रव्य का अधिकारी (स्वामी) नहीं होता वैसे तू भी संयम का अधिकारी नहीं बनेगा।

तीसे सो वयण सोच्चा, सजइए सुभासिय।
अकुसेण जहा नागो, धम्मे सपडिवाइओ ॥४७॥

अन्वयार्थ --(सो—स) वह रथनेमि (सजइए—संयताया) संयमशील उस राजीमती के (सुभासिय—सुभाषितम्) सुन्दर कहे गये (वयण—वचनम्) वचन को (सोच्चा—श्रुत्वा) (अकुसेण—अकुशेन) अंकुश से (नागो जहा—नागो यथा) हस्ती इव—हाथी की तरह (धम्मे—अपनी आत्मा को धर्म) धर्म मे (सपडिवाइओ—सम्प्रतिपादित) स्थिर कर दिया

मूलार्थ —रथनेमि ने संयमशीला उस राजीमती के सुन्दर कहे गये वचनो को सुनकर अंकुश द्वारा मदोन्मत्त हस्ती की तरह अपनी आत्मा को वश मे करके फिर से धर्म मे स्थिर कर दिया ।

कोहं माणं निगिण्हित्ता, माया लोह च सव्वसो ।
इंदियाइं वसे काउं, अप्पाण उपसहरे ॥४८॥

अन्वयार्थ —(कोह, माण—क्रोधम्, मानम्) क्रोध मान को (माया, लोभ—माया, और लोभ को) (निगिण्हित्त—निगृह्य) वश मे करके तथा सव्वसो—सर्वश) सब प्रकार से (इदियाइ—इन्द्रियाणि) इन्द्रियो को (वसे—वशीकृत्य) वश मे कर रथनेमि ने (अप्पाण—आत्मानाम्) (उपसहरे—उपसमाहरत्) अपने को पीछे हटा कर (धर्ममार्ग मे स्थित किया) ।

मूलार्थ —क्रोध, मान, माया, लोभ को जीत कर तथा पांच इन्द्रियो को वश मे करके उस रथनेमि ने प्रमोद की तरफ से बढी हुई आत्मा को पीछे हटाकर धर्म मे स्थिर किया ।

मणगुत्तो वयगुत्तो, कायगुत्तो जिइंदिओ ।
सामण्ण निश्चलं फासे, जावज्जीवं दढव्वओ ॥४९॥

अन्वयार्थ —(माणगुत्तो, वयगुत्तो, कायगुत्तो, जिइदिओ—मनोगुप्त. वचोगुप्त, कायगुप्त, जितेन्द्रिय.) तीनो गुप्तियो मे युक्त तथा इन्द्रियो को जीतकर और निश्चल (निश्चल स्थिरता) से (ढव्वओ—दृढव्रत) पूर्ण दृढता से (सामण्णं—श्रामण्यम्) श्रमण धर्म को (जायज्जीव—यावज्जीवम्) जीवन पर्यन्त (फासे—अप्राक्षीत्) पालन किया ।

मूलार्थ —मन वचन काया से गुप्त होकर तथा इन्द्रियों को वश में करके और पूर्ण दृढता से स्थिरता पूर्वक उसने जीवनपर्यन्त श्रमण धर्म का पालन किया ।

उग्गं तवं चरित्ताण, जाया दोण्हि वि केवली ।
सव्वं कम्मं खवित्ताण, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥५०॥

अन्वयार्थ—(दोण्हिवि—द्वावपि) दोनों (राजीमती, रथनेमि) भी (उग्गं—उग्रम) प्रधान (तवं—तप) तप (चरित्ताण—चरित्वा) करके (केवली जाया—केवलिनौ जातौ) केवली हो गये। (सव्वं कम्मं—सर्वकर्म) सम्पूर्ण कर्म को (खवित्ताण—क्षपयित्वा) क्षय करके (अणुत्तरं—अनुत्तराम्) प्रधान

मूलार्थ —कठिन तपश्चर्या करके राजीमती और रथनेमि वे दोनों ही केवली हो गये फिर सम्पूर्ण कर्म को क्षय करके मोक्षगति को प्राप्त हो गये ।

टीका—समुद्र विजय की शिव देवी के चार पुत्र हुए—१ अरिष्टनेमि २ रथनेमि ३ सत्यनेमि ४ दृढनेमि ।

एवं करेंति संबुद्धा, पंडिया पवियक्खणा ।
विणियट्टंति भोगेसु, जहा सो पुरिसोत्तमो ॥५१॥

अन्वयार्थ—(एवं—इस प्रकार) (संबुद्धा—संबुद्धा) तत्त्ववेत्ता (पंडिया—पण्डिता) पंडित (पवियक्खणा—प्रविचक्षणा) विचक्षण लोग (करेंति—कुर्वन्ति) करते हैं तथा (भोगेसु—भोगेसु) भोगों से (विणियट्टंति—विनिवर्तन्ते) विनिवृत्त हो जाते है। (जहा—यथा) जैसे (सो—स) वह (पुरिसोत्तमो—पुरुषोत्तम) (त्तिबेमि—इतिब्रवीमि) ऐसा मैं कहता हूँ।

मूलार्थ —इस प्रकार तत्त्ववेत्ता पंडित और कुशल लोग करते हैं तथा भोगों से निवृत्त हो जाते हैं। और पुरुषोत्तम वह रथनेमि निवृत्त हुआ।

इति रहनेमिज्जं बावीसइमं अज्झयणं समत्तं ।

इति रथनेमीयं द्वाविंशतितममध्ययनम् समाप्तम् ।

—०—

अह केसिगोयमिज्जं तेवीसइमं अज्झयणं
अथ केशिगौतमीयं त्रयोविंशमध्ययनम्

प्रश्नोत्तर—बाईसवें और तेईसवें अध्ययन में—क्या सबन्ध है? बाईसवें में यदि किसी कारण वश सयम में शका आदि दोषों की उत्पत्ति हो जाय तो रथनेमि की तरह सयम में फिर दृढ हो जाना चाहिए, और यथा-शक्ति दोषों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। यदि औरों को भी उक्त-शकादि दोष उत्पन्न हो जायें तो उनको दूर का शीघ्र प्रयत्न करना चाहिये जैसे केशि और गौतम।

जिणे पासित्ति नामेण, अरहा लोगपूइओ।
सबुद्धप्पा य सव्वन्नू, धम्मतित्थयरे जिणे ॥१॥

अन्वयार्थ—(जिणे—जिन) परीषहों को जीतने वाले (पासित्ति—पार्श्व इति) पार्श्व (नामेण—नामसे) (अरहा—अर्हन्) (लोगपूइओ—लोक-पूजित) (सबुद्धप्पा—सबुद्धात्मा) य—और (सव्वन्नू—सर्वज्ञ) (धम्मतित्थयरे—धर्मतीर्थंकर) धर्मरूप तीर्थ को चलाने वाले (जिणे—सर्वकर्मों को क्षय करने वाले।

मूलार्थ.—पार्श्व नाम से प्रसिद्ध परीषहों को जीतने वाला, अर्हन्, लोकपूजित, सम्बुद्धात्मा, सर्वज्ञ तथा धर्मरूप तीर्थ को चलाने वाला समस्त कर्मों को क्षय करने वाला हुआ।

तस्स लोगपदीवस्स, आसी सीसे महायसे।
केसीकुमार समणे, विज्जाचरणपारगे ॥२॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस (लोकप्रदीपस्स—लोकप्रदीपस्य) लोक के प्रकाशक पार्श्व का (सीसे—शिष्य) (महायसे—महायशाः) महान यशस्वी (विज्जाचरणपारगे—विद्या-आचरणपारगः) विद्या और चरित्र का पारगामी (केसीकुमार समणे—केशीकुमार श्रमण था।)

मूलार्थ—उस लोक के प्रकाशक पार्श्वनाथ भगवान का शिष्य *अत्यन्त यशस्वी विद्या और चरित्र में पारगामी केशीकुमार श्रमण नाम से* प्रसिद्ध एक शिष्य हुआ।

ओहिनाणसुए बुद्धे, सीससंघसमाउले।
गामाणुगाम रीयंते, सावत्थि नगरिमागए ॥३॥

अन्वयार्थ—(ओहिनाणसुए—अवधिज्ञानश्रुताभ्याम्) अवधि ज्ञान तथा श्रुतज्ञान से (बुद्धे—बुद्ध) बुद्ध हुआ (सीससंघसमाउले—शिष्यसंघसमाकुल) शिष्य समुदाय से व्याप्त (गामाणुगाम—ग्रामानुग्रामम्) एक गाँव से दूसरे गाँव (रीयंते—रीयमाण) विचरते हुए (सावत्थि—श्रावस्तीम्) श्रावस्ती नाम (नगरिं—नगरीम्) नगरी में (आगए—आगत) आ गये।

मूलार्थ—अवधिज्ञान और श्रुतज्ञान से पदार्थों के स्वरूप को जानने वाले अपने शिष्यपरिवार को साथ लेकर ग्रामानुग्राम विचरते हुए वह केशीकुमार किसी समय श्रावस्ती नगरी में पधारे।

तिन्दुयं नाम उज्जाणं, तम्मी नगरमण्डले।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥४॥

अन्वयार्थ—(तम्मी नगरमण्डले—तस्मिन् नगरमण्डले) उस नगर के आस-पास में (तिन्दुयं—तिन्दुकम्) तिन्दुक नाम के (उज्जाणं—उद्यानम्) उद्यान था (तत्थ—तत्र) उस उद्यान में (फासुए—प्रासुके) निर्दोष (सिज्जसंथारे—शय्यासंस्तारे) शय्यासंस्तार पर (वासमुवागए—वासमुपागत) ठहरने के लिए पहुँचे।

मूलार्थ—उस नगर के समीपवर्ती तिन्दुक नामक उद्यान में वे निर्दोष शय्या संस्तारक (सूखी घास, पत्थर) पर आसन लगाकर विराजमान हुए ।

अह तेणेव कालेणं, धम्मतित्थयरे जिणे ।
भगव वद्धमाणित्ति, सव्वलोगम्मि विस्सुए ॥५॥

अन्वयार्थ—(अह तेणेवकालेण—अथ तस्मिन्नेवकाले) उसी समय में (धम्मतित्थयरे—धर्मतीर्थंकर) धर्मरूप तीर्थ के रचयिता (जिणे—जिन) रागद्वेष को जीतने वाले (भगव—भगवान्) (वद्धमाणित्ति—वर्द्धमान इस नाम से) (सव्वलोगम्मि—सर्वलोके) सब लोक में (विस्सुए—विश्रुत) विशेष रूप से प्रसिद्ध थे ।

मूलार्थ—उस समय सर्वलोक में प्रसिद्ध, रागद्वेष के जीतनेवाले भगवान् वर्द्धमान धर्मतीर्थ के प्रवर्त्तक थे ।

तस्स लोगपदीवस्स, आसि सीसे महायसे ।
भगवं गोयमे नामं, विज्जाचारणपारगे ॥६॥

अन्वयार्थ—(तस्स—तस्य) उस (लोगपदीवस्स—लोकप्रदीपस्य) लोकप्रकाशकके (भगवत वर्द्धमानस्य) लोकमे प्रकाश करने वाले भगवान् वर्द्धमान का (महायसे—महायशा) महान् यशवाला (विज्जाचरणपारगे—विद्याचरणपारग) विद्या तथा चारित्र का पारगामी (भगव—भगवान्) (गोयमे नाम—गौतमो नाम) गौतम नाम से प्रसिद्ध (सीसे—शिष्य) (आसि—आसीत्) थे ।

मूलार्थ—उसलोक प्रकाशक भगवान् वर्द्धमान का महान् यशस्वी विद्या तथा चारित्र का परगामी गौतम नाम से प्रसिद्ध शिष्य थे ।

वारसंगविऊ वुद्धे, सीससघसमाउले ।
गामाणुगामं रीयन्ते, सेवि सावत्थिमागए ॥७॥

अन्वयार्थ—(वारसग—द्वादशाङम्) द्वादशाग वाणी के (विऊ—विद्) ज्ञाता (वुद्ध—वुद्ध) तत्त्वज्ञानी (सीससघसमाउले—शिष्यसघसमाकुल,)

शिष्यसंघ सहित (गामाणुगाम—ग्रामानुग्रामम्) (रीयन्त—रीयमाण) विचरते हुए (सवि—सो पि) वह भी (सावत्थिमागए—श्रावस्तीमागत) श्रावस्ती नगरी में पधारे।

भावार्थ—सम्यग्ज्ञान वाणी के ज्ञाता तथा तत्त्वज्ञानी शिष्य समुदाय के सहित एक ग्राम से दूसरे ग्राम विचरते हुए वह भी श्रावस्ती नगरी में पधारे।

कोट्ठगं नाम उज्जाणं, तम्मी नयरमण्डले।
फासुए सिज्जसंथारे, तत्थ वासमुवागए ॥८॥

अन्वयार्थ—(तम्मी—तस्मिन्, उस (नयरमण्डले—नगरमण्डले) नगर के समीपवर्ती (कोट्ठगं—कोष्ठकम्) कोष्ठक (नाम उज्जाणं—नाम उद्यानम्) नाम के उद्यान में (फासुए—प्रासुके) निर्दोष (सिज्जसंथारे—शय्या संस्तारे) वस्ती (निवास भूमि) और पाटादि पर (तत्थ—तत्र) वहाँ (वासं—वासम्) (उवागए—उपागत) निवास किया।

भावार्थ—उस नगर के समीप कोष्ठक नाम के उद्यान में शुद्ध निर्दोष वस्ती (निवास योग्य भूमि) और संस्तारक (पाटिये शिला या शुष्क तृण) पाटादि पर विराजमान हुए।

केसीकुमार समणे, गोयमे य महायसे।
उभओवि तत्थ विहरिंसु, अल्लीणा सुसमाहिया ॥६॥

अन्वयार्थ—(केसीकुमार समणे—केशीकुमार श्रमण) केशीकुमार श्रमण (य—च) और (महायसे—महायशाः) महान् यश वाले (गोयमे—गौतम) गौतम (उभओवि—उभयोरपि) दोनों भी (अल्लीणा—आलीनौ) जितेन्द्रिय (सुसमाहिया—सुसमाहितौ) समाधि से युक्त (तत्थ—तत्र) उसी श्रावस्ती नगर में (विहरिंसु—व्यहार्षाम्) विहरने लगे।

भावार्थ—महान् यशस्वी केशीकुमार श्रमण और श्री गौतम स्वामी दोनों ही उस नगरी में विचरने लगे। ये दोनों जितेन्द्रिय तथा ज्ञानादि समाधि युक्त थे।

उभओ सीससंघाण, संजयाण तवस्सिण ।
तत्थचिन्ता समुपप्पन्ना, गुणवन्ताण ताइणं ॥१०॥

अन्वयार्थ (उभओ—उभयो) दोनो के) (सीससंघाण—शिष्य-संघानाम्) शिष्य वर्ग को (संजयाण—संयतानाम्) संयतो को (तवस्सिण—तपस्विनाम्) तपस्वियो को (गुणवन्ताण—गुणवताम्) गुणियो को (ताइण—त्राविणाम्) षट् रक्षको को (तत्थ—वहाँ) चिंता-शंका (समुप्पन्न—समुत्पन्ना) उत्पन्न हो गई ।

मूलार्थ—वहाँ दोनो के शिष्य-समूह के अन्तःकरण मे शंका उत्पन्न हुई यह शिष्य-समूह संयमी, गुणी, तपस्वी, और ६ काय का रक्षक था ।

केरिसो वा इमो धम्मो, इमो धम्मो व केरिसो ।
आयारधम्मप्पणिही, इमा सा वा व केरिसो ॥११॥

अन्वयार्थ—(केरिसो—कीदृशो) कैसा था (इमो—अयम्) यह (धम्मो—धर्म) धर्म है (केरिसो—कैसा) (आयारधम्मपणिहि—आचार धर्मप्रणिधि) आचार धर्म की व्यवस्था (इमा—इयम्) यह (वा—अथवा) (सा—वह) (केरिसि—किदृशी)अस्ति ।

मूलार्थ—हमारा धर्म कैसा है, इनका धर्म कैसा है। तथा आगार धर्म की व्यवस्था (मर्यादा विधि) हमारी और इनकी कैसी है ।

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥१२॥

अन्वयार्थ—(महामुणि—महामुनिना) पार्श्व ने (चाउज्जामो—चातुर्याम) (जो—य) जो (धम्मो—धर्म) (य—च) और जो (पचसिक्खओ—पञ्च-शिक्षित) पाँच शिक्षा रूप धर्म का (वद्धमाणेण—वर्द्धमानने) वर्द्धमानने (देसिओ—देशित) उपदेश किया ।

मूलार्थ—महामुनि पार्श्वनाथ ने चातुर्याम (अहिंसादि ४ यमो-महाव्रतो का और भगवान् महावीर ने अहिंसादि, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य

अपरिग्रह इन ५ महाव्रतो का उपदेश दिया है। इन महापुरुषों के नियम सख्या म भेद क्या ?

नोट—प्राकृत के नियम म ततीया (जस महामुनिना) की जगह प्रथमा महामुणी भी होता है।

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सन्तरुत्तरो ।
एग कज्जपवन्नाण, विसेसे किं नु कारण ॥१३॥

अन्वयार्थ—(जो—य) जो (अचेलगो—अचेलक) स्वल्प और (जीर्णवस्त्र धारणरूप धर्म और (जो—य) जो (इमो—अयम) यह (सन्तरुत्तरो—सान्तरोत्तर) प्रधानवा बहुमूल्य वस्त्र रूप धर्म है (एगकज्ज—एक कार्य) (पवन्नाण—प्रपन्नयो) एक कार्य को प्राप्त हुए (विसेसे—विशेष) (किं नु—किम नु) कारण—कारण है।

मूलार्थ—अचेलक जो धर्म है और सचेलक जो धर्म है, एक कार्य को प्राप्त हुए इन दोनो म भेद क्या ? (अर्थात जब फल (मोक्ष फल) दोनो का एक है तब इनमे भेद क्या डाला गया ?)

नोट—स्थविरकल्प म अचेलक अर्थात अल्प श्वेत वस्त्र, जीर्ण श्वेत वस्त्र प्रमाणयुक्त है। जिन कल्प म अचेलक अर्थात वस्त्ररहित अर्थ है।

अह ते तत्थ सीसाण, विन्नाय पवितक्किय ।
समागमे कयमई, उभओ केसिगोयमा ॥१४॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) इसके बाद (ते—तौ) वे दोनो (तत्थ—तत्र) उस नगरी म (केसिगोयमा—केशिगौतमौ) केशि और गौतम (उभयो—उभौ) दोनो ही (सीसाण—शिष्याणाम्) शिष्यो के (पवितक्किय—प्रवितर्कितम) प्रश्नको (विन्नाय—विज्ञाय) जानकर (समागमे—मिलने पर) (कयमई—कृतमती) की है बुद्धि जिन्होने अर्थात विचार किया।

मूलार्थ—अनन्तर केशी कुमार और गौतम मुनि इन दोनो शिष्यो के इस प्रकार के शंका-मूलक तर्क को जानकर परस्पर समागम करके मिलने का विचार किया।

गोयमे पडिरुवन्नू, सीससंघसमाउले ।
जेट्ठ कुलमवेक्खन्तो तिन्दुय वणमागओ ॥१५

अन्वयार्थ—(पडिरुवन्नू—प्रतिरूपज्ञ) विनय के जानने वाले (गोयमे—गौतम) गौतम जी (सीससघसमाउले—शिष्यसघसमाकुल) शिष्य समुदाय से व्याप्त (जेट्ठं—ज्येष्ठम्) वडे (कुलम्—कुलको) (अवेक्खन्तो—अवेक्षमाण) देखते हुए (तिन्दुय—तिन्दुकम्) तिन्दुक नाम के (वण—वनम्) वनमे (आगओ—आगत) पधारे ।

मूलार्थ—विनय धर्म के जानकर गौतम मुनि वडे कुल को देखते हुए अपने शिष्य-परिवार के साथ तिन्दुक वन मे (जहाँ केशी कुमार श्रमण ठहरे हुए थे) पधारे ।

केसीकुमार समणे, गोयमं दिस्समागय ।
पडिरुव पडिवत्ति, सम्म सपडिवज्जई ॥१६॥

अन्वयार्थ—(केसीकुमारसमणे—केशी कुमार श्रमण) (आगय—आगतम्) आते हुए (गोयम—गौतमम्) गौतम को (दिस्स—दृष्ट्वा) देखकर (पडिरुव—प्रतिरूपाम्) जैसी योग्य थी वैसी (पडिवत्ति—प्रतिपत्तिम्) भक्ति को (सम्म—सम्यक्) भली प्रकार (सपडिवज्जई—सप्रतिपद्यते) ग्रहण करते हैं ।

मूलार्थ—गौतम मुनि को आते हुये देखकर केशी कुमार श्रमण ने जैसी चाहिए वैसी भक्ति-बहुमान सहित उनका स्वागत किया ।

पलाल फासुयं तत्थ, पंचमं कुसतणाणि य ।
गोयमस्स निसिज्जाए, खिप्पं संपणामए ॥१७॥

अन्वयार्थ—(पलाल—पलाम्) शाली कोद्रव के डठलसूखे (फासुय—प्रासुकम्) (तत्थ—तत्र) वहाँ पर (पचम—पाचवा) (कुसतणाणि य—कुशतृणानि) कुश और सूखतृण (घास) (खिप्प—क्षिप्रम्) शीघ्र (निसिज्जाए—निषद्यायै) बैठने के लिए (सपणामए—सप्रणामति) दिये ।

मूलार्थ—उस वन में जो निर्दोष पलाल कुश और तृणादि थे व गौतम मुनि को बैठने के लिए शीघ्र ही उपस्थित कर दिए।

केसीकुमार समणे, गोयमे य महायसे।
उभयो निसण्णा सोहन्ति, चन्दसूरसमप्पभा ॥१८॥

अन्वयार्थ—(केसीकुमार समणो—केशी कुमार श्रमण) य—और (महायस—महायशा) अतियशस्वी (गोयम—गौतम) (उभयो—उभौ) दोनों (निसण्णा—निषण्णौ) बैठे हुए (चन्दसूरसमप्पभा—चन्द्रसूर्यसमप्रभौ) चन्द्र सूर्य की कान्ति की तरह कांतिवान (सोहन्ति—शोभन्ते) शोभा पाते हैं।

मूलार्थ—केशी कुमार श्रमण और महान यशस्वी गौतम दोनों बैठे हुए अपनी कान्ति से चन्द्रमा और सूर्य की तरह शोभा पा रहे हैं।

समागया बहू तत्थ, पासंडा कोउगासिया।
गिहत्थाण अणेगाओ साहस्सीओ समागया ॥१९॥

अन्वयार्थ—(तत्थ—वहाँ) (बहू—बहव) बहुत से (पासंडा—पाखण्डा) पाखण्डी और (कोउगासिया—कौतुकाश्रिता) कुतूहली लोग तथा (अणेगाओ—अनेकानाम्) अनेक (गिहत्थाण—गृहस्थानाम्) गृहस्थों का समूह (साहस्सीओ—सहस्राणि) हजारों (समागया—समागतानि) इकट्ठे हो गये।

मूलार्थ—उस वन में बहुत से पाखण्डी और बहुत से कुतूहली लोग तथा हजारों गृहस्थ लोग दोनों महापुरुषों का शास्त्रार्थ सुनने के लिए एकत्रित हो गए।

देवदाणवगन्धव्वा, जक्खरक्खसकिन्नरा।
अदिस्साण य भूयाण, आसी तत्थ समागमो ॥२०॥

अन्वयार्थ— (देवदाणवगन्धव्वा—देवदानवगन्धर्वाः) देव दानव गन्धर्व (जक्खरक्खसकिन्नरा—यक्षराक्षसकिन्नरा) यक्ष राक्षस और किन्नर तथा (अदिस्साण—अदृश्यानाम्) अदृश्य (भूयाण—भूतानाम्) प्राणियों का (तत्थ—तत्र) वहाँ (समागमो—समागम) (आसी—आसीत्) था।

मूलार्थ—देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर तथा अदृश्य (वाण-व्यन्तर) आदि इन सब का भी उस वन मे समागम हुआ।

पुच्छामि ते महाभाग, केसी गोयममव्ववी।
तओ केसिं वुवन्तं तु, गोयमो इणमव्ववी ॥२१॥

अन्वयार्थ—(केसी—केशी) केशी कुमार (गोयम—गौतमम्) गौतम से (अव्ववी—अब्रवीत्) कहने लगे कि (हे महाभाग!—हे श्रेष्ठ भाग्य) वाले (ते—त्वाम्) आप से (पुच्छामि—पृच्छामि) पूछता हूँ। (तओ—तत) इस के बाद (गोयम—गौतम) एव (वुवन्त—ब्रुवन्तम्) बोलते हुए (तु—पुन अर्थ का वाची है) (केसि—केशिनम्) केशी मुनि से (इण—इदम्) इस प्रकार वचन (अव्ववी—अब्रवीत्) कहने लगे।

मूलार्थ—केशी कुमार गौतम मुनि से कहने लगे कि हे महाभाग! मैं आप से पूछता हूँ। केशी कुमार के ऐसा कहने पर गौतम मुनि ने इस प्रकार कहा।

पुच्छ भन्ते! जहिच्छं ते, केसिं गोयममव्ववी।
तओ केसी अणुन्नाए, गोयमं इणमव्ववी ॥२२॥

अन्वयार्थ—(भन्ते! हे भदन्त!) हे भगवन् (ते—तव) आपकी (यहीच्छ—यथेष्टम्) जैसी इच्छा (पुच्छ—पृच्छतु) पूछिये यह (गोयम—गौतम.) (केसि—केशिनम्) केशी से (अव्ववी—बोले) (तओ—तत) तत्पश्चात् (केसी—केशी) (अणुन्नाए—अनुज्ञात) आज्ञामिलने पर (गोयम—गौतमम्) गौतम से (इण—इदम्) (अव्ववी—अब्रवीत्) बोले।

मूलार्थ—हे भगवान्! आप अपनी इच्छानुसार पूछें। यह गौतम ने केशी से कहा। तदनन्तर अनुज्ञा मिलने पर गौतम से केशी मुनि ने ऐसा कहा।

चाउज्जामो य जो धम्मो, जो इमो पंचसिक्खिओ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महामुणी ॥२३॥

अन्वयार्थ—(वद्धमाणेण—वद्धमानेन) वर्द्धमान स्वामी ने (पंचसिक्खिओ—पञ्चशिक्षित) पांच शिक्षारूप (जो—य) जो (इमो—अयम) यह (धम्मो—धर्म) (देसिओ—देशित) उपदेश किया है (य—तथा) (पासेण—पार्श्वनाथेन) पार्श्वनाथ (महामुणी—महामुनिना) महामुनि ने (चाउज्जामो—चातुर्याम) चार महाव्रत रूप धर्म का (देसिओ—देशित) उपदेश दिया है।

भूलार्थ—वर्द्धमान स्वामी ने शिक्षा रूप धर्म का कथन किया है और महामुनि पार्श्वनाथ ने चातुर्याम रूप धर्म का प्रतिपादन किया है।

एगकज्जपवन्नाण, विसेसे किं नु कारण ?
धम्मे दुविहे मेहावी !, कहं विप्पच्चओ न ते ॥२४॥

अन्वयार्थ—(मेहावी ! हे मेधाविन्) (एगकज्जपवन्नाण—एककार्य प्रपन्नयो) एक कार्य (मोक्षप्राप्ति) में प्रवृत्त होनेवाला में (विसेस—विशेष) विशेष भेद होने में (किं—क्या ?) (नु—वितर्क) (कारण—कारण है?) (धम्म—धर्मे) धर्म में (दुविहे—द्विविध) दो भेद हो जाने पर (कहं—कथम्) क्या (विप्पच्चओ—विप्रत्यय) संशय (ते—आपको) (न—नहीं है) ।

भूलार्थ—हे मेधाविन एक कार्य में प्रवृत्त होने वालों के धर्म में विशेष भेद होने में क्या कारण है ? धर्म के दो भेद हो जाने पर आपको सन्देह क्यों नहीं होता ?

तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ।
पन्ना समिक्खए धम्मं, तत्तं तत्तविणिच्छियं ॥२५॥

अन्वयार्थ—(तओ—ततः) तदनन्तर (केसिं—केशिनम्) केशीकुमार के (बुवन्तं—ब्रुवन्तम्) बोलने पर उसने (गोयमो—गौतम) गौतमजी (इणं—इदम्) इस वचन को (अब्बवी—अब्रवीत) बोलने लगे (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि ही (धम्म—धर्मम) धर्म के (तत्तं—तत्त्वम्) तत्त्व को (समिक्खए—समीक्षते) अच्छी तरह देखती है जिसमें (तत्त—तत्त्वम) (जीवादिका) (विणिच्छियं—विनिश्चयम्) विनिश्चय किया जाता है।

मूलार्थ —उसके वाद इस प्रकार कहते हुए केशीकुमार के प्रति गौतम स्वामी ने कहा कि जीवादितत्त्वो का विशेप निश्चय जिसमे किया जाता है ऐसे धर्मतत्त्व को वुद्धि ही सम्यक् देख सकती है।

पुरिमा उज्जुजड्डा उ, वक्कजड्डा य पश्चिच्छमा।
मज्झिमा उज्जुपन्ना उ, तेण धम्मे दुहा कए ॥२६॥

अन्वयार्थ —(पुरिमा—पूर्वे) पहले प्रथमतीर्थंकर के मुनि (उज्ज-जड्डा—ऋृजुजडा) ऋजुजड थे (सरल होने पर भी उनमे जडता थी वे पदार्थ को कठिनाई से समझते थे। उ-जिससे) पच्छिमा—पश्चिमा) पीछे के चरमतीर्थंकर के मुनि (वक्कजड्डा—वक्रजडा.) जो शिक्षित किये जाने पर भी अनेक प्रकार के कुतर्को द्वारा पदार्थ की अवहेलना करते रहते है तथा वलपूर्वक व्यवहार करते हुए अपनी मूर्खता को चतुरता के रूप भी प्रदर्शित करते हैं। (मज्झिमा—मध्यमा) वीच के तीर्थकरो के मुनि (उज्जुपन्ना—ऋजुप्रज्ञा) वाईस तीर्थंकरो के मुनियो को शिक्षित करने मे किसी प्रकार की कठिनाई नही होती थी सकेत मात्र से समझ लेते थे। (तेण—इस प्रकार से) (धम्मे—धर्म) (दुहा—द्विधा) दो प्रकार से भेद (कए—कृत) किया गया है।

मूलार्थ —प्रथम तीर्थकर के मुनि ऋजुजड और अतिम तीर्थकर के मुनि वक्रजड होते है किन्तु मध्यतीर्थंकरो के मुनि ऋतु प्राज्ञ है। इससे ही धर्म के दो भेद किये गए।

पुरिमाए दुव्विसोज्झोउ, चरिमाएं दुरणुपालिओ।
कप्पो मज्झिमग्गाणं तु, सुविसोज्झो सुपालओ ॥२७॥

अन्वयार्थ —(पुरिमाण—पूर्वेषाम्) प्रथम तीर्थंकर के मुनियो को (कप्पो—कल्प) आचार (दुव्विज्झो—दुर्विशोध्य) आचार का समझना वहुत कठिन था कारणकि ऋजुजड—प्रज्ञा सरल और मन्द वुद्धि थे। (चरमाण—चरमाणाम्) चरम मुनियो का कल्प (आचार) (दुरणुपालओ—दुरनुपालक) इनको शिक्षित करना तो विशेप कठिन नहीं किन्तु इनके लिए आचार का पालन करना अतीव कठिन है क्योकि ये कुतर्क मे कुशल है।

(सुविसो-झा—सुविशोध्य) का बोध दना और (सुपालओ—सुपालक) उनक द्वारा पालन किया जाना य दानों ही सुलभ थ ।

मूलाथ—प्रथम तीथकर के मुनिया का कल्प(आचार) दुर्विशोध्य और चरमतीथकरा के मुनिया का कल्प दुरनुपालक किन्तु मध्यवर्ती तीथकरा क मुनिया का कल्प सुविशोध्य और सुपालक है ।
(मज्झिमाण—मध्यमगानाम) मध्यवर्ती तीथकरा क मुनियो का कल्प(आचार)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा ! ॥२८॥

अन्वयाथ--(गोयम ! ह गौतम) (त—तव) आपकी (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि (साहु—साधु) श्रष्ठ है (म—मम) मरा (इमो—अयम्) यह (ससओ—सशय) (छिन्नो—दूर हो गया) (अन्नोवि—अन्योऽपि) दूसरा भी (मज्झ—मम) मरा (ससओ—सशय) सशय है (गोयमा !—ह गौतम !) (त—उसको) (म—माम्) मुझ से (कहसु—कथय) कहो ।

मूलाथ—ह गौतम ! आप की बुद्धि श्रेष्ठ है आपन मरे सन्देह को दूर किया मरा एक और सन्देह है । ह गौतम ! आप उसको अब भी मुझ से कहो ।

अचेलगो य जो धम्मो, जो इमो सन्तरुत्तरो ।
देसिओ वद्धमाणेण, पासेण य महाजसा ॥२९॥

अन्वयाथ—(वद्धमाणेण—वर्द्धमानेन) वर्द्धमान स्वामी न (जो—य) जो (अचलगो—अचलक) अचलक (धम्मो—धम) धम (सन्तरुत्तरो—सान्तरोत्तर) प्रधान वस्त्रधारण करना (दसिओ—दशित) उपदश दिया है (पासण महामुनी—पार्श्वेन महामुनिना) पार्श्व नाथ महामुनि न सचलक धम का प्रतिपादन किया है ।

मूलाथ—ह गौतम ! वर्द्धमान स्वामी न अचलक तथा महामुनि पार्श्व नाथ जी न सचलक धम का प्रतिपादन किया है ।

एगकज्जपवन्नाण, विसेसे किं नु कारणं ।
लिंगेदुविहे मेहावी ! कह विप्पच्चओ न ते ॥२०॥

अन्वयार्थ—(एगकज्जपवन्नाण—एककार्यप्रपन्नयो) एक ही (मोक्ष) कार्य के साधन मे लगे हुये का (विसेसे—विशेषे) भेद (किं—क्या है) (नु—विनिश्चयम्) (कारण—हेतु) है (मेहावी ! हे मेधाविन्) (लिंगे, दुविहे—लिंगे, द्विविधे) वेषके दो भेद होजाने पर (कह—कथम्) क्या (ते—तव) आप को (सविच्चओ—सविप्रत्यय) सदेह (न—नही है ।

मूलार्थ—हे गौतम ! एकही मोक्ष रूप कार्य मे प्रवृत्त हुओ मे विशेषता क्या है ? मेधाविन् ! लिंग-वेष के दो भेद जाने पर क्या आपके मनमे सदेह उत्पन्न नही होता ।

केसिं एव वुवाणं तु, गोयमो इणमव्ववी ।
विन्नाणेण समागम्म, धम्म, धम्मसाहणमिच्छियं ॥३१॥

अन्वयार्थ— (गोयमो—गौमत) गौतम (केसिं—केशिनम्) केशी कुमार के (एव—इस प्रकार (वुवाण-—ब्रुवाणम्) बोलने पर (तु—अवधारण अर्थ मे है) (इण—इदम्) यह वचन (अव्ववी—अब्रवीन्) कहने लगे (विन्नाणेण—विज्ञानेन) विज्ञान से (समागम्म—समागम्य) जानकर (धम्मसाहण—धर्मसाधनम्) धर्म साधन के उपकरण (श्वेतवस्त्रादिधारण) की (इच्छिय—इप्सितम्) अनुमति दी है ।

मूलार्थ—केशी कुमार के इस प्रकार बोलने पर गौतम स्वामीने उनसे कहा कि हे भगवान् ! विज्ञान से जानकर ही धर्म साधन के उपकरण (श्वेत वस्त्रादिधारण) की आज्ञाप्रदान की है ।

पच्चयत्थं च लोगस्स, नाणाहविविगप्पण
जत्तत्थं गहणत्थ च, लोगे लिंगपओयण ॥३२॥

अन्वयार्थ— (लोगस्स—लोकस्य) लोक के (पच्चयत्व—प्रत्ययार्थम्) प्रतीति के लिए (नाणाविह—नानाविधम्) अनेक प्रकार (विगप्पण—विकल्प-

नम्) विकल्प करना (च—और) (जत्तत्थ—यात्रार्थम्) संयम रक्षा के लिए तथा निर्वाह के लिए (गहणत्थ—ग्रहणार्थम्) ज्ञानादि ग्रहण करने के लिए वा पहचान के लिए (लोगे—लोके) संसार में (लिंग पओयण—लिंगप्रयोजनम्) वेष का प्रयोजन है।

मूलार्थ—लोक में जानकारी के लिए, वर्षादि काल में संयम की रक्षा के लिए तथा संयमयात्रा के निर्वाह के लिए ज्ञानादि ग्रहण के लिए अथवा यह साधु है ऐसी पहचान के लिए लोक में वेष का प्रयोजन है।

अह भवे पइन्ना उ मोक्खसब्भूय साहणा।
नाण च दंसण चेव चरित्तं चेव निच्छए ॥३३॥

अन्वयार्थ—(अह—अथ) उपन्यास में अर्थ है (पइन्ना—प्रतिज्ञा भवेत्) (निच्छए—निश्चये) निश्चयनय में (मोक्खसब्भूयसाहणा—मोक्षसद्भूतसाधनानि) मोक्ष के सद्भूतसाधन (उ—तु) तो (नाण दंसण चरित्तं—ज्ञान दर्शन चारित्रम्) (चेव—च-पुनः एव—ही) है।

मूलार्थ—हे भगवान्! वस्तुतः तीर्थंकरों की प्रतिज्ञा तो यही है कि निश्चय में मोक्ष के सद्भूत साधन तो ज्ञान दर्शन और चारित्र रूपकी है। व्यावहारिक दृष्टि में दोनों तीर्थंकरों की वेष विषयक सम्मति समयानुसार है।

साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा! ॥३४॥

अन्वयार्थ—(गोयम! गौतम!) (ते—तव) तेरी (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि (मे—मम) मेरा (इमो—अयम) यह (संसओ—संशय) इस संशय को (छिन्नो—छिन्न) काट दिया (गोयमा!—गौतम) हे गौतम! (मज्झ—मम) मेरा (अन्नोवि—अन्योऽपि) दूसरा भी (संसओ—संशय) संशय है (तं—तम) उसको (मे—मम) मुझसे (कहसु—कथय) कहो।

मूलार्थ—हे गौतम! आपकी बुद्धि ने यह मेरा संशय काट दिया। हे गौतम! अब मेरा दूसरा संदेह है उसको भी मुझसे कहिए।

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा ।
ते यते अहिगच्छन्ति, कहं ते निज्जिया तुमे ॥३५॥

अन्वयार्थ —(गोयमा !—गौतम !) तू (अणेगाण सहस्साण—अनेकपाम्सहस्राणाम्) अनेक सहस्रों के (मज्झे—मध्ये) बीच मे (चिट्ठसि—तिष्ठसि) खडा है (ते—ते) वे शत्रु (य—च) पुन (ते—तव) तेरे को जीतने के लिए (अहिगच्छन्ति—अभिगच्छन्ति) सम्मुख आते हैं (कह—कथम्) किस प्रकार (ते—वे शत्रु) (तुमे—त्वया) तुमने (निज्जिया—निर्जिता) जीते हैं ।

मूलार्थ —हे गौतम ! तू अनेक हजारो शत्रुओ के बीच मे खडा है । वे शत्रु तुझे जीतने के लिए सामने आ रहा है तूने किस प्रकार उन शत्रुओ को जीते हैं ।

एगेजिए जिया पच, पंचजिए जिया दस ।
दसहा उ जिणित्ताण, सव्वसत्तू जिणामहं ॥३६॥

अन्वयार्थ —(एगे—एकस्मिन्) एक के (जिए—जिते) जीतने पर (पच—पञ्च) पाच (जिया—जिता) जिते गए (पचजिए—पञ्चजितेषु) पाच को जीतने पर (दस—दश) (जिया—जिता) जीते गए (दसहा—दशधा) दश प्रकार के शत्रुओ को (उ—तु) तो (जिणित्ता—जित्वा) जीत कर (ण—अकार मे) (सव्वसत्तू—सर्वशत्रु) सब शत्रुओ को (जिणाम—जयामि) जीता हूँ ।

मूलार्थ —एक के जीतने पर पाच जीते गये, पाच को जीतने पर दश जीते गए तथा दश प्रकार के शत्रुओ को जीतकर मैने सभी शत्रुओ को जीत लिया है ।

सत्तू य इइ के वुत्ते, केसी गोयमब्बवी ।
तओ केसिं बुवतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥३७॥

अन्वयार्थ —(सत्तू—शत्रव) (य—पुन) (इइ—इति) इस प्रकार (के—कौन) (वुत्ते—उक्ता) कहे गये है (केसी—केशी) (गोयम—गौतम)

गौतम से (अब्बवी—अब्रवीत) कहने लगे (तओ—ततः) तत्पश्चात (केसि—केशिनम) केशीकुमार के (वुवन—ब्रुवन्तम) बोलने पर (तु—तो) (गोयमा—गौतम) (इण—इदम) यह अब्बवी—कहने लगे।

मूलार्थ—हे गौतम ! वे शत्रु कौन कहे गये हैं ? केशीकुमार के इस कथन के बाद उनके प्रति गौतम स्वामी इस प्रकार कहने लगे।

एगप्पया अजिए सत्तू, कसाया इन्दियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ॥३८॥

अन्वयार्थ—(एगप्पा—एकात्मा) एक आत्मा (अजिए—अजित) न जीता हुआ (सत्त—शत्रुरूप है) (कसाया—कषाया) कषाय क्रोधादि (इन्द्रियाणि—इन्द्रियाणि) इन्द्रियाँ भी शत्रु हैं (ते—तान) उनको (जिणित्तु—जीत्वा) जीत कर (मुणी !—मुने !) हे महा मुनि ! (जहानायं—यथान्यायम) न्यायपूर्वक (अहं—मैं) (विहरामि—विचरता हूँ)।

मूलार्थ—हे महा मुने ! वशीभूत न किया हुआ एक आत्मा शत्रुरूप है एवं कषाय और इन्द्रियाँ भी शत्रु रूप हैं। उनको न्यायपूर्वक जीतकर मैं विचरता हूँ। (न्यायपूर्वक अर्थात् प्रथम मन को जीत कर फिर कषायादि को जीता।)

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ! ॥३९॥

अन्वयार्थ—(गोयम !—गौतम !) (ते—तेरी) (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि (साहु—साधु) ठीक है जिससे (मे—मम) मेरी (इमो—अयं) यह (संसओ—संशय) (छिन्न—कट गया है) (हे गोयम—हे गौतम !) (मज्झं—मम) मेरा अन्नोवि—अन्योऽपि) दूसरा भी (संसओ—संशयो) (तं—उसको) (मे—मेरा) (कहसु—कथय)।

मूलार्थ—हे गौतम ! आपकी बुद्धि ठीक है जिससे मेरा सन्देह दूर हो गया दूसरा भी सन्देह है उसका भी समाधान कीजिए।

दीसन्ति बहवे लोए, पासबद्धा सरीरिणो।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, कह ते विहरसि मुणी ! ॥४०॥

अन्वयार्थ—(लोए—लोके) संसार में (बहवे—बहव) बहुत से (पास-बद्धा—पाशबद्धा) भव बन्धन में बँधे हुए (सरीरिणो—शरीरिण) जीव (दीसन्ति—दृश्यन्ते) देखे जाते हैं (हे मुणी !—हे मुने !) (ते—आप) (मुक्क-पासो—मुक्तपाश) भव बंधन से रहित तथा (लहुब्भूओ—लघुभूत) वायु की तरह बिना बाधा से स्वतंत्र रूप से (कह—कथम्) कैसे (विहरसि—विचरण करते हैं।)

मूलार्थ—हे मुने !—लोक में बहुत से जीव पाश से बँधे हुए देखे जाते हैं। परंतु तुम पाश से मुक्त लघुभूत (अप्रतिबद्ध) स्वतंत्र कैसे विचरते हो।

ते पासे सव्वसो छित्ता, निहन्तूण उवायओ।
मुक्कपासो लहुब्भूओ, विहरामि अहं मुणी ॥४१॥

अन्वयार्थ—(हे मुणी !—हे मुने !) (ते—तान्) उन (पासे—पाशान्) पाशों को (सव्वसो—सर्वश) भली-भाँति (छित्ता—छित्त्वा) काट कर (उवायओ—उपायत) उपाय से (निहन्तूण—निहत्य) नष्ट करके (अहं) मैं (मुक्कपासो—मुक्तपाश) बंधन रहित (लहुब्भूओ—लघुभूत) अप्रतिबद्ध (विहरामि—विचरताहूँ)।

मूलार्थ—हे मुने ! मैं उन बन्धनों को सब तरह से काट कर तथा उपाय से विनष्ट कर बंधन रहित स्वतंत्र होकर विचरता हूँ।

पासा य इइ के वुत्ता, केसी गोयममब्बवी।
केसिमेवं बुवन्तं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥४२॥

अन्वयार्थ—(पासा—पाशा) य—और (के—कौन) (वुत्ता—उक्ता) कहे गये हैं (इइ—इति) ऐसा (केसी—केशी) केशी (गोयम—गौतमम्) गौतम से (अब्बवी—बोले) (केसिं—केशिनम्) केशी कुमार के (एव—इस प्रकार) (बुवन्त—ब्रुवन्तम्) कहने पर उन से (गोयम—गौतम जी) (इण—इदम्) इस प्रकार (अब्बवी—अब्रवीत्) बोले।

मूलार्थ— वे पाश कौन से हैं ? इस प्रकार केशी कुमार के वचन पर गौतम स्वामी कहने लगे।

रागद्दोमादओ तिव्वा, नेहपासा भयंकरा।
ते छिन्दित्ता जहानायं, विहरामि जहक्कम ॥४३॥

अन्वयार्थ—(रागद्दोसादओ—रागद्वेषादय) रागद्वेषादि (तिव्वा—तीव्रा) तीव्र (नेहपासा—स्नेहपाशा) (भयंकरा—भयंकर हैं) (ते—तान्) उनको (छिन्दित्ता—छित्वा) काट कर (जहानायं—यथान्यायम्) पहले मन को उसके बाद क्रमशः इन्द्रियों को वश में कर (जहक्कम—यथाक्रमम) शान्तिपूर्वक (विहरामि—विचरता हूँ।

मूलार्थ—हे भगवान ! रागद्वेषादि और तीव्र स्नेह रूप बंधन बड़े भयंकर हैं इन को यथान्याय छेदन करके मैं विचरता हूँ।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो।
अन्नोवि संसओ मज्झं, तं मे कहसु गोयमा ॥४४॥

अन्वयार्थ—मूलार्थ पूर्ववत् है

अन्तोहिअयसंभूया, लया चिट्ठइ गोयमा।
फलेइ विसभक्खीणि, स उ उद्धरिया कहं ॥४५॥

अन्वयार्थ—(गोयमा ! हे गौतम !)(अन्तो—अन्त) भीतर (हिअयसंभूया—हृदयसंभूता) हृदय में उत्पन्न हुई (लया—लता) (चिट्ठइ—तिष्ठति) ठहरती है (फलइ—फलति) फल देती है (विसभक्खीणि—विषभक्ष्याणि) विषफलों का (स—वह) (उ—फिर) (कहं—किस प्रकार (स—वह) आप ने उस (उद्धरिया—उद्धृता) उखाड़ी—उखाड़ा है।

मूलार्थ—हे गौतम ! हृदय के भीतर उत्पन्न हुई लता उसी स्थान पर ठहरता है जिसका फल विष के समान (परिणाम में दारुण है)। आपने उस लता को कैसे उखाड़ा ?

तं लयं सव्वसो छित्ता, उद्धरित्ता समूलियं
विहरामि जहानायं, मुक्कोमि विसभक्खणं ॥४६॥

अन्वयार्थ—(त—ताम्) उस (लय—लताम्) लता को (सव्वसो—सर्वशः) सर्व प्रकार से (छित्ता—छित्त्वा) काट कर तथा (समूलियं—समूलिकाम्) जड़ सहित (उद्धरित्ता—उद्धृत्य) उखाड़ कर (जहान्नायं—यथान्यायम्) मैं विसभक्खण—विषभक्षणात्) विष खाने से (मुक्कोमि—मुक्तोऽस्मि) मुक्त हो गया हूँ।

मूलार्थ—मैंने उस लता को सर्व प्रकार से छेदन तथा खण्ड-खण्ड करके मूल सहित उखाड़ कर फेंक दिया है। अत मैं न्यायपूर्वक विचरता हूँ और विषरूप फलों के खाने से मुक्त हो गया हूँ। विषभक्खाण में पञ्चमी के स्थान में प्रथमा है।

लया य इइ का वुत्ता, केसी गोयमब्बवी।
केसिमेवं बुवंत तु, गोयमो इणमब्बवी। ४७॥

अन्वयार्थ—(लया—लता) (का—कौन) सी (वुत्ता—उक्ता) कही गई है (इइ—इति) इस प्रकार (केसी—केशी कुमार) (गोयम—गौतमम्) गौतम से (अब्बवी—कहने) लगे (य—और) (तु—तदनन्तरम्) (बुवन्त—ब्रुवन्तम्) बोलते हुए (केसिं—केशिनम्) केसी कुमार के प्रति (गोयमो—गौतम) (इण—इदम्) यह (अब्बवी—अब्रवीत्) कहने लगे।

मूलार्थ—हे गौतम! लता कौन सी कही गई है? इस प्रकार केशी कुमार के कहने पर उसके प्रति गौतम स्वामी ने इस प्रकार कहा।

भवतण्हा लया वुत्ता, भीमा भीमफलोदया।
तमुच्छित्तु जहानायं, विहरामि महामुणी! ॥४८॥

अन्वयार्थ—(महामुणी!—महामुने!) (भवतण्हा—भवतृष्णा) (लया—लता) वुत्ता—कही गई है जो (भीमा—भयकर) (भीमफलोदया—भयकर फलो को देनेवाली है (त—ताम्) उसको (जहानायं—न्यायपूर्वक) (उच्छित्तु—उच्छिद्य) उच्छेदन करके (विहरामि—विचरण करता हूँ)।

मूलार्थ—हे महा मुने! ससार में तृष्णारूप लता कही गई है जो भयकर फलों देनेवाली है। उसको न्यायपूर्वक काट कर मैं विचरता हूँ।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा ! ॥४९॥

अन्वयार्थ और मूलार्थ पूर्ववत है ।

सपज्जलिया घोरा, अग्गी चिट्ठइ गोयमा !
जे डहति सरीरत्था, कह विज्झाविया तुमे ॥ ५० ॥

अन्वयार्थ —(गोयमा ! हे गौतम !) (सपज्जलिया—सप्रज्वलिता) सप्रज्वलित—(खूब धधकती) (घोरा—भयकर) (अग्गी—अग्नय) अग्नय (चिट्ठइ—तिष्ठन्ति) ठहरती हैं (जे—य) जो (सरीरत्था—शरीरस्था) शरीर म रहनी हुई शरीर को (डहति—दहति) (भस्म करती हैं) (तुमे—त्वया) तूने [कह—कस] [विज्झाविया—विध्यापित] बुझाई ।

मूलार्थ—हे गौतम ! शरीर म जो अग्नियाँ ठहरी हुई हैं और जो खूब धधक रहा हैं । अतएव घोर प्रचड तथा शरीर को भस्म करनेवाली हैं । उनको आपने कैसे शान्त किया ? (अर्थात उनको आपने कैसे बुझाई ?)

महामेहप्पसूयाओ, गिज्झ वारि जलुत्तम ।
सिंचामि सयय ते उ, सित्ता नो डहन्ति मे ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ—(महामेहप्पसूयाओ—महामेघप्रसूतात्) महामेघ से उत्पन्न (जलुत्तम—जलोत्तमम्) जलों म उत्तम (वारि—जलको) (गिज्झ—गृहीत्वा) लेकर (सयय—सततम) सदा—उन अग्नियों को (सिंचामि—सींचता रहता हूँ । अत (सित्ता—सिक्ता) सींची गई वे (मे—माम्) मुझे (आत्मगुणों को) (नो डहन्ति—न दहन्ति) ।

मूलार्थ—महामेघ से उत्पन्न उत्तम और पवित्र जल को लेकर उन अग्नियों को सदा सींचता रहता हूँ । अत सिंचन की गई वे अग्नियाँ मेरे आत्मगुणों को नहीं जलातीं ।

अग्गी य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसिं बुवत तु, गोयमो इणमब्बवी ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ—अग्गी—(अग्नय) अग्नियां (य—और) (के—कौनसी) (वुत्ते—उक्ता) कही गई—है (इइ—इति) इस प्रकार (केसी—केशीकुमार) (गोयम—गौतमम्) गौतम—के प्रति (अव्ववी—कहने) लगे (तओ—तत) तदन्तर (केसिं—केशिनम्) केशीकुमार के प्रति (गोयमो—गौतमस्वामी) (इण—इदम्) यह वचन (अव्ववी—कहने) लगे।

मूलार्थ—हे गौतम ! अग्नियां कौनसी कही गई है ? (महामेघ कौनसा और पवित्र जल किसका नाम है) इस प्रकार केशीकुमार के कहने पर गौतम स्वामी ने उनसे इस प्रकार कहा।

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुयसीलतवो जल ।
सुयधाराभिहया सन्ता, भिन्ना हु न डहंति मे ॥५३॥

अन्वयार्थ—(कसाया—कषाया) क्रोधादि चार कषाय (अग्गिणो—अग्नय) अग्नियाँ (वुत्ता—उक्ता) कही गयी हैं (सुयसीलतवो—श्रुतशीलतप) श्रुत (ज्ञान) शील (५ महाव्रत) रूप, तप—१२ तप (जल—जल) है (सुयधाराभिहया—श्रुतधाराभिहता) श्रुतधारा से ताडित किये जाने पर (भिन्ना-भिन्ना) अलग २ (सन्ता—सन्त) की गई अग्नियाँ (हु—खलु) निश्चय (मे—माम्) मुझे (नडहन्ति—नडहन्ति) नही जलाती है।

मूलार्थ—हे मुने ! (क्रोध, मान, माया, लोभ) रूप ४ कषाय अग्नियाँ है। श्रुत (ज्ञान) शील(५ महाव्रत) (१२ प्रकार का तप) रूप जल कहा जाता है तथा श्रुत रूप जलधारा से ताडित किये जाने पर भेदन की गई वे अग्नियाँ मुझे नही जलाती।

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ।
अन्नोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा ! ॥५४॥

अन्वयार्थ और मूलार्थ पूर्ववत् है।

अयं साहसिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई ।
जंसि गोयम ! आरूढो कहं तेण न हीरसि ? ॥५५॥

अन्वयार्थ—(जय—यह) (साहसिओ—साहसिक) (भीमा—बलवान्) (दुट्ठस्सा—दुष्टाश्व) दुष्ट घोडा (परिधावइ—परिधावति) सब प्रकार से दौडता है। (हे गोयम ! हे गौतम !) (जंसि—यस्मिन्) जिस पर मैं (आरूढो—चढ़ा हुआ हूँ। (तेण—उस) अश्व द्वारा (वह—वयम्) न (हीरसि—ह्रियसे) उन्मार्ग में क्यों नहीं लाया गया।

मूलार्थ—हे गौतम ! यह साहसिक और भीम दुष्ट घोड़ा चारों ओर भाग रहा है। उस पर चढ़े हुए आप उसके द्वारा कम उन्मार्ग में नहीं ले जाए गये ? अर्थात् वह घोडा आपको कुमार्ग में क्यों नहीं ले गया ?

पहावन्तं निगिण्हामि, सुयरस्सी समाहियं।
न मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जई ॥५६॥

अन्वयार्थ—(पहावन्तं—प्रधावन्तम्) भागते हुए (सुयरस्सी—श्रुतरश्मि) श्रुतरूपी लगाम द्वारा (समाहियं—समाहितम्) बंधे हुए घोड़े को (निगिण्हामि—निगृह्णामि) पकड़ता हूँ। अतः (मे—मेरा) अश्व (उम्मग्गं—उन्मार्गम्) कुमार्ग पर (न गच्छति नहीं जाता है)। (च—पुनः) (मग्गं—सुमार्गम्) को (पडिवज्जई—प्रतिपद्यते—ग्रहण करता है।

मूलार्थ—हे मुने ! भागते हुए दुष्ट घोड़े को पकड़ कर मैं श्रुतरूप लगाम से बांध कर रखता हूँ। अतः मेरा घोड़ा उन्मार्ग पर नहीं जाता बल्कि

अस्से य इइ वुत्ते के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥५७॥

अन्वयार्थ—(अस्स—अश्व) य—च (के—क) कौन (वुत्ते—उक्त) कहा गया है (इइ—इति) इस प्रकार (इसका भावार्थ प्रथम आई गाथाओं के समान है।

मूलार्थ—हे गौतम ! आप अश्व किसको कहते हैं ? केशी कुमार के इस वचन को सुनकर गौतम स्वामी ने उनके प्रति इस प्रकार कहा।

मणो साहसिओ भीमो दुट्ठस्सो परिधावई।
तं सम्मं तु निगिण्हामि धम्मसिक्खाइ कन्थगं ॥५८॥

अन्वयार्थ— (मणो—मन) (साहस्सिओ—साहसिक) (भीमो—रौद्र) (दुट्ठस्सो—दुष्टाश्व) दुष्ट अश्व (परिधावई—परिधावति) चारो ओर भागता है। (त—उसको) (सम्म—सम्यक्) भली प्रकार से (धम्मसिक्खाइ—धर्मशिक्षया) धर्म शिक्षाके द्वारा (कन्थग—कन्थकम्) जाति मान घोडे की तरह (निगिण्हामि—निगृह्णामि) वश मे करता हूँ।

मूलार्थ— हे मुने ! यह मन ही साहसिक और (रौद्र दुष्टाश्व है जो कि चारो ओर भागता है। मैं उसको कन्थक जाति मान अश्व की तरह धर्म शिक्षा द्वारा वश मे करता हूँ।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो।
अन्नोवि ससओ मज्झ त मे कहसु गोयमा ॥५९॥

अन्वयार्थ और मूलार्थ पूर्ववत्

कुप्पहा बहवे लोए, जेंसि नासन्ति जन्तवो।
उद्धाणे कह वट्टन्तो, तं न नाससि गोयमा ! ॥६०॥

अन्वयार्थ —(लोए—लोके) ससार मे (बहवे—बहव) बहुत से (कुप्पहा—कुपथा) कुमार्ग हैं (जसि—यैं) जिनसे (जन्तवो—जीवा) जीव (नासन्ति—नाश पाते हैं (त—त्वम्) तुम (अद्धाणे—अध्वनि) मार्ग मे (कह —कथम् कैसे) (वट्टन्तो—वर्तमान) चलते हुए (गोयमा ! हे गौतम !) (न-न नश्यसि) नाश को प्राप्त नही होते हैं।

मूलार्थ —हे गौतम ! लोक मे ऐसे बहुत कुमार्ग है जिन पर चलने से जीव उन्मार्ग से पतित हो जाते हैं परन्तु आप चलते हुए उसमे भ्रष्ट क्यो नही होते ?

जे य मग्गेण गच्छन्ति, जे य उम्मग्ग पट्ठिया।
ते सव्वे वेइया मज्झं, तो न नस्सामह मुणी ! ॥६१॥

अन्वयार्थ —(हे मुणी ! हे मुने) हे मुने ! जो (य+और) (मग्गेण-मार्गाणि)(गच्छन्ति—जाते हैं) य—और (जे—ये(जो)उम्मग—उन्मार्गम्) कुमा-

ग पर (पट्टया—प्रस्थिता) चल रहे हैं (त—व)(स त्र—सर्वे) सब (मज्य—मया) मुय से (वइया—विदिता) जाने गय हैं (तो—तस्मात) (अह—मैं) (नस्मामि—नश्यामि) सन्माग से च्युत नहा होता हूँ ।

मूलाथ—हे मुन ! जो सन्माग स जाते हैं और जो उन्माग पर प्रस्थान कर रहे हैं उन सब को मैं जानता हूँ । अत मैं सन्माग से च्युत नहा होता ।

मग्गे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी ।
तओ केसि बुवन्त तु, गोयमो इणमब्बवी ॥६२॥

अन्वयाथ—[के—क] कौनसा [मग्गा—माग] रास्ता [वुत्ते—उक्त] बताया गया है । इत्यादि समग्र पूववत् गाथा की व्याख्या की तरह जानना ।

मूलाथ—हे गौतम ! वह सुमाग और कुमाग क्या है ? इत्यादि प्रथमके मूलाथ स जानना ।

कुप्पवयगपासण्डी, सव्वे उम्मग्गपट्ठिया ।
सम्मग्ग तु जिणक्खाय, एस मग्गो हि उत्तमे ॥६३॥

अन्वयाथ—[कुप्पवयण—कुप्रवचन के माननवाले [पासण्डी—पाखण्डी लाग [सव्वे—सर्वे] सभी [उम्मग्गपट्ठिया—उनमागप्रस्थिता] उन्माग में चलते हैं [सम्मग्ग—सन्माग] सन्माग तु—तो [जिणक्खाय—जिनाख्यातम] जिनदेव भाषित [एस—एष] यह [मग्ग—माग] है [हि—निश्चय से] तु—तो [उत्तमे —उत्तम] है ।

मूलाथ—कुज्ञानवादी सभी पाखण्डी लोग कुमाग पर चलते हैं । सन्माग तो जिन देव का वचन है और यही उत्तम माग है ।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा ! ॥६४॥

पूववत् अन्वयाथ—मूलाथ है ।

महाउदगवेगेण, वुज्झमाणाण पाणिण ।
सरण गई पइट्ठा य, दीव क मन्नसि ? मुणी ! ॥६५॥

अन्वयार्थ—[हे मुणी—हे मुने !] [महाउदगवेगेण—महोदकवेगेन] महान् उदक के वेग से [वुज्झमाणाण—उह्यमनानाम्] डूबते हुए [पाणिण—प्राणिनाम्] अल्प शक्तिवाले प्राणियो को [सरण—शरणम्] शरण रूप [गइ—गतिम्] गतिरूप और [पइट्ठ—प्रतिष्ठाम्] प्रतिष्ठारूप [दीव—द्वीपम्] द्वीप [क—कौनसा] मन्नसि (मन्यसे) मानते हो ?

मूलार्थ—हे मुने ! महान् जल के वेग मे वहते हुए अल्पसत्ववाले प्राणियो को शरणागति और प्रतिष्ठा रूप द्वीप आप कौन सा मानते हो ?

अत्थि एगो महादीवो, वारिमज्झे महालओ ।
महाउदगवेगस्स, गई तत्थ न विज्जई ॥६६॥

अन्वयार्थ—[वारिमज्झे—वारिमध्ये] समुद्र के बीच मे [एगो—एक] [महादीवो—महाद्वीप] [अत्थि—अस्ति] है वह [महालओ—महालय.] अधिक विस्तार वाला है । [महाउदवेगस्स—महोदकवेगस्य] जल के महान् वेग की [तत्थ—तत्र] वहाँ [गई—गति] [न विज्जई—न विद्यते] नही है ।

मूलार्थ—समुद्र के बीच मे एक महाद्वीप है । वह वडे विस्तार वाला है । जल के महान् वेग की वहाँ गति नही है ।

दीवे य इइ के वुत्ते, केसी गोयममव्ववी ।
तओ केसि वुवत तु, गोयमो इणमव्ववी ॥६७॥

अन्वयार्थ—[दीवे—द्वीप] य—और [के—क] कौनसा [वुत्ते—उक्त] कहा गया है [इइ—इति] ऐसा [केसी—केशी कुमारने [गोयम—गौतमम्] गौतम के प्रति [अव्ववी—अब्रवीत्] वोले इत्यादि सर्व पूर्ववत् जानना ।

मूलार्थ—हे गौतम ! वह महाद्वीप कौनसा कहा गया है । इस प्रकार केशी कुमार के कहने पर गौतम स्वामी इस प्रकार वोले .

जरामरणवेगेणं, वुज्जमाणाण पाणिण ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ॥६८॥

अन्वयार्थ—[जरामरणवगेण—जरामरणवगेन] जरामरण के वेग में [वुज्झमाणाण—उह्यमानानाम] डूबते हुए [पाणिण—प्राणिनाम] प्राणियों का [धम्मा—धर्म] धर्म ही [दीवो—द्वीप है [पइट्ठा—प्रतिष्ठा] प्रतिष्ठान है [य—और] [गई—गतिश्च है] [शरण—शरणभूत है] [उत्तम—उत्तम है]

मूलार्थ—जरा मरण के वेग से डूबते हुए प्राणियों के लिए धर्म द्वीप प्रतिष्ठान (आधार) है और उसमें जाना उत्तम शरण रूप है।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो।
अन्नोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु, गोयमा ॥६६॥

इस गाथा का अन्वयार्थ और मूलार्थ पहले कर दिया गया है।

अण्णवसि महोहसि, नावा विपरिधावई।
जसि गोयममारूढो, कह पार गमिस्ससि ॥७०॥

अन्वयार्थ—[महोहसि—महौघे] महा प्रवाह वाले [अण्णवसि—अर्णव] समुद्र में [नावा—नौ] नौका भी [विपरिधावई—विपरिधावति] विपरीत रूप से चारों ओर भाग रही है। [जसि—यस्याम] जिस पर [आरूढो—आरूढः] [गोयम !—गौतम !] तू [कह—कथम] कैसे [पार—पारतो [गमिस्ससि—गमिष्यसि] प्राप्त होगा ?

मूलार्थ—महाप्रवाह वाले समुद्र में एक नाव विपरीत रूप से भाग रही है। जिस पर आप आरूढ-सवार हो रहे हैं तो फिर आप कैसे पार जा सकोगे ?

जा उ अस्साविणी नावा, नसा पारस्स गामिणी।
जा निरस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी ॥७१॥

अन्वयार्थ—(जा—या) जो (उ—तु) तो (अस्साविणी—अस्राविणी) छिद्र सहित (नावा—नौका है) (सा—वह) (पारस्स—पारस्य) पार को गामिनी—जानेवाली) (न—नहीं) है। (जा—जो) (उ—तु) तो (निरस्साविणी—निरास्राविणी) छिद्र रहित (नावा—नौ) नौका है (सा उ—सा तु) वह तो (पारस्स—पारका) (गामिणी—जानेवाली) है।

मूलार्थ—जो छिद्र सहित नाव है वह पार जाने वाली नही है । जो तो विना छेद की है वह तो निश्चय पार पहुँचाने वाली है ।

नावा य इइ का वुत्ता, केसी गोयममव्ववी ।
तओ केसि बुवंतं तु, गोयमो इणमव्ववी ॥७२॥

अन्वयार्थ—(नावा—नौ) य—च (का—कौनसी) (वुत्ता—उक्ता) कही गई है, (इइ—इति) ऐसा वचन (केसी—केशी कुमार) (गोयम—गौतमम्) गौतमस्वामी से (अव्ववी—अव्रवीत्) वोले । इत्यादि सब पदार्थ पूर्ववत् जानना ।

मूलार्थ—वह नौका कौनमी कही गई है इस प्रकार केसी कुमार ने गौतम स्वामी से कहा । इत्यादि पूर्ववत् अर्थ जानना ।

सरीरमाहु नावत्ति, जीवो वुच्चई नाविओ ।
संसारो अण्णवो वुत्तो, ज तरंति महेसिणो ॥७३॥

अन्वयार्थ—(सरीर—शरीरम्) शरीर को (नाव—नौ) नौका (त्ति—इति) ऐसा (आहु—आहु) तीर्थंकर देव कहते है (जीवो—जीव) जीव को नाविओ—नाविक) (वुच्चइ—उच्यते) कहा जाता है (ससारो—ससार) ससार को (अण्णवो—अर्णव) समुद्र (वुत्तो—उक्त) कहा गया है (ज-—यम्) जिस समुद्र को (महेसिणो—महर्षय) महर्षि लोग (तरति—तैर जाते हैं ।

मूलार्थ—तीर्थंकर देव ने इस शरीर को नौका के समान कहा है और जीव को नाविक कहा है। यह ससार ही समुद्र है जिसे महर्षि लोग पारकर जाते हैं ।

साहु गोयम ! पन्ना ते, छिन्नो मे ससओ इमो ।
अन्नोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा ॥७४॥

इस गाथा का अन्वयार्थ-मूलार्थ पूर्ववत् जानना

अंधयारे तमे घोरे, चिट्ठ पाणिणो बहू ।
को करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगम्मि पाणिणं ॥७५॥

अन्वयार्थ—(बहू—बहव) बहुत से (पाणिणो—प्राणिन) प्राणी घोरे तम अन्धयारे—घोर तमसि अन्धकारे) घोर तमरूप अन्धकार में (चिट्ठन्ति—तिष्ठन्ति) ठहरते हैं। (सव्वलोगम्मि—सर्वलोके) सब लोक में (पाणिण—प्राणिनाम्) प्राणियों के लिए (को—क) कौन (उज्जोय—उद्योतम्) प्रकाश (करिस्सइ—करिष्यति) करेगा।

मूलार्थ—हे गौतम! बहुत से प्राणी घोर अन्धकार में स्थित हैं। इन सब प्राणियों को लोक में कौन प्रकाश देता है?

उग्गओ विमलो भाणू, सव्वलोयपभंकरो।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगम्मि पाणिणं ॥७६॥

अन्वयार्थ—(सव्वलोयपभंकरो—सर्वलोकप्रभाकर) सब लोक में प्रकाश करने वाला (विमलो भाणू—विमलोभानु) निर्मल (मलरहित) सूर्य (उग्गओ—उद्गत) उदय हुआ। (सो—वह ही) (सव्वलोगम्मि—सर्वलोक में) (पाणिणं—प्राणिनाम्) प्राणियों को (उज्जोयं—उद्योतम्) प्रकाश को (करिस्सइ—करिष्यति) करेगा।

मूलार्थ—हे भगवान लोक भर में प्रकाश करने वाला निर्मल सूर्य उदय हुआ है वही इस संसार में सब जीवों को प्रकाशित करेगा।

भाणू अ इइ के वुत्ते, केसी गोयममब्बवी
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥७७॥

इस गाथा का अन्वयार्थ मूलार्थ पूर्ववत् जानना।

उग्गओ खीणसंसारो, सव्वण्णू जिणभक्खरो।
सो करिस्सइ उज्जोयं, सव्वलोगम्मि पाणिणं ॥७८॥

अन्वयार्थ—(खीणसंसारो—क्षीणसंसार) क्षीण किया है संसार को जिसने ऐसा (सव्वण्णू—सर्वज्ञ) (जिणभक्खरो—जिनभास्कर) सर्वज्ञ तीर्थंकर रूप सूर्य का (उग्गओ—उद्गत) उदय हुआ है (सो—वही) (सव्वलोगम्मि—सर्वलोक में) (पाणिणं—प्राणिनाम्) प्राणियों का (उज्जोयं—उद्योतम्) (करिस्सइ—करिष्यति) करेगा।

मूलार्थ—जिन का ससार क्षीण हो चुका है ऐसे सर्वज्ञ जिनेन्द्र रूप सूर्य का उदय हुआ है । वही सब लोक मे प्राणियो को प्रकाशित करेगा ।

साहु गोयम पन्ना ते, छिन्नोमे ससओ इमो ।
अन्नोवि ससओ मज्झ, त मे कहसु गोयमा ! ॥७६॥

शेष पूर्ववत् है

सारीरमाणसेदुक्खे, वज्झमाणाण पाणिणं ।
खेम सिवमणावाहं, ठाण कि मन्नसी मुणी ! ॥८०॥

अन्वयार्थ —(मुणी ! हे मुने !) (सारीरमाणसेदुक्खे—शारीरमानसै-दुखै) शारीरिक, मानसिक दु खो से (वज्झमाणाण—बाध्यमानानाम्) बाध्य-मान पीडित (पाणिण—प्राणियोंके लिए) (खेम—क्षेमम्) व्याधि रहित (सिव—शिवम्) सर्व उदय रहित (अणाबाह—अनाबाधम्) स्वाभाविक बाधा रहित (ठाण—स्थानम्) (कि—किम्) कौनसा (मन्नसी—मन्यसे) मानते हो ।

मूलार्थ—हे मुने ! शारीरिक और मानसिक दु खो से पीडित प्राणियो के लिए क्षेम और सब उपद्रवो से रहित तथा निर्विघ्न स्थान आप किसको मानते है ?

अत्थि एगं धुव ठाणं, लोगग्गम्मि दुरारुहं ।
जत्थ नत्थि जरामच्चू, वाहिणो वेयणा तहा ॥८१॥

अन्वयार्थ —(लोगग्गमि—लोकाग्रे) लोक के अग्र भागमे (दुरारुह—दुरारोहम्) दु ख से चढने योग्य (एग—एकम्) एक (धुव—ध्रुवम्) निश्चल (ठाण—स्थानम्) स्थान है (जत्थ—यत्र) जहाँ (जरामच्चू—जरामृत्यु) बुढापा और मृत्यु (तहा—तथा) (वाहिणो, वेयणा—व्याधय वेदना) (न—नहीं) (अत्थि—अस्ति) हैं ।

मूलार्थ —लोक के ऊपर कठिनाई से चढने योग्य एक निश्चल स्थान है जहाँ बुढापा, मृत्यु, व्याधि और वेदनाएँ नही हैं ।

ठाणे य इइ के वुत्ते ? केसी गोयमब्बवी ।
तओ केसिं बुवंतं तु, गोयमो इणमब्बवी ॥८२॥

अन्वयार्थ—(ठाणे—स्थानम) वह स्थान (य—और) (के—किम्) गौतम। (वुत्ते—उक्तम्) कहा गया है इत्यादि शेष सब प्रथम की तरह जानना।

निव्वाणंति अबाहंति सिद्धी लोगग्गमेव य ।
खेमं सिवं अणाबाहं, जं चरंति महेसिणो ॥८३॥

अन्वयार्थ—(महेसिणो—महर्षिण) महर्षिजन (जं—यत्) जिस स्थान को (चरंति—प्राप्त करते हैं) वह स्थान (निव्वाणं—निर्वाणम) निर्वाण (ति—इस प्रकार) (अबाहं—अबाधम) बाधा रहित (ति—इस प्रकार (सिद्धी—सिद्धि) (लोगग्ग—लोकाग्रम्) लोकाग्र (एव—पादपूर्ति म) य—और (खेमं—क्षेमम) (सिवं—शिवम्) और (अणाबाहं—अनाबाधम्) बाधारहित है।

मूलार्थ—हे मुने! जिस स्थान को प्राप्त करते हैं वह स्थान निर्वाण अव्याबाध सिद्धि लोकाग्र क्षेम, शिव और अनाबाध इन नामों से विख्यात है।

तं ठाणं सासयंवासं, लोगग्गंमि दुरारुहं ।
जं संपत्ता न सोयन्ति, भवोहंतकरा मुणी ॥८४॥

अन्वयार्थ—(मुणी! हे मुने) (तं—तत्) वह (ठाणं—स्थानम) स्थान (सासयंवासं—शाश्वतवासम) शाश्वतवासरूप है (लोगग्गंमि—लोकाग्रे) लोक के अग्रभाग पर स्थित है (दुरारुहं—दुरारोहम) पर तु उस पर चढ़ना अत्यन्त कठिन है। (जं—यत्) जिसको (संपत्ता—सम्प्राप्ता) प्राप्त करके (भवोहंतकरा—भवौघान्तकरा) भव (संसार) के प्रवाह (जन्म—मरण) का अन्त करनेवाले मुनिजन (नसोयन्ति—न शोचन्ति) शोक नहीं करते हैं।

मूलार्थ—हे मुने वह स्थान शाश्वतवासरूप है (अविनाशी है) लोक के अग्रभाग में स्थित है। परन्तु दुरारोह है। तथा जिस को प्राप्त कर भव परम्परा का अन्त करने वाले मुनिजन शोक नहीं करते हैं।

साहु गोयम! पन्ना ते, छिन्नो मे संसओ इमो ॥
नमो ते संसयातीत! सव्वसुत्त महोयही! ॥८५॥

अन्वयार्थ—(गोयम ! हे गौतम !) (ते—तव) तेरी (पन्ना—प्रज्ञा) बुद्धि (साहु—साधु) ठीक है (मे—मेरा) (इमो—इमम्) यह (ससओ—सशय) (छिन्नो—कट गया दूर हो गया (ससयातीत !—हे ससयातीत !) हे सदेह को मिटाने वाले (सव्वसुत्तमहोयही !—सर्वसूत्रमहोदधे !) हे सब सूत्रो के महा सागर (ते—तुभ्यम्) नमो—आपको नमस्कार है।

मूलार्थ—हे गौतम ! आप की प्रज्ञा साधु है। आपने मेरे सब सशय को छेदन कर दिया अत हे ससयातीत !—हे सर्वसूत्र के पारगामी ! आपको नमस्कार है।

एवं तु संसए छिन्ने, केसी घोरपरक्कमे।
अभिवन्दित्ता सिरसा, गोयमं तु महायसं ॥८६॥

अन्वयार्थ—(एव—इस प्रकार (ससए—सशये) सशय (छिन्ने—दूर हो जाने पर (घोरपरक्कमे—घोरपराक्रम) घोर पराक्रम वाले (केसी—केशीमुनि) (महायस—महायशम्) महान्यशस्वी (गोयम—गौतम स्वामी को) (सिरसा—शिरसा) शिर से (अभिवदित्ता—अभिवन्द्य) वदना करके (तु—पुन)।

मूलार्थ—इस तरह सशयो के दूर हो जाने पर घोर पराक्रम वाले केशी मुनि ने महायशस्वी गौतमस्वामी को शिर से वदना करके।

पचमहव्वयधम्मं, पडिवज्जइ भावओ।
पुरिमस्स पच्छिमम्मि, मग्गे तत्थ सुहावहे ॥८७॥

अन्वयार्थ—(तत्थ—तत्र) उस तिन्दुक वन मे (पचमहव्वयधम्म—पच-महाव्रतधर्मम्) पाचमहाव्रतरूपधर्म को (भावओ—भावतः) भाव से (पडि-वज्जई—प्रतिपद्यते) ग्रहण किया। क्योकि (पुरिमस्स—पूर्वस्य) पहले तीर्थंकर के और (पच्छिमम्मि—पश्चिमे) पश्चिम (चरम) तीर्थंकर के (मग्गे—मार्गे) मार्ग [नियम] मे 'सुहावहे—सुखावहे' सुखदायक कल्याणदायक पचयम रूप धर्म का पालन करना बतलाया है।

केसी गोयमओ निच्चं, तम्मि आसि समागमे।
सुयसील समुक्करिसो, महत्थत्थविणिच्छओ ॥८८॥

अन्वयार्थ—(तम्मि—तस्मिन्) उस तन्दुक वन में (केसी गोयमओ—केशीगौतमयो) केशी और गौतम का (निच्च—नित्यम्) सदा (समागमे—समागम) (आसि—आसीत्) हुआ। उसमें (सुयसीलसमुक्कसा—श्रुतशील समुत्कर्ष) श्रुत शील ज्ञान, चारित्र का सम्यक् उत्कर्ष (महत्यत्थविणिच्छिओ—महार्थार्थविनिश्चय) मुक्ति के अर्थ का साधक शिक्षा व्रतादि रूप का विशिष्ट निर्णय।

मूलार्थ—उस तन्दुक वन में केशी मुनि और गौतम स्वामी का जो नित्य समागम हुआ उसमें श्रुत, शील ज्ञान और चारित्र का सम्यक् उत्कर्ष जिसमें है एसे मुक्तिसाधक शिक्षाव्रत आदि नियमों का विशिष्ट निर्णय हुआ।

तोसिया परिसा सव्वा, सम्मग्गं समुवट्ठिया।
संथुया ते पसीयन्तु, भयवं केसिगोयमे त्ति बेमि ॥८९॥

अन्वयार्थ—(सव्वा—सर्वा) सब (परिसा—परिषत्) परिषद (तोसिया—तोषिता) सन्तुष्ट होकर (सम्मग्गं—सन्मार्गम्) सन्मार्ग में समुवट्ठिया—समुपस्थिता) लग गई (भयवं—भगवन्तौ) (केसिगोयमे—केशिगौतमौ) केशी मुनि और गौतम स्वामी (संथुया—संस्तुतौ) स्तुति किये गये (ते—तौ) वे दोनों (पसीयन्तु—प्रसीदताम्) प्रसन्न हो। (त्तिबेमि—इति ब्रवीमि) एसा कहता हूँ।

मूलार्थ—सब परिषद उत्तम संवाद को सुनकर सन्मार्ग में प्रवृत्त हो गई तथा भगवान् केशीकुमार और गौतम स्वामी प्रसन्न हों। इस प्रकार सभा में स्तुति की।

केसिगोयमिज्जं तेवीसइमं अज्झयणं सम्मत्तं ॥२३॥
केशीगौतमीयं त्रयोविंशमध्ययनम् समाप्तम् ॥२३॥

— o —

अह समिइओ चउवीसइमं अज्झयणं
थ समितयः (इति) चतुर्विंशमध्ययनम्

अट्ठ पवयणमायाओ, समिई गुत्ती तहेव य।
पचेव य समिईओ, तओ, गुत्तीउ आहिया ॥१॥

अन्वयार्थ —(समिई—समितय) (य—और) (तहेव—तथैव) इसी कार (गुत्ती—गुप्तय) (अट्ठ—अष्टौ) आठ (पवणमायाओ—प्रवचनमाता) वचन माताए हैं जैसे (पचवे—पञ्चैव) (समिइओ—समितय) (य—और) तओ—तिस्र) तीन (गुत्तीउ—गुप्तय) गुप्तिया (आहिया—आख्याता) ही गई है।

मूलार्थ.—समिति और गुप्तिरूप आठ प्रवचन माताएँ हैं। जैसे पाच मितियाँ और तीन गुप्तियाँ।

इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समिई इय।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती य अट्ठमा ॥२॥

अन्वयार्थ —(इरियाभासेसणादाणे—ईर्याभाषैषणादाने) ईर्या भाषा, षणा, आदान (य—और)(उच्चारे—उच्चार) रूप (समिई—समितय) समितियाँ है (इय—इति) (मनगुत्ती—वयगुत्ती, कायगुत्तीय—मनगुप्ति, वचोगुप्ति, कायगुप्तिश्च) (अट्ठमा—अष्टमी) आठवी।

मूलार्थ —ईर्या समिति, भाषा समिति, आदान समिति और उच्चार समिति तथा मनगुप्ति, वचन गुप्ति और आठवी काय गुप्ति है यही आठ प्रवचन माताएँ है स्पष्टर्थ ईर्या- गति परिणाम, भाषा-भाषणनिधि एषणा-निर्दोष आहारादि का विधि पूर्वक लेना, आदान-वस्त्रपात्रादि का ग्रहण और निक्षेप मे यत्नो से काम लेना, उच्चार मलमूत्रादि त्याज्य मे भी यतना करना

मन वचन, काय का वश म रखना । समिति के प्रवचन और गुप्ति के प्रविचार तथा अविचार उभय रूप होन से परस्पर भेद है ।

एयाओ अटठ समिईओ, समासेण विवाहिया ।
दुवालसग जिणक्खाय, माय जत्य उ पवयण ॥३॥

अन्वयाथ—(एयाओ—एता) य (अटठा—अष्ट) आठ (समिइओ—समितियाँ (समासण—सक्षेप स) (वियाहिया—व्याख्याता) वणन की गइ हैं । (जिणक्खाय—जिनख्यातम्) जिनकथित (दुवालसग—द्वादशागम्) रूप (पवयण—प्रवचनम) प्रवचन (माय—मातास) समाविष्ट—अन्तभूत है ।

मूलाथ—य आठ समितियाँ सक्षेप म वणन की गइ हैं जिनभाषित द्वादशाग रूप प्रवचन इन्हीं के अन्दर समाया हुआ है ।

आलम्बणेण कालेण, मग्गेण जायणाइ य ।
चउकारणपरिसुद्ध, सजए इरिय रिए ॥४॥

अन्वयाथ—(सजए—सयत) सयमी पुरुष (आलम्बणेण—आलम्बनेन) आलम्बन स (कालण—काल स) (मग्गण—मार्गेण) माग स (जयणाइ—यतनया) यतना स (चउकारणपरिसुद्ध—चतुष्कारणपरिशुद्धाम) इन चार कारणों स परिशुद्ध (इरिय—इयाम) इया को (रिए—रीयत) प्राप्त करे ।

मूलाथ—आलम्बन काल माग और यतना इन चार कारणा की परिशुद्धि स सयमी साधु गति को प्राप्त करे या गमन करे ।

तत्य आलम्बण, नाण दसण चरण तहा ।
काले य दिवसे वुत्ते, मग्गे उप्पह वज्जिए ॥५॥

अन्वयाथ—(तत्य—तत्र) इर्या के चार कारणों म (आलम्बण—आलम्बनम्) (नाण—ज्ञान) (तहा—तथा) (दसण चरण—दशन चरणाम्) दशन और चरित्र (काल—काल)(य—और)(दिवसे—दिवस)(वुत्ते—उक्त) कहा गया है और (उप्पह—उत्पथ) उत्पथ स (वज्जिए—वर्जित) रहित (मग्ग—माग) है ।

मूलार्थ —ईर्या के उत्तम कारणो मे से आलम्बन' ज्ञान दर्शन चारित्र है काल दिवस है और उत्पथ (कुमार्ग) का त्याग मार्ग है ।

दव्वओ खेत्तओ चेव, कलाओ भावओ तहा ।
जयणा चउव्विहा वुत्ता त मे कित्तयओ सुण ॥६॥

अन्वयार्थ —(जयणा—यतना) यतना (दव्वओ, खेत्तओ, कालओ, भावओ चेव—द्रव्यत , क्षेत्रत', कालत , भावत) द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव से [चउव्विहा—चतुर्विधा] चार प्रकार की [वुत्ता—उक्ता] कही गई हैं [ति—ता] उसे (मे—मुझसे) (कित्तयओ—कीर्तयत) कहते हुए (सुण—श्रणु) सुनो ।

मूलार्थ —द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव मे यतना चार प्रकार की है । मैं तुम से कहता हूँ, तुम सुनो ।

द्रव्वओ चक्खुसा पेहे, जुगमित्तं च खेत्तओ ।
कालओ जाव रीइज्जा, उवउत्ते य भावओ ॥७॥

अन्वयार्थ—(दव्वओ—द्रव्यत) द्रव्य से (चक्खुसा—चक्षुपा) आँखो से (पेहे—प्रेक्षेत) देखकर चले य—और (खेत्तओ—क्षेत्रत) क्षेत्र से (जुगमित्त —युगमात्रम्) चार हाथ प्रमाण देखे (कालओ—कालत) काल मे (जाव —यावत्) जवतक (रीइज्जा—रीयेत) चलता रहे (भावओ—भावत) भाव से (उवउत्ते—उपयुक्त) उपयोग पूर्वक गमन करे ।

मूलार्थ—द्रव्य से आँखो से देखकर चले । क्षेत्र से चार हाथ प्रमाण देखे, कालसे-जवतक चलता रहे भावसे उपयोग पूर्वक चले ।

इन्दियत्थे विवज्जित्ता, सज्झायं चेव पचहा ।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्ते रिय रिए ॥८॥

अन्वयार्थ —(इन्दियत्थे—इन्द्रियार्थान्) इन्द्रियो के विपयो को (सज्झाय—स्वाध्यायम्) (पचहा—पचधा) पांच प्रकार के स्वाध्याय को (विव-

ज्जिता—विवज्य) परित्याग करके (तम्मुत्ती—तन्मूर्ति) तन्मय सन—गमन मे तत्पर होता हुआ। (तप्पुरक्कार—तत्पुरस्कार) उस को आगे कर (ईर्याको प्रधान रखता हुआ (उवउत्ते—उपयुक्त) उपयोग पूर्वक (रिय—ईर्याम) ईर्या मे (रिए—रीयत) गमन करे।

मूलार्थ —इन्द्रियों के विषयो और पाच प्रकार के स्वाध्याय पाच स्वाध्याय वाचना पृच्छना, परीवर्तना धर्म कथा अनुप्रेक्षा को परित्याग करके तन्मय होकर ईर्या को सामने रखता हुआ उपयोग मे गमन करे।

कोहे माणे य मायाए, लोभे य उवउत्तया ॥
हासे भए मोहरिए, विकहासु तहेव य ॥९॥

अन्वयार्थ—(कोहे—क्रोधे) (माणे—मान) (य—और) (मायाए—मायायाम) य—और (लोभे—लोभे) (हास—हास्य) (भए—भय) च (मोहरिए—मौखर्य) (तहेव—तथैव) (विकहासु—विकथासु) क्रोध मे मान मे माया मे लोभ मे हास्य में भय में मौखर्य मे इसी प्रकार विकथाओं मे (उवउत्तया—उपयुक्तता) उपयोग रखना।

मूलार्थ—क्रोध मान माया लोभ हास्य भय वकवादीपन परनिंदा चुगली और स्त्री आदि की असत कथा मे उपयोग मत रखना चाहिए।

एयाइं अट्ठठाणाइं, परिवज्जित्तु संजए।
असावज्ज मियं काले, भासं भासिज्ज पन्नवं ॥१०॥

अन्वयार्थ—(संजए—संयत) संयमी (एयाइं—एतानि) ये (अट्ठ—अष्टौ) आठ ठाणाइं (स्थानानि) स्थानो का (परिवज्जित्तु—परिवर्ज्य) छोड कर (पन्नवं—प्रज्ञावान) बुद्धिमान् (काले—समयानुसार) (असावज्ज—असावद्यम्) निर्दोष (मियं—मितम्) थोडी (भासं—भाषाम) भाषा को (भासिज्ज—भाषेत्) बोले।

मूलार्थ —बुद्धिमान् संयत पुरुष इन आठ स्थानों को परित्याग कर समयानुसार परिमित (थोडे अक्षर वाली) और निर्दोष भाषा का बोले।

गवेसणाए गहणे य, परिभोगेसणा य जा ।
आहारोवहिसेज्जाए, एए तिन्नि विसोहए ॥११॥

अन्वयार्थ—(गवेसणाए—गवेषणायाम्) गवेषणा मे (गहणे—ग्रहणे) ग्रहणैषणा (च—और) (परिभोगेसणा—परिभोगैषणा) (जा—या) जो (य—और) (आहारोवहिसेज्जाए—आहारोपधिशय्यानु) आहार उपधि और शय्या (एए—एता) ये (तिन्नि—तिस्र) तीनो की (वि—अपि) भी (सोहए—शोधयेत्) शुद्धि करे ।

मूलार्थ—गवेषणा (आहारादि की खोज करना) ग्रहणैषणा 'विचार पूर्वक निर्दोष आहार लेना, परिभोगैषणा-आहारकाल मे निन्दा-स्तुति से रहित हो कर आहार करना तथा आहार, उपधि उपकरण शय्या (तृणादि शुष्क) इन तीनो की शुद्धि करे ।

उग्गमुप्पायण पढमे, बीए सोहेज्ज एसणं ।
परिभोयम्मि चउक्कं, विसोहेज्ज जयं जई ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जई—यति) साधु (जय—यतमानो) यतना करता हुआ (पढमे—प्रथमायाम्) प्रथम एषणा मे (उग्गमुप्पायण—उद्गम और उत्पादन दोष) (बीए—द्वितीयाम्) दूसरी एषणा मे (एसण—एषणादोषान्) एषणादोषो शका आदि दोषो को (सोहेज्जा—शोधयेत्) शुद्धि करे । (परिभोयम्मि—परिभोगैषणायाम्) परिभोगैषणा मे (चउक्क—चतुष्कम) चारो (भोजन, शय्या, वस्त्र और पात्र) की (विसोहेज्ज—विशोधयेत्)

मूलार्थ—सयमी यति प्रथम एषणा मे उद्गम तथा उत्पादन आदि दोषो की शुद्धि करे दूसरी एषणा मे शकितादि दोषो की शुद्धि करे । तीसरी एषणामे-पिड, शय्या, वस्त्र और पात्र आदि की शुद्धि करे । प्रथम मे उद्गम मे १६ दोष उत्पन्न मे १६ द्वितीय मे १० तृतीय मे पिड वस्त्र, पात्र, शय्या, निन्दास्तुति ५ = ४२ दोष

ओहोवहोवग्गहियं, भण्डग दुविहं मुणी ।
गिण्हन्तो निक्खिवन्तो वा, पउजेज्ज इमं विहिं ॥१३॥

अन्वयार्थ—(मुणी—मुनि) (ओघोवहो—रजोहरणादि ओघोपधि) (उवग्गहियं—दण्डादि) औपग्रहिकोपधि तथा (भण्डगं—भाण्डकम) भाण्डोपकरण (दुविहं—द्विविधम) दो प्रकार का उपकरण (गिण्हन्ते—गृह्णन्) ग्रहण करता हुआ वा (निक्खिवन्तो—निक्षिपन्) रखता हुआ (इम—इमम्) इस (विहिं—विधिम) विधि को (पउजज्ज—प्रयुञ्जान) प्रयोग करे।

मूलार्थ—रजोहरणादि ओघोपधि और दण्डादि औपग्रहिकोपधि तथा दो प्रकार का उपकरण इनका ग्रहण और रखता हुआ साधु वक्ष्यमाण विधि का अनुसरण करे। अर्थात्—इनका ग्रहण तथा रखना विधि सहित करे।

चक्खुसा पडिलेहित्ता पमज्जेज्ज जयं जई।
आइए निक्खिवेज्जा वा दुहओ वि समिए सया ॥१४॥

अन्वयार्थ—(जई—यति) साधु (जयं—यतो) यतनावाला होकर (चक्खुसा—चक्षुषा) आंखों से (पडिलेहित्ता—प्रतिलेख्य) प्रतिलेखन कर-देख कर (पमज्जेज्ज—प्रमार्जन) कर (सया—सदा) आ (दुहओवि—द्विधापि) दोनों प्रकार की उपधि का (आइए—आददीत) ग्रहण निक्खिवेज्जा—निक्षिपेत्) निक्षेप में (समिए—समित) समिति वाला होवे।

मूलार्थ—संयमी साधु आंखों से देखकर दोनों प्रकार की उपधि (रजोहरणादि-दण्डादि) का प्रमार्जन करे। उनके ग्रहण रखने में सदा समिति वाला होवे।

उच्चारं पासवणं, खेलं सिंघाण जल्लियं।
आहारं उवहिं देहं, अन्नं वावि तहाविहं ॥१५॥

अन्वयार्थ—(उच्चारं—उच्चारम) मल (पासवणं—प्रस्रवणम) मूत्र (खेलं—मुखका खखार सिंघाण—नासिकामल) (जल्लियं—जल्लकम) शरीर का मल (आहारं—आहारम्) उवहिं—उपधिम (देहं—देहम्) वस्त्रा (अन्नं—अन्यम) वा वि (अथवा—भी) (तहाविहं—तथाविधम) वैसा फेंकने लायक

मूलार्थ—विष्ठा मल मूत्र नासिकामल शरीर मल आहार उपधि शरीर तथा और भी इसी प्रकार फेंकने योग्य पदार्थों को यतना से फेंके।

अणावायमसलोए, अणावाए चेव सलोए।
आवायरसंलोए, आवाए चेव संलोए ॥१६॥

अन्वयार्थ—(अणावाय—अनापातम्) आगमन मे रहित (असलोए—असंलोकम्) देखता भी नही हो (च—पाद पूर्ति मे) (एव—निश्चय) (अणावाए—अनापातम्) आगमन मे रहित (सलए—सलोकम्) देखने वाला (होइ—भवति) होता है। (आवाय—आपातम्) आता है (असलोए—असल्लोकम्) देखता नही (आवाए—अपातम्) आता है (च—और) (एव—पादपूर्ति) (सलोए—सलोकम्) देखता भी है।

मूलार्थ—१ आता भी नही और देखता नही। २—आता नही परन्तु देखता है। ३—आता है परन्तु देखता नही। ४—आता भी है और देखता भी है।

अणावायमसलोए, परस्सणुवधायए ।
समे अज्झुसिरे यावि, अचिरकालकयम्मिय ॥१७॥

अन्वयार्थ—(अणावय—अनापाते) अनापात (असलोए—असलोके) असलोक—स्थान मे (पारस्स—पारस्य) दूसरे जीवो के (अणुवधायए—अनुपघातिक) हिंसक स्थान नही (समे—सम भूमि मे) या-अथवा (अज्झुसिरे—अशुसिरे) तृण, पत्तो से ढका स्थान नही वहा। (अचिरकालकयम्मि—अचिरकालकृतेऽपि) थोडे समय के अचित हुए स्थान मे (अवि—अपि)

मूलार्थ—अनापात, जहाँ लोग आते नही, असलोक जहाँ लोग देखते नही पर जीवो का उपघात करने वाला न हो। सम अर्थात् विषम न हो और घास आदि से आच्छादित न हो तथा थोडे समय का अचित्त न हुआ हो ऐसे स्थान पर मलमूत्रादि त्याज्य पदार्थो को छोडे ।

विच्छिण्णे दूरमोगाढे, नासन्ने बिलवज्जिए ।
तसपाणबीयरहिए, उच्चाराईणि वोसिरे ॥१८॥

अन्वयार्थ—(विच्छिण्णे—विस्तीर्णे) (दूर मोगाढे) नीचे दूर तक अचित्त (नासन्ने—ग्रामदि के समीप न हो (विलवज्जिए—विलवर्जिते)

मूषकादि के बिलो स रहित हो (तसपाणवीयरहिए—त्रसप्राणवीजरहिते) त्रसप्राणी और बीजरहित हो (उच्चाराईणि—उच्चारादीनि) उच्चार)मलादि को (वोसिरे—व्युत्सजेत) त्याग करें।

मूलाथ—जो स्थान विस्तार पूवक हो बहुत नीचे तक अचित्त हो ग्रामादि व बहुत समीप म नहीं चूहे आदि के बिल जहा न हो त्रसप्राणी और बीज आदि म रहित हो एसे स्थान पर मलमूत्रादि का त्याग करें।

एयाओ पञ्च समिईओ, समासेण वियाहिया।
एत्तो य तओ गुत्तीओ, वोच्छामि अणुपुव्वसो ॥१९॥

अन्वयाथ—(एयाओ—एता) (पच—पाच) (समिईओ—समितय समितिया (समासण—सक्षेपस) (वियाहिया—व्याख्यात) कही गइ हैं (एत्तो—इत) इसक बाद (य—और) (तओ—तिस्र) तीन (गुत्तीओ—गुप्तय) गुप्तिया का (अणपुव्वसो—अनुपूर्व्या) अनुक्रम से (वोच्छामि—प्रवच्छामि) कहूँगा।

मूलाथ—य पाच समितियाँ सक्षेप स वणन की गई हैं इसके बाद तीनो गुप्तिया का स्वरूप अनुक्रम से वणन करूँगा।

सच्चा तहेव मोसा य, सच्चमोसा तहेव य।
चउत्थी असच्चमोसा य, मणगुत्तिओ चउव्विहा ॥२०॥

अन्वयाथ—(सच्चा—सत्या) (तहेव—तथव) उसी प्रकार (मोसा—मषा) असत्या (य—और) (सच्चमोसा—सत्यामृषा (तहेव—उसी प्रकार) (चउत्थी—चतुर्थी) (असच्चमोसा—असत्यामषा) सत्य पदाथ को विपरीत भाव स चिन्तन (य—पाद पूर्ति म) (मणगुत्तिओ—मनोगुप्ति) (चउव्विहा—चतुर्विधा) चार प्रकार की कही गई है।

मूलाथ—सत्या, असत्या, उसी प्रकार सत्यामषा और चतुर्थी असत्या मृषा एस मनगुप्ति चार प्रकार की कही गई है।

संरम्भसमारम्भे, आरम्भे य तहेव य।
मण पवत्तमाण तु, नियत्तेज्ज जयं जई ॥२१॥

अन्वयार्थ—(जई—यति) साधु (सरम्भ—सरम्भे) मन में मारने का विचार (समारम्भे=दुःख देने के लिये मन में संकल्प करना (आरम्भे—पर जीवों के प्राण हरण करने का अशुभ ध्यान का आवलंबन करना अथवा कार्य को आरम्भ करना। (य—पुन) (पवत्ताण—प्रवर्त्तमानम्) प्रवृत्त हुये (मण—मन.) मन को (जय—यतम्) यतना वाला (नियत्तेज्ज—निवर्नयेत्) रोके।

मूलार्थ—सयमशील मुनि सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में प्रवृत्त हुए मन की प्रवृत्ति को रोके।

सच्चा तहेव मोसा य, सचमोसा तहेव य।
चउत्थी असच्च मोसा य, वयगुत्ती चउव्विहा ॥२२॥

अन्वयार्थ—(सच्चा—सत्या) (तहेव—उसी प्रकार) मोसा—मृषा) (य—च) (सच्चमोसा—सत्यामृषा) सत्य (चउत्थी—चौथी) (असच्च-मोसा—असत्यामृषा)इस प्रकार (वयगुत्ती—वचोगुप्ति) वचनगुप्ति (चउव्विहा—चार प्रकार की है।

मूलार्थ—सत्य वाग्गुप्ति, तद्वत् सत्यामृषावाग् गुप्ति और चौथी असत्या-मृषावाग्गुप्ति ऐसे चार की वचन गुप्ति कही गई है।

संरम्भ समारम्भे, आरम्भे य तहेव य।
वयं पवत्तमाणं तु, नियतेज्ज जयं जई ॥२३॥

अन्वयार्थ—(जई—यति) (सरम्भे—समारम्भे) (तहेव—उसी प्रकार (आरम्भे) (य—च) (पवत्तमाण—प्रवर्तमानम्) प्रवृत्त हुये (वय—वच) वचन को (तु—निश्चय करके) (जय—यतना वाला) (नियत्तेज्ज—निवर्तयेत्) हटा ले।

मूलार्थ—सरम्भ, समारम्भ और आरम्भ में लगे हुये वचन को सयमी साधु यतना वाला हटा ले (न बोले)।

ठाणे निसीयणे चेव, तहेव य तुयट्टणे ।
उल्लघण पल्लघणे, इदियाण य जुजणे ॥२४॥

अन्वयार्थ—(ठाणे—स्थान) स्थान म (निसीयणे—निषीदने) बठन म (च—समुच्चयार्थे) (एव—पादपूर्तिम) (तहेव—उसी प्रकार) (तुयट्टणे—त्वगवतत) शयन करने म (उलघण म (य—और) (पल्लघणे—प्रलघण म) (य—तथा) (इदियाण—इन्द्रियाणाम) इन्द्रयो को विषये से (जुजणे—जोडन म।)

मूलार्थ—स्थान म, बठन म, तथा शयन करन म लघन और प्रलघन म एव इन्द्रियो को शब्दादि विषयो के साथ जोडने में यतना चाहिए। विवक रखना चाहिए।

सरम्भ समारम्भे, आरम्भम्मि तहेव य।
काय पवत्तमाण तु, नियत्तेज्ज जय जई ॥२५॥

अन्वयार्थ—(जई—यति) (सरम्भे—समारम्भे) तहेव—उसी प्रकार (य—और) (काय—शरीर का) (पवत्तमाण—प्रवत्तमानम्) प्रवृत्त हुए (जय—यतना वाला) नियत्तेज—दूर करे)।

मूलार्थ—यतना वाला मुनि सरम्भ समारम्भ और आरम्भ म लगे हुए शरीरको इनसे दूर करे।

एयाओ पञ्चसमिईओ, चरणस्स य पवत्तणे।
गुत्ती नियतणे वुत्ता, असुभत्थेसु सव्वसो ॥२६॥

अन्वयार्थ—(एयाओ—एता) ये (पचसमिईओ—पचसमितय) पाच समितियाँ (चरणस्स—चरणस्य) चारित्र की (पवत्तण—प्रवतने) प्रवृत्ति य—और (गुत्ती—गुप्तय) गुप्तियाँ (सव्वसो—सवस) सब तरह से (असुभत्थेसु—अशुभार्थेभ्य) अशुभ अर्थो से य—और शुभ अर्थो से निवत्तने) निवृत्ति के लिए (वुत्ता—उक्ता) कहा गई हैं।

मूलार्थः—ये पाचो समितिया चरित्र की प्रवृत्ति के लिए कही गई है । और तीनो गुप्तियाँ शुभ—अशुभ सब प्रकार के अर्थो से निवृत्ति के लिए कही गई है ।

एयाओ पवयणमाया, जे सम्मं आयरे मुणी ।
सो खिप्प सव्वससारा, विप्पमुच्चइ पण्डिए ॥२७॥

अन्वयार्थ—(जे—य) जो मुनि (एयाओ—एता) ये (पवयणमाया—प्रवचनमातृ) प्रवचन-माताओ को (सम्म—सम्यक्) अच्छी तरह (आयरे—अचारेत्) आचरण करे (सो—स)(पडिए—पडित) वह मुनि (सव्वसमारा—सर्वससारात्) सर्व ससार से (खिप्प—क्षिप्रम्) शीघ्र (विप्पमुच्चइ—विप्रमुच्यते) विल्कुल छूट जाता है ।

मूलार्थ—जो मुनि इन प्रवचन-माताओ का भलीभाँति आचरण करता है । वह पडित (ज्ञानी) मुनि ससार-चक्र से शीघ्र ही छूट जाता है, ऐसा कहता हूँ ।

इति समिइयो चउवीसइम अज्झयणं समत्त ॥२४॥
इति समितयश्चतुर्विशमध्ययनं समाप्तम् ॥२४॥

—०.—

अह जन्नइज्ज पचवीसइम अज्झयण
अथ यज्ञीय पञ्चविंशतितममध्ययनम्

माहणकुलसमूओ, आसि विप्पो महायसो ।
जायाइ जमजन्नम्मि, जयघोसो त्ति नामओ ॥१॥

अन्वयार्थ —(माहणकुलसंभूओ—ब्राह्मकुलसंभूत) ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ (महायसो—महायश) महायशस्वी (जमजन्नम्मि—यमयज्ञे) यमयज्ञ में (जायाइ—यायाजी) यज्ञ में अनुरक्त (जयघोसो—जयघोष) त्ति—इति) एसे (नामओ—नामतः) नाम से (विप्पो—विप्र) ब्राह्मण (आसि—आसीत्) था ।

मूलार्थ—ब्राह्मणकुल में उत्पन्न हुआ जयघोष नाम से प्रसिद्ध एक महायशस्वी विप्र यमयज्ञ में अनुरक्त अन्त भाव रूप में यज्ञ करने वाला था ।

इन्दियग्गामनिग्गाही, मग्गगामी महामुणी ।
गामाणुगाम रीयंते, पत्तो वाणारसिं पुरिं ॥२॥

अन्वयार्थ—(इन्दियग्गाम—इन्द्रियग्राम) इन्द्रियों के समूह को (निग्गाही—निग्राही) वश में रखनेवाला (मग्गगामी—मार्गगामी) मोक्षमार्ग में गमन करनेवाला (महामुणी—महामुनि) (गामाणुगाम—ग्रामानुग्रामम्) एक गाँव से दूसरे गाँव क्रम से (रीयन्ते—रीयमान) फिरता हुआ (वाणारसिं—वाराणसीम्) वाराणसी (पुरिं—पुरीम्) पुरी को (पत्तो—प्राप्त) गया ।

मूलार्थ—इन्द्रिय-समूह का निग्रह करने वाला मोक्ष-मार्ग का अनुगामी वह महामुनि ग्रामानुग्राम विचरता हुआ वाराणसी नाम की नगरी को गया ।

वाराणसीए वहिया, उज्जाणम्मि मणोरमे ।
फासुए सेज्जसथारे, तत्थ वासमुवागए ॥३॥

अन्वयार्थ—(वाणग्नीए—वाराणस्या) वाराणसी के (वहिया—वहि:) वाहर (मणोरमे—मनोरमे) मनोरम (उज्जणाम्मि—उद्याने) उद्यान मे (फासुए—प्रासुके) निर्दोप (सेज्जसथारे—शय्यासस्तारे) शय्या और सस्तारक पर (तत्थ—वहाँ) उस वन मे (वास—निवास को) (उवागए—उपागत) प्राप्त किया ।

मूलार्थ —वे मुनि वाराणसी के वाहर मनोरम उद्यान मे निर्दोप शय्या और सस्तारक पर विराजमान होते हुए वहाँ रहने लगे ।

अह तेणेव कालेण, पुरीए तत्थ माहणे ।
विजयघोसो त्ति नामेण, जन्न जयइ वेयवी ॥४॥

अन्वयार्थ —(अह—अथ) इसके वाद (तेणेव—तस्मिन्नेव) उसी (कालेण—काले) (तत्थ—तत्र) उस (पुरीए—पुर्याम्) पुरी मे (वेयवी—वेद-विद्) वेदो का जानकार (विजयघोस—विजयघोप) (त्ति—इति) इस (नामेण—नाम्ना) नाम मे प्रसिद्ध (माहणो—ब्राह्मण) (जन्न—यज्ञम्) यज्ञ को (जयइ—यजति) यजन करता था ।

मूलार्थ —उस समय उसी (वाराणसी) नगरी मे वेदो का ज्ञाता विजय-घोप नाम से प्रसिद्ध एक ब्राह्मण यज्ञ करता था ।

अह से तत्थ अणगारे, मासक्खमणपारणे ।
विजयघोसस्स जन्नम्मि, भिक्खमट्ठा उवट्ठिए ॥५॥

अन्वयार्थः—(अह—अथ) (तत्थ—वहाँ) (से—वह) (अणगारे—अनगार) साधु (मासक्खमण—मासक्षमण) मासोपवास की (पारणे—पारणा) के लिए (विजयघोसस्स—विजयघोपस्य) विजयघोप के (जन्नम्मि—यज्ञे) यज्ञ मे (भिक्खट्ठा—भिक्षार्थम) भिक्षा के लिए (उवट्ठिए—उपस्थित) उपस्थित हुआ ।

अन्वयार्थ —(जे—जो) (पर—परम्) दूसरे को (य—और) (अप्पाण—आत्मानम्) अपने को (समुद्धत्तु—समुद्धर्तुम्) उद्धार करने के लिए (समत्था—समर्था) समर्थ हैं (हे भिक्खू—हे भिक्षो !) हे भिक्षु ! (सव्वकामिय—सर्वकाम्यम्) सभी कामना को पूर्ण करने वाला (इण—इदम्) यह (अन्न—अन्न) देय—देने योग्य है ।

मूलार्थ—जो दूसरो और अपने का उद्धार कर सकते हैं, हे भिक्षु उनके लिए सभी कामो को पूरा करने वाला यह अन्न बनाया गया है ।

सो तत्थ एव पडिसिद्धो, जायगेण महामुणी ।
नवि रूट्ठो नवि तुट्ठो, उत्तमट्ठ गवेसओ ॥९॥

अन्वयार्थ—(तत्थ—तत्र) उस यज्ञशाला मे (जायगेण—याजकेन) यज्ञ करने वालले के द्वारा (सो—वह) (महामुणी—महामुनि) (एव—इस प्रकार) (पडिसिद्धो—प्रतिसिद्ध)(वि—भी)(उत्तमट्ठगवेसओ—उत्तार्थगवेषक) मोक्ष को ढूंढने वाला (न रुट्ठो, न तुट्ठो—न रुष्ट, न तुष्ट) क्रोधित हुआ न प्रसन्न हुआ ।

मूलार्थ—इस प्रकार उस यज्ञ मे भिक्षा के लिए प्रतिषेध किए जाने पर भी महामुनि जयघोष न नाराज हुये न प्रसन्न हुये क्योंकि वे मुक्ति की खोज करने वाले थे ।

नन्नट्ठ पाणहेउ वा, नवि निव्वाहणाय वा ।
तेसिं निमोक्खणट्ठाए, इम वयणमब्ववी ॥१०॥

अन्वयार्थ—(नन्नट्ठ—नान्नार्थम्) न अन्न के लिए (नविपाणहेउ—नाविपानहेतुम्) न पानी के लिए(न-निव्वाहणाय—न निर्विहिणाय) नवस्त्रादि निर्वाह के लिए किन्तु (तेसिं—तेषाम्) उनके (विमोक्खणाय—विमोक्षणाय) कर्मवन्धन से छुडाने के लिए (इम—इदम्) इस कहे जाने वाले (वयण—वचन को (अव्ववी—वोले ।

मूलार्थ —न तो अर्थ केलिए, न पानी के लिये तथा न किसी प्रकार के वस्त्रादि निर्वाह के लिए किन्तु उन याजको को कर्मवन्धन से मुक्त करने के लिये जयघोष मुनि ने उनके प्रति वक्ष्माण वचन कहे ।

नवि जाणासि वेयमुह, नवी जन्नाण ज मुह ।
नवखत्ताणमुह ज च, ज च धम्माण वा मुह ॥११॥

अन्वयाय—(नवि—नापि) न तो (वयमुह—वेदमुखम) वेदा के मुख को (जाणामि) जानता है (नवि—नापि) न तो (जन्नाण—यज्ञानाम) यज्ञों का (ज—यत) जो (मुह—मुख) है उसको (च—और) (नक्खत्ताण—नक्षत्राणाम) नक्षत्रों का (ज—यत) जो (मुह—मुख है) (धम्माण—धर्माणाम) धर्मों का (ज—यत्) जो (मुह—मुख है) ।

मूलार्थ—न तो तुम वेदों के मुख को ही जानते हो और न तो यज्ञों के मुख को । नक्षत्रों के मुख को भी तुम नहीं जानते हो और(धर्मों के मुख का भी तुम को ज्ञान नहीं है ।

जे समत्था समुद्धत्तु परमप्पाणमेव य ।
न ते तुम वियाणासि, अह जाणासि तो भण ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जे—ये) जो (परमप्पाण—परमात्मानम) अपने और दूसरे की आत्मा का (समुद्धत्तु—समुद्धर्तु म) उद्धार करने के लिये (समत्था—समर्था) समर्थ हैं । (ते—तान) उनको (तुम—त्वम) तुम (न—नहीं) (वियाणासि—जानते हो) (अह—यदि) (जाणासि—जानते हो) (तो—तदा) तो (भण—कहो) ।

मूलार्थ जो अपने और दूसरे की आत्मा का उद्धार करने में समर्थ हैं उनको तुम नहीं जानते हो ! यदि जानते हो तो कहो !

तस्सक्खेव पमोक्खं च अचयन्तो तहिं दिओ ।
सपरिसो पजली होउ, पुच्छई त महामुणिं ॥१३॥

अन्वयार्थ —(तहिं—तत्र) वहां (दिओ—द्विज) ब्राह्मण (विजयघोष) (तस्स—तस्य) उस मुनि के (क्खेव पमोक्खं—आक्षेपप्रमोक्षम्) आक्षेप का उत्तर देने में (अचयन्तो—अशक्नुवन्) असमर्थ होता हुआ (सपरिसो—सपरिषत्) सभा के सहित (पजली—प्राञ्जलि)(त—उम)(महामुणिं—महामुनिम) (पुच्छइ—पृच्छति) पूछता है ।

मूलार्थ—उस मुनि के आक्षेपो का उत्तर देने मे असमर्थ हुआ वह ब्राह्मण विजयघोष अपनी मडली के साथ हाथ जोड़कर उस महामुनि (जयघोष) से पूछने लगा ।

वेयाण च मुह बूहि, बूहि जन्नाण ज मुह ।
नक्खत्ताण मुह बूहि, बूहि धम्माण वा मुह ॥१४॥

अन्वयार्थ—(वेयाण—वेदानाम्) वेदो के (मुह—मुख) मुखको (बूहि—ब्रूहि) बोलो। (जन्नाण—यज्ञानाम्) यज्ञो का (ज—यत्) जो (मुह—मुख है) वह (बूहि—ब्रूहि) बोलो। (नक्खत्ताण—नक्षत्राणाम्) नक्षत्रो का (मुह—मुखको) (बूहि—बोलो) (वा—अथवा) (धम्माण—धर्माणाम्) धर्मो का (मुह—मुख को) (बूहि—बोलो) ।

मूलार्थ—वेदो के मुख को जानते हो तो बताओ। यज्ञो के मुख को, नक्षत्रो के मुख को तथा धर्मो के मुख को बताओ ।

जे समत्था समुद्धत्तुं, परमप्पाणमेव य ।
एय मे ससय सव्व, साहू कहसु पुच्छिओ ॥१५॥

अन्वयार्थ—(जे—ये) जो (परमप्पाण—परमात्मानम्) (एव—ही) (य—और) अपने और दूसरे को (समुद्धत्तु—समुद्धर्तुम्) उद्धार करने के लिए (समत्था—समर्था) समर्थ है (एय—एतम्) इस (सव्व—सर्वम्) सब (मे—मम) मेरे (ससय—संशय को) (साहू !—हे साधो !) मया (पुच्छिओ—पृष्ट) मैंने पूछा उसको (कहसु—कथय) कहो ।

मूलार्थ—जो अपनी तथा दूसरो की आत्मा को ससार-सागर से पार करने मे समर्थ हैं। उसे भी कहो। मेरे ये सब सशय हैं। मेरे पूछने पर आप उस विषय मे अवश्य कहें।

अग्गिहुत्तमुहा वेया, जन्नट्ठी वेयसामुह ।
नक्खत्ताण मुह चन्दो, धम्माण कासवो मुह ॥१६॥

अन्वयार्थ —(अग्गिहुत्तमुहा—अग्निहोत्रमुखा) (वेया—वेदा) अग्निहोत्र वेदो का मुख है(जन्नट्ठी—यज्ञार्थी) यज्ञ का अर्थी (वेयसा—वेदसान्) यज्ञ

स वमश्य जो वग्ना वही यन का (मुह—मुख है) (नक्खत्ताण—नक्षत्रा का) (मुह—मुख) (चन्दो—चन्द्र) चन्द्र है (धम्माण—धमाणाम) धर्मों का (मुह——मुख) (कासवा—काश्यप (ऋषभदेव) हैं।

मूलार्थ —अग्निहोत्र वश का मुख है। यन के द्वारा कर्मोंकाशय करना यन का मुख है। चन्द्रमा नक्षत्रा का मुख है और धर्मों का मुख भगवान ऋषभ देव हैं।

जहा चन्द गहाईया, चिट्ठति पजलीउडा।
वन्दमाणा नमसन्ता, उत्तम मणहारिणो ॥१७॥

अन्वयार्थ —(जहा—यथा) जैसे (मणहारिणो—मनोहारिण) मन को हरण करने वाले (गहाइया—ग्रहादिका) नक्षत्रादि तारागण (पजलउडा—प्राञ्जलिपुरा) हाथ जोड कर (उत्तम—प्रधानम) प्रधान (चन्द—चन्द्रम) चन्द्र को (वन्दमाणा—वन्दमाना) वन्दन करते हुए (नमसन्ता—नमस्यन्तम) नमस्कार करते हुए (चिट्ठन्ति—तिष्टन्ति) स्थित हैं। उसी प्रकार इन्द्रादि देव भगवान काश्यप [ऋषभ देव] की सेवा करते हैं।

मूलार्थ —जैसे सर्वप्रधान चन्द्रमा को मनोहर नक्षत्रादि तारागण हाथ जोड कर वन्दना-नमस्कार करते हुए स्थित हैं। उसी तरह इन्द्रादिदेव भगवान ऋषभ जी सेवा करते हैं।

अजाणगा जन्नवाई, विज्जामाहणसपया।
मूढा सज्झायतवसा, भासछन्ना इवग्गिणो ॥१८॥

अन्वयार्थ —[जन्नवाइ—यज्ञवादिन] यज्ञ के कथन करने वाले [अजाणगा—अजनाना] तत्त्व से अनभिज्ञ[विज्जामाहणसपया—विद्याब्राह्मणसपदाम्] विद्या और ब्राह्मण की सपदाम अनभिज्ञ [सज्झायतवसा—स्वाध्यायतपसा] स्वाध्याय और तप से भी [भासछन्ना—भस्माच्छन्ना] भस्म से ढकी हुई [अग्गिणो—अग्नय] अग्नियों की तरह [मूढा—अनभिज्ञ हो।

मूलार्थ—हे यज्ञवादी ब्राह्मणो! तुम ब्राह्मण की विद्या और सपदा से अनभिज्ञ हो। तथा स्वाध्याय और तप के विषय में भी मूढ हो। अत तुम

भस्म से ढकी हुई अग्नि के समान हो। तात्पर्य—भस्म मे ढकी अग्नि ऊपर से शान्त, नीचे गरम रहती है।

जो लोए बम्भणो वुत्तो, अग्गीव महिओ जहा।
सया कुसलस दिट्ठ, त वय बूम माहण ॥१९॥

अन्वयार्थ—(जो—य) जो (लोए—लोके) लोके (बम्भणो—ब्राह्मण) (वुत्तो—उक्त) कहा गया है (जहा—यथा) जैसे (अग्गी—अग्नि) (महिओ—महित) पूजित है (इव—तथा) उसके समान पूजित है। (सया—सहा) (कुसहामदिट्ठ—कुशलसदिष्टम्) कुशलो द्वारा अर्थात् (तीर्थंकरो ने ब्राह्मणो के गुण जो बताए हैं उनसे युक्त जो है (त—उसको (वय—हम) (माहण—ब्राह्मणम्) (बूम—ब्रूम) कहते है।

मूलार्थ—जो कुशलो (तीर्थंकरो) द्वारा ब्राह्मणत्व होने से ब्राह्मण कहा गया है और लोक मे अग्नि के समान पूजित है, उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जो न सज्जइ आगन्तु, पव्वयन्तो न सोयइ॥
रमइ अज्जवयणम्मि, तं वय बूम माहण ॥२०॥

अन्वयार्थ—(जो—जो) (आगन्तु—आगन्तम्) स्वजनादि के आगमन पर (न—नही) (सज्जइ—स्वजति) सग नही करता (पव्वयन्तो—प्रव्रजन्तो) दीक्षित होता हुआ (न—नही (सोयइ—शोचति) सोच नही करता है (अज्जवयणम्मि—आर्यवचने) महापुरुषो के वचन मे (रमइ—रमते) मन लगाता है (त—उसे) (वय—हम) (माहण—ब्राह्मण) (बूम—ब्रूम) कहते है।

मूलार्थ—जो आये हुये (स्वजनादि) मे आसक्त नही होगा दीक्षित होने पर (स्थानान्तर गमन) मे सोच नही करता और महापुरुषो के वचनो मे श्रद्धा करता है उसे हम ब्राह्मण कहते है।

जालरूप जहामट्ठ, निद्धन्तमलपावगं।
रागदोसभयाइयं, तं वय बूम माहण ॥२१॥

अन्वयार्थ—(जहा—जम) अग्नि द्वारा (निद्धन्तमलपावग—निध्मातम मलपापकम्) शुद्ध किया गया (जायरुव—जातरूपम्) सुवर्ण (मट्ठ—मष्टम) निर्मल होता है उसी तरह (रागद्दोसभयाइय—रागद्वेषभयातीतम) राग द्वेष और भय से रहित जो है (त—उस) (वय—हम)(माहण—ब्राह्मणम्) ब्राह्मण (बूम—ब्रूम) कहते हैं।

मूलार्थ—जैसे अग्नि द्वारा शुद्ध किया हुआ सुवर्ण तेजस्वी और निर्मल हो जाता है उसी प्रकार राग द्वेष और भय से रहित जो है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

तवस्सिय किस दत, अवचियमससोणिय ।
सुव्वय पत्तनिव्वाण, त वय बूम माहण ॥२२॥

अन्वयार्थ—(तवस्सिय—तपस्विनम्) तपस्वी (किस—कृशम्) दुर्बल (दन्त—दान्तम्) इन्द्रियों का दमन करने वाला (अवचियमससोणिय—अपचित मासशोणितम) जिसका मास और रुधिर कम हो गया है (सुव्वयं—सुव्रतम) व्रतशील (पत्तनिव्वाण—प्राप्तनिर्वाणम्) जिसने परमशाति को प्राप्त किया है (त—उसको) (वय—हम) (माहण—ब्राह्मण) (बूम—ब्रूम) कहते हैं।

मूलार्थ—जो तपस्वी, दुर्बल सयमी जिसका मास रुधिर कम हो गया है और परम शाति को जो प्राप्त हुआ है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

तसपाणे वियाणेत्ता, सगहेण य थावरे।
जो न हिंसइ तिविहेण त वय बूम माहण ॥२३॥

अन्वयार्थ—जो (तसपाणे—त्रसप्राणिन) त्रस प्राणियों को और (सगहेण—सग्रहेण) सक्षेप या विस्तार से (थावर—स्थावरान्) (वियाणेत्ता—विज्ञाय) अच्छी तरह जानकर (तिविहेण—त्रिविधेन) मन वचन काया तीन प्रकार से (न हिंसइ—न हिनस्ति) नहीं हिंसा करता है। (त—उसको) (वय—हम) (माहण—ब्राह्मणम्) ब्राह्मण (बूम—ब्रूम) कहते हैं।

मूलार्थ—जो ब्राह्मण त्रस और स्थावर प्राणियों को कम या अधिक रूप से भलीभांति जानकर मन वचन काया तीनों योगों से हिंसा नहीं करता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

कोहा वा जइ वा हासा, लोहा वा जइ वा भया ।
मुस न वयई जो, त वय बूम माहण ॥२४॥

अन्वयार्थ—(जइ—यदि) (कोहा—क्रोधात्) क्रोध से वा (हासा—हास्यात्) हसी से (लोहा—लोभात्) लोभ से वा (भया—भयात्) भय से (जो) (मुस—मृषाम्) झूठ को (न वयइ—न वदति) नही बोलता है (त—वय) उसको हम (माहण—ब्राह्मणम्) ब्राह्मण (बूम) कहते हैं।

मूलार्थ—जो क्रोध, हसी, लोभ अथवा भय से झूठ नही बोलता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

चित्तमन्तमचिमत्तं वा, अप्प वा जइ वा बहु ।
नगिण्हाइ अदत्त जे, तं वयं बूम माहण ॥२५॥

अन्वयार्थ—(जइ—यदि) जो (चित्तमन्त—चित्तवन्तम्) चेतना वाले (अचित्त—चेतना रहित) (अप्प—अल्पम्) थोडा वा (बहु—बहुम्) बहुत को (अदत्तं—विना दिये हुये को) (न गिण्हाइ—न गृह्णाति) नही लेता है। त—उसे (वय—हम) (माहण—ब्राह्मणम्) ब्राह्मण (बूम—ब्रूम) कहते हैं।
मूलार्थ—यदि जो सचित्त वा अचित्त थोडी वा बहुत वस्तु विना दी हुई को नही लेता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

दिव्वमाणुस्स ते रिच्छं, जो न सेवइ मेहुणं ।
मणसा कायवक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥२६॥

अन्वयार्थ—जो (दिव्वमाणुस्सतेरिच्छ—दिव्यमानुष्यतैरश्चम्) देव, मनुष्य, तिर्यञ्च सम्बन्धी (मेहण—मैथुनम्) मैथुन को (मणसा कायवक्केण—मनसाकायवाचा) मन, वचन, शरीर से (न सेवइ—न सेवते) सेवन नही करता है। (त—उसे) (वय—हम) (माहण—ब्राह्मणम्) ब्राह्मण (बूम—ब्रूम) कहते हैं।

मूलार्थ—जो देव, मनुष्यतिर्यञ्च सम्बन्धी मैथुन को मन, वचन, शरीर से सेवन नही करता है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जहा पोम जले जाय, नोवलिप्पइ वारिणा।
एव अलित्त कामेहि त वय बूम माहण ॥२७॥

अन्वयार्थ—(जहा—जस) (पोम—पद्मम) कमल (जल—जल म) (जाय—जातम) उत्पन्न हुआ और (वारिणा—जल स) (नोवलिप्पइ—नाप लिप्यत) उपलिप्त नहीं होता है। (एव—उसी प्रकार) जो (कामेहि—काम) कामभोग (अलित्त—अलिप्तम) नहीं लिप्त रहता है [त—उस] [वय—हम] [माहण—ब्राह्मणम] (बूम—ब्रूम) कहते हैं।

मूलार्थ—जैसे जल में पैदा हुआ कमल जल से मिला नहीं रहता है उसी प्रकार जो कामवासनाओं में उत्पन्न हुआ उनमें लिप्त नहीं रहता हम उसको ब्राह्मण कहते हैं।

अलोलुय मुहाजीवि, अणगार अकिचण।
असत्त गिहत्थेसु त वय बूम माहण ॥२८॥

अन्वयार्थ—(अलोलुय—अलोलुपम) लोलुपता से रहित (मुहाजीवि—मुधाजीविनम) निर्दोष) भिक्षा वृत्ति से जीवन चलाने वाला (अणगार—गृह मठादि से रहित) (अकिचण—द्रव्यादि रहित) (गिहत्थेसु—गृहस्थेषु) गृहस्थों में (असत्त—असक्तम) आसक्ति रहित हो (त—उसको) (वय—हम) (माहण—ब्राह्मण) (बूम—कहते हैं।)

मूलार्थ—जो अज्ञात उञ्छवृत्ति वाला है लोलुपता से रहित अनगार और अकिंचन वृत्ति वाला गृहस्थों में आसक्ति न रखने वाला है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

जहित्ता पुव्वसजोग, नाइसगे य बधवे।
जो न सज्जइ भोगेसु, त वय बूम माहण ॥२९॥

अन्वयार्थ—जो (पुव्वसजोग—पूर्वसयोगम) पहले के सम्बन्ध (नाइसग—ज्ञातिसगान्) ज्ञातियों का सग (य—और) (बधवे—बान्धवान्) भाई बन्धुओं को (जहित्ता—हित्वा) छोड़कर (भोगेसु—भोगेषु) भोगों में

(न सज्जइ—न सजति) आमक्त नही होता (त वय ब्रूम माहण—उमको हम ब्राह्मण कहते है ।

मूलार्थ—जो पूर्वसयोग तथा जाति-बन्धुओ के सम्बन्ध को छोडकर भोगो (सासारिक सुखो) मे आमक्त नही रहता उसे हम ब्राह्मण कहते है ।

पसुबन्धा सव्ववेया, जट्ठ पावकम्मुणा ।
न तायन्ति दुस्सील, कम्माणि बलवन्ति हि ॥३०

अन्वयार्थ—(सव्वेया—सर्ववेदा) सभी वेद (पसुबन्धा—पशुबन्धा) पशु के वध-बन्धन के लिए (य—और) (पावकम्मुणा—पापकर्मणा) पाप कर्मका (जट्ठ—इष्टम्) यज्ञ हेतु है। वेद या वेदपाठी (न दुस्सील—दु शीलम्) उस दुराचारी यज्ञकर्त्ता को (न तायन्ति—न त्रायन्ते) रक्षा नही करते (हि—यत) क्योकि (कम्मणि—कर्माणि) कर्म (बलवन्ति—बलवान् होते हैं) ।

मूलार्थ—सब वेद पशुओ के वध-बन्धन के समर्थक हैं और यज्ञ पाप कर्म का कारण है, दुराचारी की रक्षा वे नही करते बल्कि दुर्गति मे पहुँचाते हैं क्योकि कर्म ही बलवान् है । जैसा कर्म वैसा फल ।

न वि मुण्डिएण समणो, न ओकारेण बम्भणे ।
न मुणी रण्णवासेणं, कुसचीरेण न तावसो ॥३१॥

अन्वयार्थ —(मुणिएण—मुण्डितेन) शिर मुडाने से (समणे—श्रमण) साधु (न—नही) (रण्णवासेण—अरण्यवासेन) वन वास करने से (मुणी—मुनि) (नहीं) तथा (कुसचीरेण—कुशचीरेण) कुशलवल्कल मात्र धारण से (तावसो—तापस) तपस्वी (न—नही) होता है ।

मूलार्थ—शिर मुडा देने मात्र से कोई श्रमण नही होता, ओकार मात्र से ब्राह्मण, वन मे निवास मात्र से मुनि तथा कुशवल्कल मात्र धारण करने से कोई तपस्वी नही है । ये सब बाह्य चिन्ह सिर्फ पहचान के लिये हैं। कार्य सिद्धि का सम्बन्ध तो अन्तरग साधनो से ही है ।

समयाए समणो होइ बम्भचेरेण बम्भणो ।
नाणेण य मुणी होइ तवेण होइ तावसो ॥ ३२॥

अन्वयार्थ—(समयाए—समतया) समभाव से (समणो—श्रमण) श्रमण (होइ—भवति) होता है । (बम्भचेरेण—ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य से (बम्भणो—ब्राह्मण) ब्राह्मण होता है (य—च) और (नाणेण—ज्ञानेन) ज्ञान से (मुणी—मुनि) मुनि (होइ—भवति) होता है । (तवेण—तपसा) तप से (तावसो—तपसा) तपस्वी (होइ—भवति) होता है ।

मूलार्थ—समभाव से श्रमण ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण ज्ञान से मुनि और तप से तपस्वी होता है ।

कम्मुणा बम्भणो होइ, कम्मुणा होइ खत्तिओ ।
वईसो कम्मुणा होइ सुद्दो हवइ कम्मुणा ॥३३॥

अन्वयार्थ—(कम्मुणा—कर्मणा) कर्म से (बम्भणो—ब्राह्मण) (होइ—भवति) होता है । (कम्मुणा—कर्मणा) कर्म से (खत्तिओ—क्षत्रिय) क्षत्रिय (होइ—भवति) होता है । (वईसो—वैश्य) (कम्मुणा —कर्मणा) कर्म से (होइ—भवति) होता है । (सुद्दो—शूद्र) (कम्मुणा—कर्मणा) कर्म से ही । (हवइ भवति) होता है ।

मूलार्थ—(कर्म से ब्राह्मण होता है कर्म से क्षत्रिय होता है, कर्म से वैश्य होता है और कर्म से ही शूद्र होता है ।

एए पाउकरे बुद्धे जेहिं होइ सिणायओ ।
सव्वकम्मविणिम्मुक्कं तं वयं बूम माहणं ३४॥

अन्वयार्थ— [एए—एतान] अनन्तरोक्त धर्मों को जो (बुद्धे—बुद्ध) बुद्ध ने—सर्वज्ञ ने (पाउकरे प्रादुरकार्षीत) प्रकट किया । (जेहिं—य) जिनसे (सिणायओ—स्नातक) (होइ—भवति) होता है । (सव्व—सर्व) सब (कम्मविणिम्मुक्कं—कर्मविनिर्मुक्त) कर्मों से विनिर्मुक्त हो जाता है (तं—त) उसको (वयं—वय) हम (माहणं—ब्राह्मण) ब्राह्मण (बूम—ब्रूम) कहते हैं ।

मूलार्थ—उस धर्म को बुद्ध ने सर्वज्ञ ने प्रकट किया, जिससे कि यह जीव स्नातक हो जाता है। और कर्मों के बन्धन से मुक्त हो जाता है, उसी को हम ब्राह्मण कहते है।

एवं गुण सामाउत्ता, जे भवन्ति दिउत्तमा।
ते समत्था समुद्धन्तु, परमप्पाणमेव य ।। ३५ ।।

अन्वयार्थ .— (एव- एव) पूर्वोक्त (गुणसमाउत्ता—गुणसमायुक्ता) गुणो मे समायुक्त (जे—ये) जो (दिउत्तमा — द्विजोत्तमा) द्विजोत्तम (भवन्ति—भवन्ति) होते है (ते—ते) (समुद्धन्तु — समुद्धर्तुं) उद्धार करने को (समत्था—समर्था) समर्थ है। (परम्—परम्) पर के (य—च) और (अप्पाण—आत्मान) अपने आत्मा का (एव—एव) एव अवधारणार्थक है।

मूलार्थ.— उक्त प्रकार के गुणो से युक्त जो द्विजेन्द्र है। वे ही स्वात्मा को और पर को ससार समुद्र से पार करने को समर्थ है।

एवं तु संसए छिन्ने, विजयघोसे य वम्भणे।
समुदाय तओ त तु, जय घोसं महामुणि ।। ३६ ।।

अन्वयार्थ — (एव—एव) इस प्रकार (ससए — सशये) सशय के (छिन्ने—छिन्ने) छेदन हो जाने पर (विजयघोसे—विजयघोष) विजयघोस (वम्भणे—ब्राह्मण) ब्राह्मण (य—च) फिर (समुदाय —समादाय) सम्यक् निश्चय कर (तओ—तत) तदन्तर (त—त) उसको (जयघोस—जयघोष) जयघोष (महामुणि—महामुनिम्) महामुनि को पहिचान लिया। (तु—तु) तु वाक्यालकार मे है।

मूलार्थ — इस प्रकार सशयो के छेदन हो जाने पर विजयघोष ब्राह्मण ने विचार करके जयघोष मुनि को पहिचान लिया कि यह मेरा भ्राता है।

तुट्ठे य विजयघोसे, इणमुदाहु कयंजली।
माहणत्तं जहाभूयं सुट्ठु, मे उवदंसियं ।। ३७ ।।

अन्वयार्थ — (तुट्ठे—तुष्ट) तुष्ट हुआ (विजयघोस—विजयघोष) विजयघोष (इणम—इदम्) यह वक्ष्यमाण वचन (कयंजली—कृताञ्जलि) हाथ जोड़कर (उदाहु—उदाह) कहने लगा। (माहणत्त—ब्राह्मणत्व) ब्राह्मणत्व (जहाभूय—यथाभूत) यथाभूत यथार्थ (सुट्ठु—सुष्ठु) भली भांति (मे—मे) मुझे (उवदंसियं—उपदर्शितम्) उपदर्शित किया।

मूलार्थ —प्रसन्न हुआ विजयघोष हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा कि हे भगवन! आपने ब्राह्मणत्व के यथार्थ स्वरूप को मेरे प्रति बहुत ही अच्छी तरह प्रदर्शित किया है।

तुब्भे जइया जन्नाण तुब्भे वेय विऊ विऊ।
जोईसंगविऊ तुब्भे तुब्भे धम्माण पारगा ॥३८॥

अन्वयार्थ—(तुब्भे-यूय) आप (जन्नाण-यज्ञाना) यज्ञों के (जइया यष्टार) यजन करने वाले हैं। (तुब्भे—यूय) आप (वेयविऊ-वेदविद) वेदों के वेत्ता हैं (विऊ विद) विद्वान हैं। (तुब्भे यूय) आप (जोइसंग विऊ ज्योतिषाङ्ग विद) ज्योतिषांग के पंडित हैं। (तुब्भे यूय) आप (धम्माण धर्माणां) धर्मों के (पारगा पारगा) पारगामी हैं।

मूलार्थ—हे भगवन आप यज्ञों के करने वाले हैं आप वेदों के ज्ञाता वेद विद्या के पंडित हैं। आप ज्योतिषांग के वेत्ता और धर्मों के पारगामी हैं।

तुब्भे समत्था उद्धत्तुं परमप्पाणमेव य
तमणुग्गहं करेहम्हं भिक्खेण भिक्खु उत्तमा ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थ —[तुब्भे यूय] आप [समत्था समर्था] समर्थ हैं [उद्धत्तु समुद्धर्तुं] उद्धार करने में (परम परम) पर को (य च) और (अप्पाणम आत्मानम) अपने आत्मा को (एव एव) पापपूत में है [तम—तत्] इसलिए [भिक्खेण भैक्षेण] भिक्षा से [अम्हं अस्माकं] हमारे ऊपर [अणुग्गहं अनुग्रहं] अनुग्रह [भिक्खु उत्तम भिक्षूत्तमा] हे भिक्षुओं में उत्तम [करेह कुरुत] करो।

मूलार्थ — हे परमोत्तम भिक्षु आप अपने और पर के आत्मा का उद्धार करने

मे समर्थ हो। इसलिए आप भिक्षा द्वारा हमारे ऊपर अनुग्रह करो।

न कज्जं मज्झ भिक्खेण खिप्पं निक्खमसू दिया ।
मा भमिहिसि भयावट्टे घोरे संसारसागरे ॥ ४०

अन्वयार्थ— [मज्झ-मम] मुझे [भिक्खेण-भैक्षेण] भिक्षा मे [न कज्जं-न कार्यं] कार्य नही है, [दिया-द्विज] [खिप्प-क्षिप्र] शीघ्र ही [निक्खमसू-निष्क्राम] दीक्षा को ग्रहण कर [भयावट्टे-भयावर्ते] भयो के आवर्तवाले [घोरे-घोरे] भयकर [संसारसागरे-संसार] संसार रूप समुद्र मे [मा भमिहिसि- मा भ्रम] भ्रमण मत कर

मूलार्थ – हे द्विज! मुझे भिक्षा मे कोई प्रयोजन नही तू शीघ्र ही दीक्षा ग्रहण कर और भयो के आवर्तवाले इस घोर संसार सागर मे भ्रमण मत कर।

उवलेवो होइ भोगेसु अभोगी नोवलिप्पई ॥
भोगी भमइ संसारे अभोगी विप्पमुच्चई ॥४१॥

अन्वयार्थ – (उवलेवो—उपलेप) कर्मो का उपलेप (भोगेसु—भोगेषु) कामभोगो मे (होइ— भवति) होता है। (अभोगी—अभोगी) अभोगी जीव (नोवलिप्पइ—नोपलिप्यते) कर्मो से लिप्त नही होता। (भोगी—भोगी) भोगी जीव (संसारे—संसारे) संसार मे (भमइ—भ्राम्यति) भ्रमण करता है (अभोगी—अभोगी) अभोगी जीव (विप्पमुच्चई—विप्रमुच्यते) कर्म-बंधन से छूट जाता है।

मूलार्थ— कर्मो का उपचय भोगो मे होता है, और अभोगी जीव कर्मो से लिप्त नही होता, तथा भोगी संसार मे भ्रमण करता है और अभोगी बंधन से छूट जाता है।

उल्लो सुक्खो य दो छूढा, गोलया मट्टियामया ॥
दो वि आवडिया कुड्डे जो उल्लो सोऽत्थ लग्गई ॥४२॥

अन्वयार्थ – (उल्लो—आर्द्र) आर्द्र (य—च) और (सुक्खो—शुष्क)

प्रधान धर्म को श्रवण करके दीक्षित हो गया।

खवित्ता पुव्वकम्माइं, संजमेण तवेण य।
जयघोसविजयघोसा, सिद्धिं पत्ता अणुत्तरं ॥४५॥
त्ति बेमि

अन्वयार्थ :— [खवित्ता—क्षपयित्वा] क्षयकर के [पुव्वकम्माइं—पूर्वकर्माणि] पूर्व कर्मों को [संजमेण—संयमेन] संयम से [य—च] और [तवेण—तपसा] तप से [जयघोस विजयघोसा—जयघोषविजयघोषौ] जयघोष और विजयघोष [अणुत्तरं—अनुत्तरां] सर्वप्रधान [सिद्धिं—सिद्धिं] सिद्ध को [पत्ता—प्राप्तौ] प्राप्त हुए [त्ति-बेमि—इति ब्रवीमि] इस प्रकार मैं कहता हूँ।

मूलार्थ :— संयम और तप के द्वारा पूर्व कर्मों को क्षय करके जयघोष और विजयघोष दोनों सर्वप्रधान सिद्धगति को प्राप्त हो गये।

इति जन्नइज्जं पंञ्चवीसइमं अज्झयणं समत्तं ॥२५॥
इति यज्ञीयं पञ्चविंशतितममध्ययनं
समाप्तम् ॥२५॥

यह यज्ञीय नामक पच्चीसवाँ अध्ययन समाप्त हुआ।

अह मोक्खमग्गगई अट्ठावीसइम अज्झयण

अथ मोक्षमार्गगतिरष्टाविंशतितममध्ययनम

मोक्खमग्गगइ तच्च, सुणेह जिणभासिय ।
चउकारण सजुत्त, नाणदसण लक्खण ॥ १ ॥

अन्वयार्थ — (मोक्खमग्गगइ—मोक्षमार्गगति) मोक्षमार्ग की गति को (तच्च—तथ्या) यथार्थ (जिणभासिय—जिनभाषिताम) जिनभाषित और चउकारण सजुत्त) (चउकारण सजुत्त—चतु कारणसयुक्ता) चार कारण से सयुक्त (नाणदसणलक्खण—ज्ञान दर्शन—जिसका लक्षण है) (सुणेह—शृणुत सुनो ।

मूलार्थ—चार कारणों से युक्त ज्ञान और दर्शन जिसके लक्षण हैं। ऐसा जिन भाषित मार्ग की यथार्थ गति को तुम मुझसे सुनो ।

नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा ।
एस मग्गु त्ति पन्नत्तो, जिणेहि वरदसिहि ॥२॥

अन्वयार्थ—(नाण—ज्ञान) ज्ञान (च—च) और (दसण—दर्शन) दर्शन (च—च) समुच्चय अर्थ में है (एव—एव) निश्चयार्थक है (चरित्त—चरित्र) चरित्र (तहा—तथा) उसी प्रकार [तवो—तप] तप [च—च] पुन [एस—एष] यह [मग्गु त्ति—मार्ग इति] मार्ग—इस प्रकार (पन्नत्तो—प्रज्ञप्त) प्रतिपादन किया है (वरदसिहि—वरदर्शिभि) प्रधानदर्शी (जिणेहि—जिन] जिनेन्द्र देवों ने ।

मूलार्थ—प्रधानदर्शी जिनेन्द्रदेवों ने ज्ञान दर्शन चरित्र और तप यह मोक्ष का मार्ग प्रतिपादन किया है ।

नाण च दंसण चेव चरित्तं च तवो तहा ।
एय मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छन्ति सोग्गइं ॥३॥

अन्वयार्थ—[नाण—ज्ञान] ज्ञान [दंसण—दर्शन] दर्शन [च] और [चरित्त—चारित्र] चारित्र [तहा—तथा] इसी प्रकार [तवो—तप] तप [एय—एत] इस [मग्गमणुप्पत्ता—मार्गमनुप्राप्ता] मार्ग को आश्रित हुए [जीवा—जीवा] जीव [सोग्गइ—सुगति] सुगति को [गच्छन्ति—गच्छन्ति] चले जाते हैं [एव-एव] निर्धारण मे [च-च] समुच्चय अर्थ मे है।

मूलार्थ—इस ज्ञान दर्शन चारित्र और तप के आश्रित हुए जीव सुगति को प्राप्त हो जाते हैं।

तत्थ पचविहं नाणं, सुयं आभिनिबोहियं ।
ओहिनाण तु तइय मणनाण च केवलं ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ— (तत्थ—तत्र) उनमे (नाण—ज्ञान) ज्ञान (पचविह—पचविध) पांच प्रकार का है, सुय—श्रुत) श्रुतज्ञान (आभिनिबोहिय—आभिनिबोधिकम्) आभिनिबोधिकज्ञान (तु—तु) और (तइय—तृतीय) तीसरा (ओहिनाण—अवधिज्ञान) अवधिज्ञान (मणनाण—मनोज्ञान)मन पर्यवज्ञान (च—च) और केवल—केवलम्) केवल—ज्ञान।

मूलार्थ.— उनमे ज्ञान पांच प्रकार का है यथा—श्रुतज्ञान आभिनोबोधिकज्ञान, अवधिज्ञान, मन प्रयाय श्रौर केवलज्ञान।

एयं पचविहं नाणं दव्वाण य गुणाण य।
वज्जवाण च सव्वेसिं नाण नाणीहि दसियं ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—)एय—एतत्) यह अन्तरोक्त (पंचविह—पचविध) पचविध (नाण—ज्ञान)ज्ञान (दव्वाण—द्रव्याणा) द्रव्यो का (य—च) और (गुणाण—गुणाना) गुणो का (य—च) तथा (सव्वेसि—सर्वेषा) सर्व (पज्जवाण—पर्यायाणा) पर्यायो का (नाण—ज्ञान) ज्ञान (नाणीहि—ज्ञानभि) ज्ञानियो ने (दसिय—दर्शितम्) उपदेशित किया है, (य—च) समुच्चयार्थक है।

मूलार्थ — ज्ञानी पुरुषों ने द्रव्य गुण और उनके समस्त पर्यायों के जानने के लिए यह पूर्वोक्त पांच प्रकार का ज्ञान बतलाया।

गुणाणमासओ दव्वं एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु उभओ अस्सिया भवे ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ — (गुणाणं—गुणानां) गुणों का (आसओ—आश्रय) आश्रय (दव्वं—द्रव्यं) द्रव्य है (एगदव्वस्सिया गुणा—एकद्रव्याश्रिता गुणाः) एक द्रव्य के आश्रित गुण हैं (उभओ अस्सिया—उभयोराश्रिता) दोनों के जो आश्रित (भवे—भवन्ति) होना यह [पज्जवाणं—पर्यायाणां] पर्यायों का [लक्खणं—लक्षणं] लक्षण है।

मूलार्थ— गुणों के आश्रय को द्रव्य कहते हैं तथा एक द्रव्य के आश्रित जो (वर्ण—रस—गन्धादि तथा ज्ञानादि धर्म) हैं वे गुण हैं और द्रव्य तथा गुण इन दोनों के आश्रित होकर जो रहें उन्हें पर्याय कहते हैं।

धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुग्गल जन्तवो
एस लोगो त्ति पन्नत्तो जिणेहिं वरदंसिहिं ॥७॥

अन्वयार्थ—[धम्मो—धर्म] धर्म [अधम्मो—अधर्म] अधर्म [आगासं—आकाश] आकाश [कालो—काल] काल [पुग्गल—जन्तवो—पुद्गल जन्तव] पुद्गल जीव [एस—एष] यह षड्द्रव्यात्मक [लोगो त्ति—लोक इति] लोक इस प्रकार [पन्नत्तो—प्रज्ञप्त] प्रतिपादन किया है। [वरदंसिहिं—वरदर्शिभि] श्रेष्ठदर्शी [जिणेहिं—जिन] जिनेन्द्रों ने।

मूलार्थ—वरदर्शी जिनेन्द्रों ने इस लोक को धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल और जीव इस प्रकार से षड्द्रव्य रूप प्रतिपादन किया है।

धम्मो अधम्मो आगासं दव्वं इक्किक्कमाहियं
अणंताणि य दव्वाणि कालो पुग्गल जन्तवो ॥८॥

अन्वयार्थ— [धम्मो—धर्म] धर्म [अधम्मो—अधर्म] अधर्म [आगासं—आकाश] आकाश [दव्वं—द्रव्य] द्रव्य [इक्किक्कं—एकैकम्] एक रूप [आहियं—आख्यातम्] कहा गया है। [य—च] और [अणंताणि—

अनन्तानि] अनन्त [दव्वाणि—द्रव्याणि] द्रव्य [कालो—काल] काल [पुग्गल—पुद्गल] [पुग्गलजन्तवो—पुद्गलजन्तव] पुद्गल जीव है।

मूलार्थ—धर्म अधर्म और आकाश ये तीनों एक एक द्रव्य है तथा काल, पुद्गल और जीव ये तीनों अनन्त द्रव्य है अर्थात् ये तीनो द्रव्य सख्या मे अनन्त है।

गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाण लक्खणो
भायण सव्वदव्वाण, नह ओगाह लक्खणं ॥९॥

अन्वयार्थ—[गइलक्खणो—गतिलक्षण] गतिलक्षण [धम्मो—धर्म] धर्मास्तिकाय है, [उ—तु] और [ठाणलक्खणो—स्थितिलक्षण] स्थानलक्षण [अधम्मो—अधर्म] अधर्मास्तिकाय है, [भायण—भाजन] भाजन [सव्वदव्वाण—सर्वद्रव्याणा] सवद्रव्यों का [नह—नभ] आकाश है [ओगाहलक्खण—अवगाहलक्षणम] अवगाह उसका लक्षण है।

मूलार्थ—गति चलने मे सहायता देना, धर्मास्तिकाय का लक्षण है, स्थिति-ठहरने मे सहायक होना अधर्मास्तिकाय का लक्षण है। सवद्रव्यों का भाजन आकाश द्रव्य है। सबको अवकाश देना उसका लक्षण है।

वत्तणालक्खणो कालो, जीवो उवओग लक्खणो
नाणेण दसणेण च सुहेण य दुहेण य ॥१०॥

अन्वयार्थ — (वत्तणालक्खणो—वर्तनालक्षण) वर्तनालक्षण (कालो-काल) काल है, (जीवो-जीव) जीव (उवओगलक्खणो—उपयोगलक्षण) उपयोगलक्षण वाला है। [नाणेण—ज्ञानेन] ज्ञान से [च—च] और [दसण-दर्शनेन] दर्शन से [सुहेण—सुखेन] सुख से [य—च] वा [दुहेण—दुःखेन] दुःख से—जीव जाना जाता है,] य — च] समुच्चय अर्थ हैं।

मूलार्थ— वर्तना काल का लक्षण है, उपयोग [ज्ञानादि व्यापार] जीव का लक्षण है, और वह [जीव] ज्ञान, दर्शन, सुख और दुःख से जाना जाता है।

नाण च दसण चेव, चरित्तं च तवो तहा
वीरिय उवओगो य एय जीवस्स लक्खणं ॥११॥

अन्वयार्थ—[नाण—ज्ञान] ज्ञान [च—च] और [दसण—दर्शनं] दर्शन

[च—च] पुन [एव—एव] अवधारणाथ म है [चरित—चरित्र] चरित्र [तहा—तथा] तथा [तवा—तप][वीरिय—वीय] वीय और [उवओगा—उपयोग] उपयोग [एव—एतत] यह [जीवस्य—जीवस्य] जीवका [लक्खण लक्षणम] लक्षण है।

मूलाथ—ज्ञान-दशन चारित्र तप वीय और उपयोग—ये सब जीव के लक्षण है।

सद्दधयार उज्जोओ पभाछायाऽऽतवो इ वा
वण्णरसगधफासा पुग्गलाण तु लक्खण ॥१२॥

अवयाथ—(सद्दधयार उज्जोओ—शब्दान्धकार उद्योत) शब्द अधकार उद्योत (पभाछायाऽऽतवो—प्रभाच्छायाऽऽतप) प्रभा छाया आतप (वा—वा) समुच्चयाथक है (वण्णरसगधफासा—वणरसगधस्पर्शा) वण रस गध स्पश (पुग्गलाण—पुद्गलाना) पुद्गलो का [लक्खण—लक्षणम] लक्षण है [तु—तु]पुन [इति—इति] आद्याथक है।

मूलाथ—शब्द अधकार उद्योत—प्रकाश प्रभा —कान्ति छाया आतप वणरस गध और स्पश ये सब पुद्गल के लक्षण है।

एगत्त च पुहत्त च सखा सठाणमेव य ।
स जोगा य विभागा य पज्जवाण तु लक्खण ॥१३॥

अवयाथ—[एगत्त—एकत्व] एकत्व [च—च]और [पुहत्त —पथक्त्व] पथक्त्व [च—च] पुन [सखा—सख्या] सख्या [य—च] और [सठाण—सस्थान] सस्थान [एव—एव] निश्चय अथ म है [सजोगा—सयोगा] सयोग [य—च] और [विभागा—विभाग] विभाग [य—च] समुच्चय म है [पज्जवाण—पर्यायाणापर्यायों] का [तु—तु] पादपूर्ति म [लक्खण—लक्षणम] लक्षण है।

मूलाथ—एकत्व—इकट्ठा होना पृथक्त्व—जुदा होना सख्या सस्थान —आकार सयोग और विभाग ये सब पर्यायो के लक्षण अर्थात असाधारण धम है ?

जीवाऽजीवा य बधो य, पुण्ण पावाऽऽसवो तहा ।
सवरो निज्जरा मोक्खो, सन्त्येए तहिया नव ॥१४॥

अन्वयार्थ—[जीवा जीवा—जीवा जीवा,]जीव और अजीव [य—च] तथा [वन्धो—वन्ध] वन्ध [पुण्ण—पुण्य] पुण्य[तहा—तथा] तथा [पावाऽऽसवा—पापास्रवौ] पाप आश्रव [सवरो—सवर]सवर [निज्जरा—निर्जरा] निर्जरा [मोक्खो—मोक्ष] मोक्ष [एए—एते] ये [तहिया—तथ्या] तथ्य—पदार्थ [नव—नव] नव [सन्ति—सन्ति] है।

मूलार्थ—जीव अजीव वन्ध पुण्य पाप आश्रव, सवर निर्जरा और मोक्ष ये नौ पदार्थ है।

तहियाणं तु भावाणं, सब्भावे उवएसणं
भावेण सद्दहंतस्स, सम्मत्तं तं वियाहिय ॥१५॥

अन्वयार्थ.—(तहियाण—तथ्याना) तथ्य (भावाण—भावाना) भावो के [सब्भावे—सद्भावे] सद्भाव मे [तु—तु] जो भी [उवएसण—उपदेशनम्] उपदेश है [भावेण—भावेन] अन्त करण मे [सद्दहतस्स—श्रद्दधत] श्रद्धा करनेवाले का [सम्मत्त—सम्यक्त्व] सम्यक्त्व [त—तद्] वह [वियाहिय—व्याख्यातम्] कथन किया गया है।

मूलार्थ—जीवाजीवादि पदार्थो के सद्भाव मे स्वभाव से या किसी के उपदेश से भावपूर्वक जो श्रद्धा, उसे सम्यक्त्व कहते है।

निसग्गुवएसरुई, आणारुई सुत्त वीयरुइमेव
अभिगम-वित्थाररुई, किरिया-सखेव-धम्मरुई ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ—(निसग्गुवएसरुई,-निसर्गोपदेशरुचि) निसर्गरुचि उपदेशरुचि [आणारुई— आज्ञारुचि] आज्ञारुचि [सुत्तवीयरुइमेव—सूत्र—वीजरुचिरेव] सूत्ररुचि बीजरुचि] एव] समुच्चय अर्थ मे है। [अभिगमवित्थाररुई— अभिगमविस्ताररुचि] अभिगमरुचि, विस्ताररुचि [किरिया—सखेव—धम्मरुई—क्रिया—सक्षेपधर्मरुचि] क्रियारुचि, सक्षेपरुचि, धर्मरुचि

करना है, उसे निसर्गरुचि अर्थात् निसर्गरुचि-सम्यक्त्व-वाला कहते हैं।

एए चेव उ भावे, उवइट्ठे जो परेण सद्दहई।
छउमत्थेण जिणेण व उवएसरुइ त्ति नायव्वो ॥१९॥

अन्वयार्थ :— (जो—य) जो (परेण—परेण) पर के (व—वा) अथवा (छउमत्थेण—छद्मस्थेन) छद्मस्थ के द्वारा (जिणेण—जिनेन) जिन के द्वारा (उवइट्ठे—उपदिष्टान्) उपदिष्ट कहे गये (एए—एतान्) उन पूर्वोक्त (भावे—भावान्) भावो का (सद्दहई—श्रद्दधाति) श्रद्धा करता है, (उवएसरुइ—उपदेशरुचि) उपदेशरुचि (त्ति—इति) इस प्रकार (नायव्वो—ज्ञातव्य) चाहिये (उ—तु) पादपूर्ति मे (च) पुन (एव) अवधारणार्थक है।

मूलार्थ — जो छद्मस्थ के द्वारा अथवा जिन के द्वारा उन पूर्वोक्त उपदिष्ट भावो को सुनकर श्रद्धा करता है, उसे उपदेशरुचि कहते है।

रागो दोसो मोहो, अन्नाणं जस्स अवगयं होइ।
आणाए रोयतो, सो खलु आणारुई नाम ॥२०॥

अन्वयार्थ—(रागो—राग) राग (दोसो—द्वेष) द्वेष (मोहो—मोह) मोह (अन्नाण—अज्ञान) अज्ञान (जस्स यस्य) जिसका (अवगय—अपगत) दूर (होइ—भवति) हो जाता है, (आणाए—आज्ञया) आज्ञा मे (रोयतो—रोचमान) रुचि करता है (सो—स) (खलु) निश्चय से आणारुई—आज्ञारुचि (नाम) नाम वाला है।

मूलार्थ— जिस पुरुष के राग द्वेष मोह और अज्ञान दूर हो गये है तथा जो आज्ञा मे रुचि करता है, उसको आज्ञा रुचि कहते है।

जो सुत्तमहिज्जन्तो सुएण ओगाहई उ सम्मत्तं।
अंगेण बहिरेण व सो सुत्तरुइ त्ति नायव्वो ॥२१॥

अन्वयार्थ— (जो (सुत—सूत्र) सूत्र को (अहिज्जन्तो—अधीमान) पढता हुआ (सुएण-श्रुतेन) श्रुत से (ओगाहई—अवगाहते) अवगाहन करता है, (सम्मत सम्यक्त्वम्) सम्यक्त्व को (उ—तु) पादपूर्ति मे (अंगेण—अङ्गेन)

अग म (व—वा) अथवा बहिरंग—बाह्यान) बाह्य में (सा—स) (सुत्त—सूत्ररुचि) (त्ति—इति) इस प्रकार (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये।

मूलार्थ — जो जीव अंग प्रविष्ट अथवा अंग बाह्य सूत्रों को पढ कर उनके द्वारा सम्यक्त्व को प्राप्त करता है उसे सूत्र रुचि कहते हैं।

एगेण अणेगाइ पयाइ जो पसरई उ सम्मत्त ।
उदएव्व तेल्लबिंदू सो बीयरुइ त्ति नायव्वो ॥२२॥

अन्वयार्थ— (एगेण—एकेन) एक से (अणेगाणि—अनेकानि) अनेक (पयाइ—पदानि) पदों में (जो—य)जो (पसरई—प्रसरति) फैलता है (उ—तु) वितर्क अर्थ में है (सम्मत्त—सम्यक्त्व) सम्यक्त्व (उदएव्व—उदक इव) उदक में जैसे (तेल्ल बिंदू—तैलबिन्दु)तैल की बिन्दु (सो—स) वह (बीयरुई—बीज रुचि) बीज रुचि (त्ति—इति) इस प्रकार (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये।

मूलार्थ— जैसे जल में डाली हुई तैल की बिन्दु फैल जाती है, उसी प्रकार एक पद से अनेक पदों में जो सम्यक्त्व फैलता है उसे बीज रुचि-सम्यक्त्व जानना चाहिए।

जो होइ अभिगमरुई सुयनाण जेण अत्थओ दिट्ठ
एक्कारस अगाइ पइण्णग दिट्ठिवाओ य ॥२३॥

अन्वयार्थ - (सो—स) वह (होइ—भवति) होता है (अभिगमरुई—अभिगमरुचि) अभिगमरुचि (सुयनाण—श्रुतज्ञान) (जेण—येन) जिसने (अत्थओ—अर्थत) अर्थ से (दिट्ठ—दृष्टम्) देखा है (एक्कारस अगाइ—एकादशाङ्गानि) ग्यारह अंग (पइण्णग—प्रकीर्णकानि) प्रकीर्ण (दिट्ठिवाओ—दृष्टिवाद) दृष्टिवाद (य—च)और—उपांगसूत्र।

मूलार्थ – जिसने ग्यारह अंग प्रकीर्ण दृष्टिवाद और उपांगादि सूत्रों में अर्थ द्वारा श्रुतज्ञान को देखा है उसे अभिगमरुचि कहते हैं।

दव्वाण सव्वभावा सव्वपमाणेहि जस्स उवलद्धा
सव्वाहि नयविहीहि वित्थाररुइत्ति नायव्वो ॥२४॥

अन्वयार्थ - (दव्वाण—द्रव्याणां) द्रव्यों के (सव्वभावा—सर्वभावाः) सर्व भाव (सव्वपमाणेहि—सर्वप्रमाणैः) सब प्रमाणों से (जस्स—यस्य) जिसको (उवलद्धा—उपलब्धाः) उपलब्ध है (सव्वाहिं—सर्वैः) सब (नयविहीहिं—नयविधिभिः) नयविधियों से (वित्थाररुइ—विस्ताररुचिः) विस्ताररुचि (त्ति—इति) इस प्रकार (नायव्वो—ज्ञातव्यः) जानना चाहिये।

मूलार्थ - द्रव्यों के सब भावों को जिसने सर्व प्रमाणों और सर्व नयों से जान लिया है उसको विस्तार रुचि कहते है।

दंसणनाणचरित्ते, तवविणए सच्चसमिइगुत्तीसु
जो किरिया भावरुई सो खलु किरियारुई नाम ॥ २५ ॥

अन्वयार्थ - (दसणनाणचरित्ते-दर्शन ज्ञान चारित्रे) दर्शन ज्ञान चरित्र (तवविणए-तपोविनये) तप विनय (सच्चसमिइ गुत्तीसु-सत्यसमिति-गुप्तिषु) सत्य समिति गुप्तियों मे (जो-य) (किरियाभावरुई-क्रियाभावरुचि,) क्रिया भाव रुचि है, (सो-स) (खलु) निश्चय ही (किरिया-क्रिया) क्रिया (रुई-रुचि) नाम-नाम से प्रसिद्ध है।

मूलार्थ - दर्शन-ज्ञान चारित्र, तप, विनय, सत्य, समिति, और गुप्तियो मे जो क्रिया भाव रुचि है, अर्थात् उक्त क्रियाओं का सम्यक् अनुष्ठान करते हुए सम्यक्त्व को प्राप्त किया है वह क्रिया रुचि-सम्यक्त्व वाला है।

अणभिग्गहियकुदिट्ठी, सखेवरुइत्ति होइ नायव्वो
अविसारओ पवयणे, अणुभिग्गहिओ य सेसेसु ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ - (अणभिगाहिय कुदिट्ठी—अनभिगृहीत कुदृष्टि) नही ग्रहण की है कुदृष्टि जिसने (सखेवरुइत्ति-सक्षेपरुचिरिति) सक्षेप रुचि इस प्रकार (होइ–भवति) होता है, (नायव्वो–ज्ञातव्य) जानना चाहिये (अविसारओ—अविशारद) विशारद नही है (पवयणे–प्रवचने) प्रवचन मे (य–च) तथा (अणभिग्गहिओ–अनभिगृहीत) अनभिगृहीत है (सेसेसु–शेषेषु) शेष कपिलादि मतो मे।

मूलार्थ –जो जीव असत् मत या वाद मे फसा हुआ नही और वीतराग के प्रवचन मे भी नहा है किन्तु उनकी श्रद्धा शुद्ध है इसे सक्षेप रुचि कहते है।

जो अत्यिकायधम्म सुयधम्म खलु चरित्तधम्म च
सद्दहइ जिणाभिहिय सो धम्मरुइत्ति नायव्वो ॥२७॥

अन्वयार्थ —(जो—य) जो (अत्थिकायधम्म—अस्तिकायधर्म) अस्तिकायधर्म (च) और (सुयधम्म—श्रुतधर्म) श्रुतधर्म (खलु) निश्चयार्थक है (चरित्तधम्म—चरित्तधर्म) चरित्र धर्म का (जिणाभिहिय—जिनाभिहित) जिन कथित का (सद्दहइ—श्रद्धत्ते) श्रद्धान करता है (सो—स) वह (धम्मरुइ—धर्मरुचि) धर्मरुचि (त्ति—इति) इस प्रकार (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये।

मूलार्थ —जो जीव जिनप्ररूपित अस्तिकायधर्म (द्रव्यादिरूप) श्रुतधर्म-(शास्त्रप्रवचनरूप) और चरित्र धर्म (समितिगुप्त्यादिरूप) का यथार्थरूप से श्रद्धान करता है वह धर्म रुचि सम्यक्त्व वाला है।

परमत्थसथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवण वावि
वावन कुद सणवज्जणा, य समत्त सद्दहणा ॥२८॥

अन्वयार्थ —(परमत्थसथवा—परमार्थसस्तव) परमार्थ का सस्तव [वा] अथवा [सुदिट्ठपरमत्थसेवण—सुदृष्टपरमार्थसेवन] भली प्रकार से देखा है परमार्थ जिसने उसकी सेवा करनी [वा] वैया वृत्य करना [अवि-अपि] अपि समुच्चय मे [य—च] और [वावन्नकुदसणवज्जणा—व्यापन्नकुदर्शनवर्जन] सन्मार्ग से पतित कुदर्शनी का त्याग करना [सम्मत्तसद्दहणा-सम्यक्त्वश्रद्धानम्] सम्यक्त्व का श्रद्धा है।

मूलार्थ —परमार्थ तत्व का बार बार गुण गान करना जिन महापुरुषो ने परमार्थ अच्छी भांति देखा है उनकी सेवा शुश्रूषा करना जो सम्यक्त्व से सन्मार्ग से पतित हो गये हैं तथा जो कुदर्शनी असत्य दर्शन मे विश्वास रखते हैं उनकी संगति न करना यह सम्यक्त्व का श्रद्धा है अर्थात इन उक्त गुणो से सम्यक्त्व का श्रद्धा प्रकट होती है।

नत्थि चरित्त सम्मत्त विहूण, दसणे उ भइयव्व
सम्मत्त चरित्ताइ जुगव पुव्व व सम्मत्त ॥२९॥

अन्वयार्थ :— (नत्थि—नास्ति) नहीं है, (चरित्त—चारित्र) चारित्र (सम्मत्त विहूण—सम्यक्त्वविहीन) सम्यक्त्व से रहित (उ—तु) पुन (दंसणे—दर्शने) दर्शन मे (भइयव्व—भक्तव्यम्) चारित्र का भजना है, (सम्मत्त चरित्ताइ—सम्यक्त्वचारित्रे) सम्यक्त्व और चारित्र (जुगव—युगपत्) एक समय मे हो तो (पुव्व—पूर्व) प्रथम-पूर्व (सम्मत्त—सम्यक्त्व) सम्यक्त्व होगा (व) परस्पर अपेक्षा मे है।

मूलार्थ :— सम्यक्त्व के विना चारित्र नहीं हो सकता और दर्शन मे उसकी-चारित्र की-भजना अर्थात् जहाँ पर सम्यक्त्व होता है वहाँ पर चरित्र हो भी और न भी हो तथा यदि दोनो एक काल मे हो तो उनमे सम्यक्त्व की उत्पत्ति प्रथम होगी।

नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण ॥ ३० ॥

अन्वयार्थ .— (अदंसणिस्स—अदर्शनिन) दर्शनरहित को (न) नहीं होता (नाण—ज्ञान) ज्ञान (नाणेण विना—ज्ञानेन विणा) ज्ञान के विना (चरण गुणा—चारित्र गुणा) चारित्र के गुण (न हुंति—न भवन्ति) नहीं होते, (अगुणिस्स—अगुणिनो) चारित्र के गुणो से रहित को (नत्थि मोक्खो—नास्ति मोक्ष) मोक्ष नहीं है, (अमोक्खस्स—अमोक्षस्य) अमुक्त को (नत्थि निव्वाण—नास्ति निर्वाणम्) निर्वाण प्राप्त नहीं होता।

मूलार्थ — दर्शन-सम्यक्त्व से रहित को ज्ञान नहीं होता। ज्ञान के विना चारित्र के गुण प्रकट नहीं होते, चारित्र के गुणो के विना कर्मो से मुक्ति नहीं मिलती और कर्मो से मुक्त हुए विना निर्वाण-सिद्धपद की प्राप्ति नहीं होती।

निस्संकिय-निक्कंखिय निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठीय ॥
उववूह-थिरीकरणे वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थ — (निस्संकिय—निःशंकित) शंका रहित (निक्कंखिय—निःकांक्षित) आकांक्षा रहित (निव्वितिगिच्छा—निर्विचिकित्स्यम्) फल मे सन्देह रहित (य—च) और (अमूढदिट्ठी—अमूढदृष्टि) अमूढदृष्टि (उववूह—थिरीकरणे—उपबृंहास्थिरीकरणे) गुण कीर्तन धर्म मे स्थिर करना [वच्छल्ल

पभावणे—वात्सल्य प्रभावने] वात्सल्य धर्मप्रभावना [अट्ठ—अष्टौ] आठ।

भावार्थ — निःशंकित निःकांक्षित निर्विचिकित्स्य अमूढदृष्टि उपगूहन स्थिरीकरण वात्सल्य और प्रभावना ये आठ गुण दर्शन के आचार हैं अर्थात् सम्यक्त्व के अंग हैं।

सामाइयत्थ पढमं, छेदोवट्ठावणं भवे बीयं ॥
परिहार विसुद्धीयं सुहुमं तह संपरायं च ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थ — सामायिक [अत्थ—अत्र] यहां पर [सामाइयं—सामायिकम्] सामायिक [पढमं—प्रथमं] प्रथम चारित्र है [छेदोवट्ठावणं—छेदोपस्थापनं] छेदोपस्थापनीय [बीयं—द्वितीयम्] द्वितीय चारित्र [भवे—भवति] है [परिहार विसुद्धीयं—परिहार विशुद्धिकं] परिहार विशुद्धि-तीसरा [तह—तथा] तथा [सुहुमं—सूक्ष्मं] सम्पराय— सम्पराय] सूक्ष्म [संपरायं—साम्परायं] सम्पराय—यह चौथा है [च] समुच्चयार्थ में है।

भावार्थ — प्रथम सामायिक चारित्र द्वितीय छेदोपस्थापनीय तृतीय परिहार विशुद्धि और चतुर्थ सूक्ष्म सम्पराय चारित्र है।

अकसायमहक्खायं, छउमत्थस्स जिणस्स वा
एयं चयरित्तकरं, चारित्तं होइ आहियं ॥३३॥

अन्वयार्थ — [अकसायं—अकषायं] कषाय रहित [अहक्खायं—यथाख्यातं] यथाख्यात है। [छउमत्थस्स—छद्मस्थस्य] छद्मस्थ का [वा] अथवा [जिणस्स—जिनस्य] जिनका होता है। [एयं—एतत्] यह पांचों चारित्र [चयरित्तकरं - चयरिक्तकरं] कर्मों की राशि को रिक्त करने वाला है अतः [चारित्तं—चारित्रम्] चारित्र [होइ—भवति] होता है [आहियं—आख्यातम्] ऐसा कहा गया।

भावार्थ — कषाय से रहित यथाख्यात चारित्र है। वह छद्मस्थ का और जिन (केवली) का होता है। कर्म राशि को खाली करने से इसको सार्थक नाम चारित्र कहा है।

तवो य दुविहो वुत्तो वाहिरब्भतरो तहा
बाहिरो छव्विहो वुत्तो, एवमब्भनरो तहा ॥३४॥

अन्वयार्थ—(तवो—तप) तप (दुविहो—द्विविध) दो प्रकार का (वुत्तो—उक्त) कहा है। (बाहिर—बाह्यम्) बाह्य (तहा—तथा) तथा (अब्भनरो—आभ्यन्तर) आभ्यन्तर [य—च] पुन [बाहिरो—बाह्यम्] बाह्य [छव्विहो—षड्विध] षड्विध छ प्रकार का (वुत्तो—उक्त) कहा है। [एव] इसी प्रकार (अब्भन्तरो—आभ्यन्तर) आभ्यन्तर [तवो—तप.] तप भी षट् प्रकार का है।

मूलार्थ—बाह्य और अभ्यान्तर भेद से तप दो प्रकार का है। उसमे बाह्य के छ भेद है और अभ्यान्तर तप भी छ प्रकार का है।

नाणेण जाणई भावे दसणेण य सद्दहे
चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झई ॥३५ ॥

अन्वयार्थ—[नाणेण—ज्ञानेन] ज्ञान से [भावे—भावान्] भावो को [जाणई—जानाति] जानता है। [य—च] फिर [दसणेण—दर्शनेन] दर्शन से [सद्दहे—श्रद्धत्ते] श्रद्धा करता है। [चरित्तेण] चरित्र से [निगिण्हाई—निगृह्णाति] आश्रवो का निरोध करता है। [तवेण—तपसा] तपसे [परिसुज्झई—परिशुध्यति] यह जीव शुद्ध होता है।

मूलार्थ—यह जीव ज्ञान के द्वारा पदार्थो को जानता है, दर्शन से उन पर श्रद्धान करता है, चरित्र से कर्माश्रवो को रोकता है, और तप से शुद्धि को प्राप्त होता है।

खवेत्ता पुव्वकम्माइ सजमेण तवेण य
सव्वदुक्खपहीणट्ठा, पक्कमन्ति महेसिणो ॥३६ ॥

अन्वयार्थ—[खवेत्ता—क्षपयित्वा] क्षय करके [पुव्वकमाइ—पूर्वकर्माणि] पूर्व कर्मो को [सजमेण—सयमेन] सयम से [य—च] और (तवेण—तपसा) तप से (सव्वदुक्खपहीणट्ठा—प्रहीणसर्वदुःखार्था) जिसमे सब दु ख नष्ट हो जाते है ऐसे सिद्ध पद के वास्ते (महेसिणो—महर्षय) महर्षि लोग (पक्कमन्ति—प्रक्रामन्ति) पराक्रम करते है, (त्ति—इति) परिसमाप्ति मे (बेमि—ब्रवीमि) मैं कहता हूँ।

मूलार्थ—इस प्रकार तप और सयम के द्वारा पूर्व कर्मो का क्षय करके सर्व प्रकार के दु खो से रहित जो सिद्ध पद उसके लिए महर्षि जन पराक्रम करते हैं।

॥ अष्टाविंशाध्ययन समाप्त ॥

अह कम्मप्पयडी तेत्तीसइमं अज्झयणं

अथकर्मप्रकृतिस्त्रयस्त्रिंशत्तममध्ययनम्

अट्ठ कम्माइ वोच्छामि, आणुपुव्वि जहाक्कम
जेहि बद्धो अय जीवो, ससारे परिवट्टई ॥१॥

अन्वयार्थ— (अट्ठ—अष्ट) आठ (कम्माइ—कर्माणि) कर्मों को (वोच्छामि—वक्ष्यामि) कहूँगा (आणुपुव्वि—आनुपूर्व्या) आनुपूर्वी से (जहाक्कम—यथाक्रमम्) क्रमपूर्वक [जेहि—यै] जिन कर्मों से (बद्धो—बद्ध) बधा हुआ (अय) यह (जीवो—जीव) [ससारे—ससारे] ससार में (परिवट्टई—परिवर्तते) परिवर्तन करता है।

मूलार्थ— मैं आठ प्रकार के कर्मों को आनुपूर्वी और यथाक्रम से कहूँगा जिन कर्मों से बधा हुआ यह जीव इस ससार में परिवर्तन करता है।

नाणस्सावरणिज्ज दसणावरण तहा
वेयणिज्ज तहा मोह आउकम्म तहेव य ॥२॥
नामकम्म च गोय च अतराय तहेव य
एवमेयाइ कम्माइ अट्ठेव उ समासओ ॥३॥

अन्वयार्थ—(नाणस्सावरणिज्ज—ज्ञानस्यावरणीय) ज्ञान का आवरण करने वाला ज्ञानावरणीय कर्म [दसणावरण—दर्शनावरण] दर्शनावरणीय [तहा—तथा] तथा [वेयणिज्ज—वेदनीय] वेदनीय कर्म [मोह—मोहम्] मोहनीयकर्म [य—च] और [तहेव—तथैव] इसी प्रकार [आउकम्म—आयु कर्म] आयुकर्म [च] और [नामकम्म—नामकर्म] नामकर्म (च) तथा [गोय—गोत्र] गोत्रकर्म [य—च] पुन (तहेव—तथैव) इसी प्रकार अतराय—अन्तराय] अन्तरायकर्म (एव) इस प्रकार [एयाइ—एतानि] ये [अट्ठेव—अष्टैव] आठ ही [कम्माइ—कर्माणि] कर्म [समासओ—समासत] सक्षेप से कहे हैं। [उ—तु] पादपूर्ति मे है।

मूलार्थ— ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय वेदनीय मोहनीय आयु नाम गोत्र और अन्तराय ये आठ ही कर्म सक्षेप से हैं।

नाणावरणं पचविह सुय आभिणिवोहिय
ओहिनाण च तइय, मणनाण च केवलं ॥४॥

अन्वयार्थ—(नाणावरण—ज्ञानावरण) ज्ञानावरण (पचविह—पञ्चविध) पांच प्रकार का है, (सुय—श्रुत) श्रुत (आभिणिवोहिय—आभिनिबोधिक) अभिनिबोधिक (तइय—तृतीय) तृतीय (ओहिनाण—अवधिज्ञान) अवधिज्ञान (मणनाण—मनोज्ञान) मन पर्यवज्ञान (च) और (केवल—केवलम्) केवलज्ञान।

मूलार्थ—ज्ञानावरणीय कर्म पांच प्रकार का है। यथा—(१) श्रुतज्ञानावरण (२) आभिनिबोधिक ज्ञानावरण (३) अवधिज्ञानावरण (४) मन पर्यव ज्ञानावरण और (५) केवलज्ञानावरण।

निद्दा तहेव पयला, निद्दानिद्दा पयलापयला य
तत्तो य थीणगिद्धी उ पचमा होइ नायव्वा ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ—(निद्दा—निद्रा) निद्रा (तहेव—तथैव) इसीप्रकार (पयला—प्रचला) प्रचला (निद्दानिद्दा—निद्रा) निद्रा (य-च) और (पयलापयला—प्रचला—प्रचला) प्रचला प्रचला (तत्तो—तत) तदनन्तर (य—च) पुन [थीणगिद्धी—स्त्यानगृद्धि) अत्यन्त घोरनिद्रा (पचमा—पचमी) पांचवी (होइ—भवति) होती है, (नायव्वा—ज्ञातव्या) इस प्रकार जाननी चाहिये।

मूलार्थ—निद्रा, निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला और स्त्यानर्द्धि, यह पांच प्रकार की निद्रा जाननी चाहिये।

चक्खुमचक्खूओहिस्स,दसणे केवले य आवरणे
एव तु नवविगप्प नायव्व दसणावरण ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ—चक्खुमचक्खूओहिस्स—चक्षुरचक्षुरवधे) चक्षु अचक्षु अवधि के (दसणे—दर्शने) दर्शन मे (य—च) और (केवले—केवले) केवल ज्ञान मे (आवरणे—आवरणम्) (एव) इस प्रकार (नवविगप्प—नवविकल्प) नौ विकल्प—भेद (दसणावरण—दर्शनावरणम्) दर्शनावरण के (नायव्व—ज्ञातव्य (जानने चाहिये (तु) पादपूर्ति मे

मूलार्थ— चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण और

केवलज्ञानावरण ये चार तथा पूर्वोक्त पाच निद्रा इस प्रकार नौ भेद दर्शनावरणीय कर्म के जानने चाहिये।

वेयणीयं पि य दुविहं सायमसायं च आहियं।
सायस्स य बहू भेया एमेव असायस्स वि ॥७॥

अन्वयार्थ—(वेयणीयंपि—वेदनीयमपि) वेदनीय कर्म भी (दुविहं—द्विविधं) दो प्रकार का (आहियं—आख्यातम्) कहा गया है। (सायमसायं—सातमसातं) साताारूप असातारूप (च) और (सायस्स—सातस्य) साता के (उ-तु) भी (बहू—बहव) बहुत से (भेया—भेदा) भेद हैं (एमेव—एवमेव) इसी प्रकार (असायस्स वि—असातस्यापि) असाता के भी बहुत भेद हैं।

मूलार्थ—वेदनीय कर्म भी दो प्रकार का है १—सातावेदनीय और २—असातावेदनीय। सातावेदनीय के भी अनेक भेद हैं तथा असातावेदनीय भी बहुत प्रकार का कहा गया है।

मोहणिज्जं पि दुविहं दंसणे चरणे तहा।
दंसणे तिविहं वुत्तं चरणे दुविहं भवे ॥८॥

अन्वयार्थ—(मोहणिज्जंपि—मोहनीयमपि) मोहनीय भी (दुविहं—द्विविधं) दो प्रकार का है दंसणे (दर्शन) दर्शन में (तहा—तथा) (चरणे—चरणे) चारित्र में (दंसणे—दर्शने) दर्शन में (तिविहं—त्रिविधं) तीन प्रकार का (वुत्तं—उक्तं) कहा है (चरणे—चरणे) चरण विषयक (दुविहं—द्विविधं) दो प्रकार का (भवे—भवेत्) होता है।

मूलार्थ—मोहनीय कर्म भी दो प्रकार का कहा है, जैसे कि दर्शन में और चरित्र में अर्थात् दर्शन मोहनीय और चारित्रमोहनीय इनमें दर्शनमोहनीय के तीन भेद कहे हैं, और चारित्रमोहनीय दो प्रकार का है।

सम्मत्तं चेव मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तमेव च।
एयाओ तिन्नि पयडीओ, मोहणिज्जस्स दंसणे ॥९॥

अन्वयार्थ—(सम्मत्तं—सम्यक्त्व) सम्यक्त्व (मिच्छत्तं—मिथ्यात्व]

मिथ्यात्व (एव—एव) इसी प्रकार (सम्मामिच्छत्त—सम्यड्मिथ्यात्व) सम्यक्त्व और मिथ्यात्व (य—च) पुन (एयाओ—एता) ये (तिन्नि—तिस्र) तीनो (पयडीओ—प्रकृतय) प्रकृतियाँ (मोहणिज्जस्स—मोहनीयस्य) मोहनीय कर्म की (दसणे—दर्शने) दर्शन मे (चेव) पाद पूर्ति मे है।

मूलार्थ—सम्यक्त्व मोहनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, और सम्यक्त्व मिथ्यात्व मोहनीय, ये तीनो प्रकृतियाँ मोहनीय कर्म की दर्शन विषयक होती हैं अर्थात् दर्शन मोहनीय कर्म की ये तीन प्रकृतियाँ उत्तर भेद हैं।

चरित्तमोहणं कम्मं दुविह तु वियाहियं।
कसायमोहणिज्ज च नोकसायं तहेव य ॥१०॥

अन्वयार्थ—(चरित्तमोहण—चारित्रमोहन) चारित्रमोहनीय (कम्म—कर्म) [दुविह—द्विविध) दो प्रकार का (वियाहिय—व्याख्यातम्) कथन किया है, (कषायमोहणिज्ज—कषाय मोहनीयं) कषायमोहनीय (तहेव—तथैव) उसी प्रकार (नोकसाय—नोकषायमोहनीय] (च) समुच्चयार्थक (य—तु) यावत्।

मूलार्थ—चारित्रमोहनीय कर्म दो प्रकार का कहा है। यथाकषाय मोहनीय और नोकषायमोहनीय।

सोलसविहभेएण कम्मं तु कसायजं।
सत्तविहं नवविहं वा कम्मं च नोकसायजं ॥११॥

अन्वयार्थ—(सोलसविह—षोडशविध) सोलह प्रकार के (भेएण—भेदेन) भेद से (कम्म—कर्म) कर्म (कषायज—कषायजं) कषाय से उत्पन्न होने वाला होता है, (तु) फिर (कम्मं—कर्म) नोकसायज—नोकषाय के कारण से उत्पन होने वाला (सत्तविह—सप्तविधं) सात प्रकार का (वा) अथवा (नवविहं—नवविध) नव प्रकार का होता है।

मूलार्थ—कषायमोहनीय कर्म सोलह प्रकार का है और सात अथवा नव प्रकार का नोकषाय मोहनीय कहा है।

नेरइयतिरिक्खाउ मणुस्साउ तहेव य ।
देवाउय चउत्थ तु आउकम्म चउव्विह ॥१२॥

अन्वयार्थ — (नेरइयतिरिक्खाउ — नरयिकतियगायु) नरयिकायु नरक की आयु तियक की आयु (य च) और (तहेव तथैव) उसी प्रकार (मणुस्साउ मनुष्यायु) मनुष्य की आयु (तु) फिर (चउत्थ चतुथ) चतुथ (देवाउय-देवायु) देवा की आयु (आउकम्म-आयु कम) आयु कम (चउव्विह चतुर्विध) चार प्रकार का है ।

मूलार्थ — आयुकम चार प्रकार का है नरकायु तियगायु मनुष्यायु और देवायु ।

नामकम्म तु दुविह सुहमसुह च आहिय ।
सुहस्स उ बहू भेया, एमेव असुहस्स वि ॥१३॥

अन्वयार्थ — नामकम्म-नामकम (दुविह द्विविध) दो प्रकार का (आहिय आख्यातम) कहा गया है । (सुह-शुभ) शुभ (च) और (असुह अशुभ अशुभ (सुहस्स उ शुभस्यतु) शुभ नाम कम के भी (बहूभेया-बहवो भेदा) बहुत भेद हैं (एमेव-एवमेव) इसी प्रकार (असुहस्स वि अशुभस्यापि) अशुभ के भी बहुत भेद हैं ।

मूलार्थ — नाम कम का दो प्रकार से वणन किया गया है शुभ नाम और अशुभ नाम शुभ नाम कम के बहुत भेद हैं तथा अशुभ नाम कम के भी अनेक भेद हैं ।

गोय कम्म दुविह, उच्च नीय च आहिय ।
उच्च अट्ठविह होइ, एव नीयपि आहिय ॥१४॥

अन्वयार्थ — (गोयकम्म-गोत्र कम) (दुविह द्विविध) दो प्रकार का (आहिय आख्यातम्) कहा है । उच्च उच्च) उच्चगोत्र (च) और (नीय-नीच) नीच गोत्र (उच्च उच्च) उच्च गोत्र (अट्ठविह अष्टविध) आठ प्रकार का (होइ भवति) होता है (एव) इसी प्रकार (नीय पि नीचमपि) नीच गोत्र भी आठ प्रकार का (आहिय आख्यातम) कहा है ।

मूलार्थ — उच्च और नीच भेद से गोत्र कर्म दो प्रकार का कहा गया है। उच्च गोत्र के आठ भेद हैं। इसी प्रकार नीच-गोत्र भी आठ प्रकार का कहा गया है।

दाणे लाभे य भोगे य उवभोगे वीरिए तहा।
पचविहमंतरायं ममासेण वियाहियं ॥१५॥

अन्वयार्थ .— (दाणे-दाने) दान में (लाभे-लाभे) लाभ में (य-च) पुन (भोगे-भोगे) भोग में (य-च) तथा (उपभोगे-उपभोगे) उपभोग में (तहा-तथा) तथा (वीरिए-वीर्ये) वीर्य में (पचविह-पञ्चविध) पांच प्रकार का (अन्तराय-अन्तराय) अन्तराय कर्म (समासेण-समासेन) सक्षेप से (वियाहिय-व्याख्यातम्) कथन किया गया है।

मूलार्थ - अन्तराय कर्म सक्षेप से पांच प्रकार का कथन किया है। यथा-दानान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय।

एयाओ मूल पयडीओ, उत्तराओ य आहिया।
पएसग्ग खेत्त काले य भावं च उत्तरं सुण ॥१६॥

अन्वयार्थ — (एयाओ-एता) ये (मूलपयडीओ—मूलप्रकृतय) मूल प्रकृतियां (य-च) और (उत्तराओ-उत्तरा) उत्तर प्रकृतियां (आहिया-आख्याता) कही गई हैं। (पएसग्ग प्रदेशाग्र) प्रदेशों का-अणुप्रमाण-सेन क्षेत्र (य-च) और (काले-काले) काल (च) तथा (भावं-भाव) भाव उत्तर-उत्तर) इससे आगे सुण—शृणु) श्रवणकर

मूलार्थ — कर्मो की ये पूर्वोक्त मूल प्रकृतियां और उत्तर प्रकृतियां कही गई है। हे शिष्य ? अब तू प्रदेशाग्र क्षेत्रकाल और भाव से इन के स्वरूप को श्रवणकर

सव्वेसिं चेव कम्माण पएसग्गमणतगं।
गंठियसत्ताइय अतो सिद्धाण आहियं ॥१७॥

अन्वयार्थ— (सव्वेसि—सर्वेषा) सब ही (कम्माण-कर्मणा) कर्मो के (पएसग्ग-प्रदेशाग्र) प्रदेशाग्र (अणतग-अनन्तकम्) अनन्त है। (गठियसत्ताईय-

ग्रथिक सत्वानीनम (सिद्धाण—सिद्धाना) सिद्धा के (अना—अन्त) अन्तवर्ति (आहिय—आख्यानम) कथन किये गये हैं। (च) पादपूर्ति म है।

मूलार्थ—सब कर्मों के परमाणु ग्रथिक सत्वानीन अभव्यात्माओं मे अनन्त गुणा अधिक और सिद्धों के अन्तवर्ति कथन किये गये हैं।

सव्वजीवाण कम्मतु सगहे छद्दिसागय ।
सव्वेसु वि पएसेसु सव्व सव्वेण बद्धग ॥१८

अन्वयार्थ— (सव्वजीवाण—सर्वजीवाना) कम्म—कर्मकर्माणु (सगहे—सग्रहे) सग्रहण के योग्य (छद्दिसागय—षडदिशागतम) छ दिशाओ में स्थित हैं (सव्वेसु वि—सर्वेस्वपि) सभी (पएसेसु—प्रदेशेषु) प्रदेशों में (सव्व—सर्व) सर्व ज्ञानावरणादि कर्म (सव्वेण—सर्वेण) सब आत्मप्रदेशों के द्वारा (बद्धग—बद्धकम) बद्ध है (तु) पादपूरणार्थ है।

मूलार्थ—सग्रह करने के योग्य सब जीवों के कर्माणु छः दिशाओं में स्थित हैं और सब कर्माणु सब आत्म प्रदेशों में सब प्रकार से बद्ध हैं।

उदही सरिस नामाण, तीसई कोडि कोडीओ
उक्कोसिया ठिई होई, अतोमुहुत्त जहन्निया ॥१६॥

अन्वयार्थ—उदही सरिस नामाण—उदधिसदृश नाम्ना समुद्र के समान नाम वाले (तीसइ—त्रिंशत) तीस (कोडि कोडीओ—कोटि कोट्य) कोटाकोटि सागरोपम (उक्कोसिया—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट (ठिई—स्थिति) स्थिति (होई—भवति) होती है, (जहन्निया—जघन्यका) जघन्य यून से यून (अतोमुहुत्त—अन्तमुहूर्त) अन्तमुहूर्त की स्थिति होती है।

मूलार्थ—ज्ञानावरणीयादि कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम और जघन्य स्थिति अन्तमुहूर्त की होती है।

आवरणिज्जाण दुण्हपि वेयाणिज्जे तहेव य
अतराए य कम्मम्मि ठिई एसा वियाहिया ॥२०॥

अन्वयार्थ—(आवरणिज्जाण—आवरणयो) आवरण—करने वाले

(दुण्हपि—द्वयोरपि) दोनो ही कर्मो की (य—च) और (तहेव—तथैव) उसी प्रकार (वेयणिज्जे—वेदनीये) वेदनीय कर्म की (य—च) और अतराए—अन्तराये) अन्तराय (कम्मम्मि—कर्मणि) कर्म की (एसा—एषा) यह (ठिई—स्थिति) स्थिति (वियाहिया—व्याख्याता) वर्णन की गई है।

मूलार्थ—ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय तथा वेदनीय और अन्तराय, इन चार कर्मों की स्थिति उक्त प्रकार से वर्णन की गई है।

उदही सरिस नामाण, सत्तरिं कोडि कोडीओ
मोहणिज्जस्स उक्कोसा, अतोमुहुत्तं जहन्निया ॥२१॥

अन्वयार्थ—(उदही सरिसनामाण—उदधिसदृक्नाम्ना) उदधिसदृश नामवाले (सत्तरि—सप्तति) सत्तर (कोडि—कोडीओ—कोटिकोटय) कोटाकोटिसागरोपम (मोहणिज्जस्स—मोहनीयस्य) मोहनीय कर्म की (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट स्थिति है, (जहन्निया—जघन्यका) जघन्य-स्थिति (अतोमुहुत्त—अन्तर्मुहूर्त की है।

मूलार्थ—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीन कोटा कोटि सागरोपम की है और जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण की है।

तेत्तीस सागरोवमा उक्कोसेण वियाहिया
ठिई उ आउकम्मस्स अतो मुहुत्तं जहन्निया ॥२२॥

अन्वयार्थ—(तेत्तीस सागरोमा—त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा) तेतीससागरोपम प्रमाण (उक्कोसेण—उत्कर्षेण) उत्कृष्टता से (ठिई—स्थिति) स्थिति (वियाहिया—व्याख्याता) कथन की गई है (आउकम्मस्स—आयुकर्मण) आयुकर्म की (अतोमुहुत्त—अन्तर्मुहूर्त) अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण (जहन्निया—जघन्यक) जघन्य स्थिति है (तु) प्राग्वत्

मूलार्थ—आयुकर्म की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहर्त प्रमाण और उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की वर्णन की गई है।

उदहीसरिसनामाण वीसई कोडिकोडिओ
नामगोत्ताणं उक्कोसा, अट्ठं मुहुत्त जहन्निया ॥२३॥

अन्वयार्थ—(उक्कोसमिगनामाण=उत्कर्षाद्विनाम्ना) समुद्र मग्न नाम वाले (वीसई कोडिकोडीओ—विंशति कोटिकोटय) बीस कोटाकोटि सागरोपम की (नामगोत्ताणउक्कोसा—नामगोत्रयोरुत्कृष्टा) नाम और गोत्र कर्म की उत्कृष्ट स्थिति है (जहन्निया—जघन्यका) जघन्यस्थिति (अट्ठमुहुत्त—अष्टमुहूर्ता) आठ मुहूर्त की है।

मूलार्थ—नाम और गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम की है और जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त की प्रतिपादन की है।

सिद्धाणणन्तभागो य अणुभागा हवंति उ
सव्वेसुवि पएसग्गं, सव्व जीवेसु इच्छियं ॥२४॥

अन्वयार्थ— (सिद्धाणणन्तभागो य—सिद्धानामनन्तभागश्च) सिद्धों के अनन्तवें भागमात्र (अणुभागा—अनुभागा) अनुभाग—रसविपाक (हवन्ति—भवन्ति) होते हैं (सव्वेसु वि—सर्वेष्वपि) सब अनुभागों में (पएसग्गं—प्रदेशाग्र) प्रदेशों का अग्र—परमाणुओं का परिमाण (स व्वजीवेसु—सर्वजीवेभ्य) सब जीवों से (इच्छियं —अतिक्रान्तम्) अधिक है (तु) पादपूर्ति में है।

मूलार्थ—सिद्धों के अनन्तवें भाग मात्र कर्मों का अनुभाग रस होता है फिर सब अनुभाग में कर्मपरमाणु सब जीवों से अधिक हैं।

तम्हा एएसिं कम्माणं, अणुभागा वियाणिया
एएसिं संवरे चेव, खवणे य जए बुहो ॥२५॥

अन्वयार्थ—(तम्हा—तस्मात्) इसलिये (एएसिं—एतेषाम्) इन (कम्माणं—कर्मणाम्) कर्मों के (अणुभागा—अनुभागान्) अनुभागों को (वियाणिया—विज्ञाय) जानकर के (एएसिं—एतेषाम्) इनके (संवरे—संवरे) संवर में (च) और (खवणे—क्षपणे) क्षय करने में (बुहो—बुधः) तत्त्व का जानने वाला (जए—यतेत) यत्न करे (य) समुच्चय में है (एव) निश्चय में है (त्ति बेमि—इति ब्रवीमि) इस प्रकार मैं कहता हूँ।

मूलार्थ—इसलिए इन कर्मों के विपाक को जानकर बुद्धिमान जीव इनके निरोध और क्षय करने में यत्न करे।

(इति कम्मप्पयडी समत्ता)
इति कर्म प्रकृति समाप्ता
त्रयस्त्रिंशत्तमाध्ययन समाप्त ॥

अह लेसज्झयणंणामचोत्तीसइमं अज्झयणं

अथ लेश्याध्ययनं नाम चतुस्त्रिंशत्तममध्ययनम्

लेसज्झयण पवक्खामि आणुपुव्वि जहक्कम ।
छण्ह पि कम्मलेसाण, अणुभावे सुणेह मे ॥१॥

अन्वयार्थ — (लेसज्झयण-लेश्याध्ययन) लेश्या-अध्ययन को (पवक्खामि-प्रवक्ष्यामि) मैं कहूंगा (आणुपुव्वि-आनुपूर्व्या) आनुपूर्वी और (जहक्कम-यथाक्रमम्) यथा क्रम से (छण्हपि-षण्णामपि) छओं ही (कम्मलेसाण-कर्मलेश्यानाम्) कर्म लेश्याओं के (अणुभावे-अनुभावान्) अनुभावों को (मे-मम) मुझ से (सुणेह-शृणुत) श्रवण करो ।

मूलार्थ — मैं आनुपूर्वी और यथाक्रम से लेश्या-अध्ययन को कहूंगा। तुम छओं कर्म-लेश्याओं के अनुभावों-रसों को मुझ से श्रवण करो।

नामाइ वण्णरसगंध फासपरिणामलक्खण ।
ठाण ठिइ गइ चाऊं लेसाणं तु सुणेह मे ॥२॥

अन्वयार्थ — (नामाइ-नामानि) नाम (वण्णरसगंध फास परिणाम लक्खण-वर्णरसगन्धस्पर्शपरिणामलक्षणानि) वर्ण रसगन्ध स्पर्शपरिणाम लक्षण (ठाण-स्थान) स्थान (ठिइ-स्थिति) स्थिति (गइ-गति) गति (च) और आउ (आयु) (लेसाण-लेश्यानां), (मे-मे) मुझ से (सुणेह-शृणुत) श्रवणकरो (तु) पाद पूर्ति के लिए है ।

मूलार्थ — हे शिष्यो ? तुम मुझ से लेश्याओं के नाम वर्ण रस, गन्ध स्पर्श, परिणाम, लक्षण स्थान, स्थिति गति और आयु के स्वरूप को श्रवण करो।

मूलार्थ —नील लेश्या का वर्ण नीले अशोक वृक्ष के समान चाप पक्षी के परों के सदृश और स्निग्ध वैडूर्यमणि के समान होता है।

अयसीपुप्फसंकासा कोइलच्छद संनिभा
पारेवयगीवनिभा काऊलेसा उ वण्णओ ॥६॥

अन्वयार्थ—अयसी पुप्फ संकासा—अतसी पुष्प संकाशा—अलसी पुष्प के समान (कोइलच्छद सनिभा—कोकिलच्छद सनिभा) कोयल के परों के समान (पारेवयगीवनिभा —पारावतग्रीवानिभा—पारावत —कबूतर की ग्रीवा के सदृश (वण्णओ—वर्णत)वर्ण से (काऊलेसा—कापोतलेश्या (उ—तु) होती है।

मूलार्थ—जिस रग का अलसी का पुष्प होता है, कोयल के पर होते हैं और कबूतर के ग्रीवा गर्दन होती है। इसी प्रकार का कापोतलेश्या का वर्ण—रग होता है।

हिंगुलधाउसंकासा तरुणाइच्च संनिभा
सुयतुंडपईवनिभा, तेओलेसा उ वण्णओ ॥७॥

अन्वयार्थ—(हिंगुलधाउसंकासा—हिंगुलधातु संकाशा) हिंगुल—शिगरफ धातु के सदृश (तरुणाइच्चसंनिभा—तरुणादित्यसंनिभा) तरुणसूर्य के समान (सुयतुंड पईवनिभा—शुकतुण्डप्रदीपनिभा शुक की नासिका और प्रदीपशिखा के समान (तेओलेसा—तेजोलेश्या) तेजोलेश्या (वण्णओ—वर्णत) वर्ण से (उ—तु) जाननी चाहिये।

मूलार्थ—हिंगुल धातु के सदृश तरुण सूर्य के सदृश और शुक की नासिका और प्रदीप शिखा के समान तेजोलेश्या का वर्ण होता है।

हरियालभेय संकासा, हालिद्दाभेयसमप्पभा
सणासणकुसुमनिभा, पम्हलेसा उ वण्णओ ॥८॥

अन्वयार्थ—(हरियालभेयसंकासा—हरितालभेद संकाशा) हरितालखंड सदृश (हलिद्दाभेयसमप्पभा—हरिद्राभेदसमप्रभा) हरिद्राखंड के समान प्रभावाली (सणासणकुसुमनिभा)—सनासनकुसुमनिभा सण के पुष्प और असनपुष्प के तुल्य (पम्हलेसा—पद्मलेश्या) पद्मलेश्या (वण्णओ—वर्णत) वर्ण से (उ-तु) जाननी चाहिये।

मूलार्थ – हरिताल और हलदी के टुकडो के समान तथा सन और असन पुष्प के समान पीला पद्मलेश्या का रग होता है।

सखक्कु दसकासा, खीरपूर समप्पभा
रययहार सकासा, सुक्कलेसाउ वण्णओ ॥९॥

अन्वयार्थ— (सखक्कुन्सकासा—शखाक्कुन्सकाशा) सखअक-मणि विशेष कुन्दपुष्प के सदृश (खीरपूरसमप्पभा—क्षीरपूरसमप्रभा) दूध की धारा के समान प्रभावाली (रययहार सकासा—रजतहारसकाशा) रजत चांदी के हार के समान (सुक्कलेसा—शुक्ललेश्या) शुक्ललेश्या (वण्णओ—वर्णत) वर्ण में [तु] जाननी चाहिए।
मूलार्थ—शख अक (मणिविशेष) मुचकुन्द के पुष्प और दुग्धधार तथा रजत के हार के समान उज्वल वर्ण श्वेत रंग शुक्ललेश्या का होता है।

जह कडुय तुबगरसो , निंबरसो कडुयरोहिणिरसो, वा
एत्तोवि अणतगुणो, रसो य किण्हाए नायव्वो ॥ १०॥

अन्वयार्थ—(जह—यथा) (कडुयतुबगरसो—कटुकतुम्बकरस) कटुक तुम्बक का रस (निंबरसो—निंबरस) नाम का रस (वा) अथवा (कडुय रोहिणिरसो—कटुकरोहिणीरस) कटुकरोहिणी का रस होता है। (एत्तो वि अणतगुणो—एतोऽप्यनन्तगुण) इससे भी अनन्तगुणा कटु रसा (किण्हाए—कृष्णाया) कृष्णलेश्या का (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये (य—च) प्राग्वत।
मूलार्थ—जितना कटु रस कडुवे तुम्बे निंब और कटुरोहिणी का होता है उससे भी अनन्त गुण अधिक कटु रस कृष्ण लेश्या का होता है।

जह तिगडुयस्स य रसो, तिक्खो जह हत्थिपिप्पलीए वा
एत्तो वि अणत गुणो रसो उ नीलाए नायव्वो ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ—[जह—यथा] [तिगडुयस्स—त्रिकटुकस्य] त्रिकटु का [रसो—रस] रस [तिक्खो—तीक्ष्ण] तीक्ष्ण होता है।
[वा] अथवा [जह—यथा] यथा [हत्थिपिप्पलीए—हस्तिपिप्पल्या] गजपीपल का रस होता है। [एत्तो विअणतगुणो—इतोऽप्यनन्तगुण] इससे भी अनन्तगुण अधिक तीक्ष्ण [रसो—रस] [नीलाए—नीलाया] नीललेश्या का (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये। (य—च उ—तु) प्राग्वत
मूलार्थ— नीललेश्या के रस का मध मिर्च और सोंठ तथा गज पीपल के रस से भी अनन्तगुणा तीक्ष्ण समझना चाहिये। —

जह तरुणअंबगरसो तुवर कविट्ठस्स वावि जारिसओ
एत्तो वि अणंतगुणो,रसोउ काऊए नाएव्वो ॥१२॥

अन्वयार्थ—(जहा—यथा) जैसे (तरुणअंबगरसो—तरुणाम्ररस) तरुण—अपरिपक्व—आम्रफल का रस होता है। (वा) अथवा (तुवर कविट्ठस्स—तुवर कपित्थस्य) तुवर और कपित्थ के फल का (जारिसो—यादृश) जैसा रस होता है। (एत्तो वि अणतगुणो— इतोऽप्यनन्तगुण) इससे भी अनंतगुणा अधिक (रसो—रस) रस (उ—तु) निश्चयार्थक है। (काऊए—कापोताया) कापोतालेश्या का (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये (अवि— अपि) पादपूर्ति के लिए है।

मूलार्थ— कापोतलेश्या के रस को कच्चे आम के रस और तुवर वा कपित्थ फल के रस की अपेक्षा अनन्तगुणा अधिक खट्टा समझना चाहिये।

जह परिण यंबगरसो पक्क कविट्ठस्स वावि जारिसओ
एत्तो वि अणंतगुणो रसो उ तेओए नाएव्वो ॥१३॥

अन्वयार्थ—(जह—यथा) यथा (परिणयंबगरसो—परिणताम्रकरस) पके हुए के आम फल का रस होता है,(वा) अथवा (अवि—अपि) पादपूर्ति मे (जारिसओ—यादृश) जैसा (पक्क कविट्ठस्स पक्वकपित्थस्य) पके हुए कपित्थ फल का रस होता है। (एत्तोवि अणतगुणो—इतोऽप्यनन्तगुण) इससे भी अनन्त गुणा अधिक (रसो—रस) तेओए—तेजोलेश्याया (नायव्वो—ज्ञातव्य) जानना चाहिये (उ—तु) प्राग्वत्

मूलार्थ— पके हुए आम्रफल अथवा पके हुए कपित्थफल का जैसा खट्टा मीठा रस होता है। उससे भी अनन्तगुणा अधिक खट्टा मीठा रस तेजो लेश्या का समझना चाहिये।

वरवारुणीए व रसो विविहाण व आसवाण जारिसओ
महुमेरयस्स व रसो, एत्तो पम्हाए परएण ॥१४॥

अन्वयार्थ—(वरवारुणीए—वरवारुण्या) प्रधान मदिरा का (व—इव) जैसा (रसो—रस) रस होता है (वा) अथवा (विविहाण—विविधाना) विविध प्रकार के (आसवाण—आसवाना) आसवो का (जारिसओ—यादृश) जिस प्रकार का रस होता है (वा) अथवा (महुमेरयस्सव—मधु—मैरेयकस्येव) मधु और मैरेयक का (रसो—रस) रस होता है, (एत्तो—इत) इससे (परएण—परकेण) अनन्त गुणा अधिकरस पम्हाए—पद्मायाः) पद्मलेश्या का होता है।

मूलार्थ—प्रधान मदिरा नाना प्रकार के आसव तथा मधु और मरयक नाम की मदिरा का जिस प्रकार का रस होता उससे भी अनन्त गुणा अधिक रस पद्मलेश्या का है।

खज्जूरमुद्दियरसो, खीररसो खडसक्कररसोवा
एत्तो वि अणंतगुणो, रसो उ सुक्काए नायव्वो ॥१५॥

अन्वयार्थ—(खज्जूरमुद्दियरसो—खजूरमृद्वीकारस) खजूर और मनीका—दाख का रस [वा] अथवा [खीररसो—क्षीररस] दूध का रस है (खडसक्कररसो—खण्डशर्करारस) खाड और शक्कर का रस जैसा होता (एत्तोवि अणंत गुणो—इतोप्यनन्तगुण) इससे भी अनन्त गुणा अधिक रस [सुक्काए—शुक्लाया] शुक्ललेश्या का रसो—रस उ—तु नायव्वो—ज्ञातव्य जानना चाहिए।

मूलार्थ—खजूर दाख का रस तथा खाड का रस जैसा मधुर होता है उससे भी अनन्तगुणा शुक्ललेश्या का रस होता है।

जह गोमडस्सगन्धो सुणगमडस्स व जहा अहिमडस्स
एत्तोवि अणंतगुणो लेसाणं अप्पसत्थाणं ॥१६॥

अन्वयार्थ—[जह—यथा] जैसे [गोमडस्स—गोमृतस्य] गौ के मृत शरीर की सुणगमडस्स—श्वनकमृतस्य] मरे हुए कुत्ते व [व—वा] अथवा [अहिमडस्स—अहिमृतस्य] मरे हुए सर्प की गन्ध होती है एत्तोवि अणंतगुणो—इतोप्यनन्तगुण] इससे भी अनन्तगुण अप्पसत्थाणं—अप्रशस्तानां] लेसाणं—लेश्यानाम] लेश्याओं की होती है।

मूलार्थ—जैसे मृतक गौ की अथवा मरे हुए श्वान कुत्ते और मरे हुए सर्प की गन्ध होती है। इससे भी अनन्तगुणा अधिक अप्रशस्त लेश्याओं की होती है।

जह सुरहि कुसुम गन्धो गन्धवासाण पिस्समाणाण
एत्तो वि अणंत गुणो, पसत्थलेसाण तिण्ह पि ॥१७॥

अन्वयार्थ—(जह—यथा) जैसे (सुरभिकुसुम गन्धो—सुरभिकुसुम गन्ध) सुगन्धि वाले पुष्पों की गन्ध होता है तथा (पिस्समाणाण—पिष्यमाणानाम) पिसे हुए (गन्धवासाण—गन्धवासाना] सुगन्धयुक्त पदार्थों की जैसी गन्ध होती है, [एत्तोवि अणंत गुणो—इतोऽप्यनन्त गुण] उससे भी अनन्त गुण गन्ध [तिण्हं पि—तिसृणामपि] तीनों ही [पसत्थलेसाण—प्रशस्तलेश्यानां] प्रशस्त लेश्याओं की होती है।

मूलार्थ—केवडा आदि सुगंधित पुष्पो, अथवा सुगन्ध युक्त घिसे हुए चन्दनादि पदार्थों की जैसी प्रशस्त गन्ध होती है, उससे भी अनन्त गुण प्रशस्त गन्ध इन तीनो ही लेश्याओ की होती है।

जह करगयस्स फासो, गोजिब्भाए य सागपत्ताणं
एत्तो वि अणत गुणो, लेसाण अप्पसत्थाणं ॥१८॥

अन्वयार्थ—[जह—यथा] यथा [करगयस्स—क्रकचस्य] कर पत्र का [फासो—स्पर्श] स्पर्श [वा] अथवा [गोजिब्भाए—गोजिह्वाया] गोजिह्वा का स्पर्श [य—च] और सागपत्ताण—शाकपत्राणाम्] शाकपत्रो का स्पर्श होता है, एत्तोवि अणतगुणो—इतोऽप्यनन्तगुणो] इनसे भी अनन्तगुणा अधिक स्पर्श [अप्पसत्थाण—अप्रशस्तानाम्] अप्रशस्त [लेसाण—लेश्यानाम्] लेश्याओ का होता है।

मूलार्थ—जैसा स्पर्श करपत्र, गोजिह्वा और शाकपत्रो का होता है, उससे अनन्तगुणा अधिक स्पर्श अप्रशस्त लेश्याओ का होता है।

जह बूरस्सव फासो, नवणीयस्स व सिरीस कुसुमाणं
एत्तो वि अणतगुणो, पसत्थ लेसाण तिण्हं पि ॥१९॥

अन्वयार्थ—[जह—यथा] जैसे [बूरस्स—बूरस्य] बूर—नाम की वनस्पति का [फासो—स्पर्श] स्पर्श [नवणीयस्स—नवनीतस्य] नवनीत का स्पर्श [व—वा] अथवा [सिरीस कुसुमाण—शिरीषकुसुमानाम्] सिरस के पुष्पो का स्पर्श होता है, एत्तोवि अणतगुणो—इतोऽप्यनन्तगुण] उनसे भी अनन्तगुण अधिक स्पर्श [तिण्हपि—तिसृणामपि] इन तीनो [पसत्थलेसाण—प्रशस्त लेश्याना] प्रशस्त लेश्याओ का होता है [वि—अपि] प्राग्वत्

मूलार्थ— बूर वनस्पति विशेष, नवनीत-मक्खन और सिरस के पुष्पो का जितना कोमल स्पर्श होता है, उससे अनन्तगुणा अधिक कोमल स्पर्श इन तीनो प्रशस्त लेश्याओ का है।

तिविहो व नवविहो वा, सत्तावीसइ विहेक्कसीओ वा
दुसओ तेयालो वा लेसाणं होइ परिणामो ॥२०॥

अन्वयार्थ— (तिविहो—त्रिविध) त्रिविध (व—वा) अथवा [नवविहो—नवविध] नवविध [वा] अथवा (सत्तावीसइविह—सप्तविंशतिविध) सत्ताईस विध प्रकार (वा) अथवा [इक्कसीओ—एकाशीतिविध] एकासी प्रकार [वा] तथा [दुसओ तेयालो वा—त्रिचत्वारिंशदधिक द्विशतविधो] दो

अन्वयार्थ— (इस्सा—ईर्ष्या) ईर्षा मे युक्त (अमरिसो—अमर्ष.) हठ युक्त (अतवो—अतप) तप न करनेवाला (अविज्जमाया—अविद्या-माया विद्या से रहित, मायावी (अहीरिया—अह्रीकता) लज्जा से रहित (गेही—गृद्धियुक्त) लम्पट (पओसे—प्रद्वेप) अत्यन्त द्वेप करनेवाला (और) (सढे—शठ) असत्यभापी (खुद्दो, साहसिओ, नरो—क्षुद्र , साहसिक नर) नीच और साहसी मनुष्य (एयजोग समाउत्तो—एतद्योग समायुक्त.) इनयोगों वाला (नीललेस—नीललेश्याम्) नीललेश्याको (परिणमे—परिणमेत) परिणामवाला होता है तु— निश्चय ।

मूलार्थ— नीललेश्या के परिणामवाला पुरुप ईर्ष्यालु, हठी, असहनशील तपन करनेवाला, अज्ञानी, मायावी, निर्लज्ज, विपयी-लम्पट, द्वेपी, रसलोभी, शठ-धूर्त प्रमादी, स्वार्थी, आरम्भी, क्षुद्र और साहसी होता है ।

वके वक समायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए ।
पलिउचग ओवहिए, मिच्छदिट्ठी अणारीए ॥२५॥
उप्फालगदुट्ठवाई य तेणे यावि य मच्छरी ।
एयजोग समाउत्तो, काऊलेसं तु परिणमे ॥२६॥

अन्वयार्थ—[वके—वक्र] वचन से कुटिल (वक समायारे—वक्र समाचार) वक्र ही क्रिया करनेवाला (नियडिल्ले—निष्कृतिमान्) छली [अणुज्जुए—अनृजुक] सरलता से रहित [पलिउचग—परिकुन्चक] अपने दोपो को ढाँपनेवाला [ओवहिओ—औपधिक] परिग्रही [मिच्छदिट्ठी—मिथ्या दृष्टि] विपरीत दृष्टि [अणारिए—अनार्य] [उप्फालग दुट्ठवाई—उत्प्रासक-दुष्टवादी] मर्म भेदी और दुष्ट वचन बोलनेवाला [तेणेय—स्तेनश्च] चोरी करनेवाला और [मच्छरी—मत्सरी] पराई सम्पत्ति को न सहन करनेवाला [एय—जोग समाउत्ता] इन योगो मे युक्त [काउलेस—कापोतलेश्याको] [परिणमे—परिणमेत] प्राप्त होता है ।

मूलार्थ —जो पुरुप वक्रकुटिल बोलता है, वक्रआचरण करता, है, कपटी निजी दोपो को ढाँपता है, सरलता से रहित है, मिथ्या दृष्टि तथा अनार्य है । इसी प्रकार दूसरो की गुप्त बात को प्रकट करने वाला, दुष्ट बोलने वाला चोर और इर्ष्यालु मनुष्य कपोत लेश्या से युक्त होता है ।

नीयावित्ती अचवले, अमाई अकुऊहले ।
विणीय विणए दत्ते, जोगव उवहाणव ॥२७॥
पियधम्मे दढधम्मे, अवज्जभीरू हिएसए ।
एय जोग समाउत्तो, तेओलेस तु परिणमे ॥२८॥

अन्वयार्थ—(नीयावित्ती—नीचवृत्ति]नम्रतायुक्त [अचवले—अचपल] चपलता से रहित [अमाइ—अमाया] मायारहित [अकुऊहले—अकुतूहल] हँसी मखौल इन्द्रजाल से रहित [विणीयविणए—विनीतविनय] परम विनयवान [दंते—दान्त] संयमी [जोगवं—योगवान] स्वाध्यायादि करने वाला [उवहाणव—उपधानवान] उपधान आदि तप करने वाला [पियधम्म—प्रिय—धर्मी] धर्मप्रेमी [दढधम्मे—दृढधर्मा] धर्म में दृढ रहने वाला [अवज्जभीरू—अवद्यभीरु] पाप से डरने वाला [हिएसए—हितैषिन]हितैषी—मुक्ति पथ का ढूंढने वाला [एयजोग समाउत्तो—एतद्योगसमायुक्त] इन लक्षणों से युक्त [तेओलेस—तेजो—लेश्याम]तेजोलेश्या को [परिणमे—परिणमति] प्राप्त होता है।

भावार्थ—नम्रता बर्ताव रखने वाला चपलता से रहित छल-कपट से रहित कुतूहल—हंसीठट्ठा और इन्द्रजाल आदि न करने वाला परमविनयी, इन्द्रियदमन स्वाध्याय में ध्यान रखने वाला और उपधान आदि तप का करने वाला धर्मप्रेमी धर्म में दृढ़ता रखने वाला पापभीरु सब का हितैषी पुरुष तेजोलेश्या के परिणामों युक्त होता है।

पयणुक्कोह माणे य, माया लोभे य पयणुए ।
पसंत चित्ते दंतप्पा, जोगव उवहाणव ॥२९॥
तहा पयणुवाई य, उवसंते जिइ दिए ।
एयजोगसमाउत्तो, पम्हलेस तु परिणमे ॥३०॥

अन्वयार्थ—[पयणुक्कोहमाणे—प्रतनुक्रोधमानः] सूक्ष्म क्रोध—और मान वाला [माया लोभे य पयणुए—माया लोभश्च प्रतनुकः] माया—और लोभ का सूक्ष्म—कम करने वाला [पसंतचित्ते—प्रशान्तचित्तः] अत्यन्त [दंतप्पा] (दान्तात्मा—दान्तात्मा) जिसने आत्मा को वश में किया है (जोगवं-योगवान) योगाभ्यासी स्वाध्यायी (उवहाणव उपधानवान्) उपधान तप करने वाला (तहा तथा) (पयणुवाई प्रतनुवादी) कम बोलने वाला (य च) और (उवसंते उपशान्त) शान्त (जिइंदिए जितेन्द्रिय) इन्द्रियों को वश में करने

वाला (एयजोगसमाउत्तो-एतद्-योगममायुक्तः) इन योगो से युक्त पुरुप (पह्मलेसं -पद्मलेश्याम्)पद्मलेश्याको (परिणमे—परिणमेत) परिणत होता है।

मूलार्थ — जिसके कोघ, मान, माया और लोभ वहुत कम है। तथा जो उपशान्तचित और मन का निग्रह करने वाला है। योग और उपधान वाला अत्यल्पभापी, उपशान्त और जितेन्द्रिय है। इन लक्षणो वाला वह पुरुप पद्म-लेश्या वाला होता है।

अट्ट रुद्दाणि वज्जिता, धम्म सुक्काणि साहए।
पसत चित्ते दतप्पा, समिए गुत्ते य गुत्तिसु ॥३१॥
सरागे वीयरागे वा, उवसंते जिइ दिए ।
एयजोग समाउत्तो, सुक्कलेसं तु परिणमे ॥३२॥

अन्वयार्थ — (अट्टरुद्दाणि-आर्त्तरौद्रे) आर्त्तऔर रौद्र ध्यानो को (वज्जित्ता-वर्जयित्वा) त्यागकर (धम्मसुक्काणि-धर्मशुक्ले) धर्म और शुक्ल ध्यान की (साहए-साधयेत्) भावना करे (पसतचित्ते-प्रशान्तचित) अतिशान्त चित्त वाला (दतप्पा-दन्तात्मा) (समिए-समित) समितियो से समिति (गुत्तिसु-गुप्तिभि) गुप्तियो मे (गुत्ते-गुप्त) य-और (सरागे-सराग) राग सहित (वीय-रागे-वीतराग) वा (उवसते-उपशान्त)(जिइदिए-जितेन्द्रिय,)(एयजोगममाउत्तो) इन योगो से युक्त पुरुप (शुक्कलेस—शुक्कललेश्या) शुक्ललेश्या को (परिणमे-परिणमेत) परिणत होता है।

मूलार्थ — आर्त्त और रौद्र इन ध्यानो को त्याग कर जो पुरुप धर्म और शुक्ल इन दो ध्यानो का आमेवन-चिन्तन करता है तथा प्रशान्तचित्त, दमितेन्द्रिय, पाचसमितियो से समिति और तीन गुप्तियो मे गुप्त है, एव अल्प राग वाला अथवा वीतरागी, उपयशमनिमग्न और जितेन्द्रिय है वह शुक्लेश्या से युक्त होता है।

असखिज्जाणो सप्पिणीण, उस्सप्पिणीण जे समया।
सखाईया लोगा, लेसाण हवति ठाणाइं ॥३३॥

अन्वयार्थ — (असखिज्जाण-असख्येयानाम्) असख्येय (ओसप्पिणीण -अवमर्पिणीनाम्) अवसर्पिणीयो के तथा (उस्सप्पिणीण-उत्सर्पिणीनाम्) उत्सर्पिणियो के (जे-ये) जो (समया-समया) समय है (सखाईया,सख्यातीता) (लोगा-लोका) लोक के जितने प्रदेश है उतने ही (लेसाण-लेश्यानाम्) लेश्याओ के (ठाणाइ-स्थानानि) स्थान (हवन्ति-भवन्ति) होते है।

भूलार्थ — असंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणियों के जितने भी समय हैं तथा असंख्यात लोक में जितने आकाश प्रदेश हैं उतने ही लेश्याओं के (शुभ और अशुभ लेश्याओं के) स्थान होते हैं।

मुहुत्तद्ध तु जहन्ना, तेत्तीसा सागरा मुहुत्तहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा किण्हलेसाए ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थ (मुहुत्तद्ध मुहूर्त्तार्द्धम्) अन्तर्मुहूर्त्त (तु) तो (जहन्ना-जघन्या) जघन्य और (तेत्तीसा सागरा त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा) तेतीस सागरोपम (मुहुत्तहिया—मुहूर्त्ताधिका) मुहूर्त्त अधिक (उक्कोसा उत्कृष्टा) उत्कृष्ट (ठिई—स्थिति) (होइ भवति) होती है (किण्हलेसाए-कृष्णलेश्यायाः) कृष्णलेश्या की (नायव्वा-ज्ञातव्या) जाननी चाहिये।

भूलार्थ कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त प्रमाण और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त्त सहित तेतीस सागरोपम प्रमाण होती है ऐसा जानना चाहिए।

मुहुत्तद्ध तु जहन्ना, दसउदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा नीललेसाए ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थ (मुहुत्तद्ध मुहूर्त्तार्द्धम्) अन्तर्मुहूर्त्त (तु) तो (जहन्ना जघन्या) जघन्य (दसउदही दशोदधि) दस सागरोपम (पलिय-पल्योपम) का (असंख भाग—असंख्य भाग) (अब्भहिया अभ्यधिका) असंख्यातवाँ भाग अधिक (नीललेसाए नीललेश्यायाः) नीललेश्या की (उक्कोसा उत्कृष्टा) उत्कृष्ट (ठिई स्थिति) (होइ भवति) होती है ऐसा जानना चाहिये।

भूलार्थ -नीललेश्या की जघन्य स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दस सागरोपम की जानना चाहिये।

मुहुत्तद्ध तु जहन्ना, तिण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा काउलेसाए ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थ (मुहुत्तद्ध-अन्तर्मुहूर्त्त) तो (जहन्ना जघन्य स्थिति) (उक्कोसा उत्कृष्टा) (तिण्णुदही त्र्युदधि) तीन सागरोपम (पलिय-पल्योपमस्य) (असंख भागमब्भहिया असंख्यभागमभ्यधिका) असंख्यातवाँ भाग अधिक (काउलेसाए-कापोतलेश्यायाः) कापोतलेश्या की (ठिई स्थिति) (होइ) होती है (नायव्वा ज्ञातव्या) ऐसा जानना चाहिए।

मुहुत्तद्धं तु जहन्ना, दोण्णुदही पलियमसंखभागमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई नायव्वा तेउ लेसाए ॥३७॥

अन्वयार्थ—(मुहुत्तद्ध-अर्द्धमुहूर्तम् (तु) तो (जहन्ना-जघन्यस्थिति (उक्कोसा-उत्कृष्टा) (दोण्णुदही-द्व्युदधि) दोसागरोपम (पलिय-असंखभाग अब्भहिया-पल्योपमासंख्यभागाभ्यधिका) (तेउलेसाए-तेजोलेश्यायां) तेजोलेश्या की (ठिई-स्थिति) (होइ-होती है। ऐसी (नायव्वा-जाननी चाहिए।

मूलार्थ — तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त मात्र और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दो सागरोपम की जाननी चाहिए।

मुहुत्तद्ध तु जहन्ना, दस उदही होंति मुहुत्तमब्भहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा पम्हलेसाए ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थ — (मुहुत्तद्ध-मुहूर्त्तार्द्धम्) अन्तर्मुहूर्त्त (तु-तो) (जहन्ना-जघन्या) जघन्य स्थिति (दस उदही-दशोदधय) दस सागरोपम (मुहुत्त-मुहूर्त्तम्) अन्तर्मुहूर्त्तम् (अब्भहिया-अभ्यधिका) अधिक (उक्कोसा-उत्कृष्टा) (ठिई-स्थिति) (पम्हलेसाए-पद्मलेश्यायां) पद्मलेश्या की (होइ-होती है) (नायव्या-जाननी चाहिए।)

मूलार्थ — पद्मलेश्या की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दस सागरोपम की जाननी चाहिये।

मुहुत्तद्ध तु जहन्ना, तेत्तीसं सागरा मुहुत्तहिया ।
उक्कोसा होइ ठिई, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थ —(मुहुत्तद्ध-मुहुर्त्तार्द्धम) अन्तर्मुहूर्त्त (तु-तु) तो (जहन्ना-जघन्या) (उक्कोसा-उत्कृष्टा (ठिई-स्थिति) (मुहुत्तहिया-मुहूर्त्ताधिका) अन्तमुहूर्त्त-अधिक (तेत्तिस सागरा-त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा) (शुक्कलेसाए-शुक्ललेश्यायां) (उक्कोसा-उत्कृष्टा (ठिई-स्थिति) (होइ-भवति) होती है (नायव्वा-जाननी चाहिए।

मूलार्थ—शुक्लेश्या की जघन्य स्थिति तो अन्तर्मुहूर्त्त मात्र है और उत्कृष्ट स्थिति एक अन्तर्मुहूर्त्त अधिक तेतीस सागरोपम की जाननी चाहिए।

एसा खलु लेसाणं, ओहेण ठिई उ वण्णिया होइ ।
चउसु वि गईसु एत्तो, लेसाण ठिइं तु वोच्छामि ॥४०॥

दस उदहीपलिओवम, असंखभागं जहन्निया होइ ।
तेत्तीससागराइं, उक्कोसा होइ किण्हाए लेसाए ॥४३॥

अन्वयार्थ - (दम उदहीपलिओवम—दशोदधिपल्योपमा) दमसागरोपम पल्योपम के (असखभाग—असख्यभागधिका) असख्यातवेभागअधिक (जहन्निया—जघन्यका) जघन्यस्थिति (होइ) होती है (किण्हाए—कृष्ण-लेश्याया) कृष्णलेश्याकी (उक्कोमा)उत्कृष्ट स्थिति (तेत्तीससागराइ—त्रयस्त्रिशत्सागरोपमा) तेतीससागरोपम की होइ—होती है।

मूलार्थ—कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति पल्योपम के असख्यातवे भाग अधिक दशसागरोपम की है और उत्कृष्ट स्थिति तेतीससागरोपम की होती है।

एसा नेरइयाणं, लेसाण ठिई उ वण्णिया होइ ।
तेण परं वोच्छामि, तिरियमणुस्साण देवाणं ॥४४॥

अन्वयार्थ— (एमा—यह) (नेरइयाण—नैरयिकाणाम्) नारकियो की (लेमाण ठिई—लेश्याना स्थिति) लेश्याओ की स्थिति (तु—तो) (वण्णिया—वर्णिता) वर्णन की गई (होइ—है) (तेणपर—तेनपरम्) इसके आगे (तिरिय-मनुस्साण—तिर्यङ्मनुष्याणाम्) तिर्यक्-पशु आदि और मनुष्यो की (देवाण—देवानाम्) देवो की स्थिति को (वोच्छामि—वक्ष्यामि) कहूँगा।

मूलार्थ— यह लेश्याओ की स्थिति नारकीय जीवो की कही गई है अब इसके आगे तिर्यक्-पशु-पक्षी, मनुष्य और देवो की लेश्यास्थिति को कहूँगा।

अंतोमुहुत्तमद्धं, लेसाण ठिई जहिं जहिं जा उ ।
तिरियाण नराण वा, वज्जित्ता केवलं लेसं ॥४५॥

अन्वयार्थ— (अतोहमु त्तमद्ध—अन्तर्मुहूर्त्तद्धा) अन्तमुहूर्त काल प्रमाण (लेमाण—लेश्यानाम्) लेश्याओ की (ठिई—स्थिति) (जहिं जहिं—यस्मिन्-यस्मिन्) जहाँ-जहाँ (जा—या) जो (उ—तु) तो कृष्णादिलेश्याये है (तिरिया-ण—तिरश्चाम्) तिर्यचोका(वा)-अथवा (नराण—नराणाम्) नरो की कही है (केवल—केवलाम्) (लेस—लेश्याम्) लेश्याको (वज्जित्ता—वर्जयित्वा) लगाकर।

मूलार्थ –तिर्यच और मनुष्यो मे शुक्ललेश्या को छोडकर अवशिष्ट सब लेश्याओ की जघन्य एव उत्कृष्ट स्थिति केवल अन्तमुहूर्त की हे।

मुहुत्तद्ध तु जहन्ना, ऊक्कोसा होइ पुव्वकोडी उ।
नवहि वरिसेहि ऊणा, नायव्वा सुक्कलेसाए ॥४६॥

अन्वयार्थ– (मुहुत्तद्ध—अन्तमुहूर्तम) अन्तमुहूर्त (तु—तो) (जहन्ना—जघन्य) जघन्य स्थिति (उक्कोसा—उत्कृष्ट) होइ—होती है) (पुव्वकोडी—पूर्वकोटि) पूर्व करोड़ (तु—तो) (नवहि वरिसेहि—नवभिवर्षैः) नव वर्षों से (ऊणा—ऊना) कम (सुक्कलेसाए—शुक्ललेश्यायाः) शुक्ललेश्या की स्थिति (नायव्वा—जानना चाहिए।

मूलार्थ– शुक्ललेश्या की जघन्य स्थिति तो अन्तमुहूर्त की और उत्कृष्टस्थिति नव वर्ष कम एक करोड़ पूर्व की जाननी चाहिए।

एसा तिरियनराणं, लेसाण ठिइ उ वण्णिया होइ।
तेण परं वोच्छामि, लेसाण ठिई उ देवाणं ॥४७॥

अन्वयार्थ– (एसा—एषा) यह (तिरियनराण—तिर्यङ्नराणाम) तिर्यंच और मनुष्यों की (लेसाण—लेश्यानां) (ठिइ—स्थिति) (उ—तु) तो (वण्णिया—वर्णिता) वर्णन की गई (होइ—है) तेणपरं—इसके बाद (देवाण—देवानाम) देवों की (लेसाण—लेश्यानाम) लेश्याओं की ठिइ—स्थिति) (वोच्छामि) कहूँगा।

मूलार्थ– तिर्यंच और मनुष्यों की जो लेश्यायें हैं उनकी स्थिति का तो मैं वर्णन कर दिया। अब इसके बाद देवों की लेश्यास्थिति का मैं कहूँगा।

दसवाससहस्साइं, किण्हाए ठिई जहन्निया होइ।
पलियमसंखिज्ज इमो, उक्कोसा होइ किण्हाए ॥४८॥

अन्वयार्थ— (दसवाससहस्साइं—दशवर्षसहस्राणि) दस हजार वर्ष की (जहन्निया—जघन्या) (किण्हाए—कृष्णायाः) कृष्णलेश्या की (ठिई—स्थिति) (होइ—होती है) (पलियमसंखिज्जइमो—पल्य—पल्योपमासंख्येयभाग) पल्योपम के असंख्यातवें भाग (किण्हाए—कृष्णा की (उक्कोसा—उत्कृष्टा) स्थिति होइ—होती है।

मूलार्थ —कृष्णलेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार और उत्कृष्ट स्थिति [illegible] असंख्यातवें भाग की कथन किया है।

जा किण्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेण नीलाए, पलियमसंख च उक्कोसा ॥४६॥

अन्वयार्थ—किण्हाए—कृष्णाया) कृष्णलेश्या की (जा—या) जो (खलु—निश्चय) निश्चय करके (ठिई—स्थिति) है (सा - वह) स्थिति उ—तु) तो (उक्कोसा—उत्कृष्टा) (समयमब्भहिया—समयाभ्यधिका) एक समय अधिक (जहन्नेण—जघन्येन) जघन्य (नीलाए—नीलाया) नीललेश्या की स्थिति होती है (च—फिर) (उक्कोसा—उत्कृष्ट) उत्कृष्ट स्थिति पलिय—पल्योपम) (असंख—असंख्येयभागा) असंख्यातवां—भाग मात्र होती है।

मूलार्थ—जितनी उत्कृष्ट स्थिति कृष्ण लेश्या की कही गई है वही एक समय अधिक जघन्य स्थिति नीललेश्या की है और नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी है।

जा नीलाए ठिई खलु,उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया ।
जहन्नेण काऊए, पलियमसंखं च उक्कोसा ॥५०॥

अन्वयार्थ—(जा—जो) (नीलाए—नीलाया) नीललेश्या की (ठिई—स्थिति) उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट कही है (सा—उ—सा—तु) वह तो (समय—एक समय (अब्भहिया—अभ्यधिका) अधिक जहन्नेण—जघन्य स्थिति (काऊए—कापोताया)कापोतलेश्याकी होती है (च—और) (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट स्थिति (पलिय —पल्योपमके (असंख—असंख्येय—भागा असंख्यातवे भाग प्रमाण होती है।

मूलार्थ — यावन्मात्र उत्कृष्ट स्थिति नील लेश्या की होती है, एक समय अधिक वही जघन्य स्थिति कापोत लेश्या की है तथा कापोत लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवे भाग प्रमाण है।

तेण परं वोच्छामि, तेऊ लेसा जहा सुरगणाण ।
भवणवइवाणमंतर, जोइसवेमाणियाणं च ॥ ५१ ॥

अन्वयार्थ.— (तेण परम—तेन परम्) इसके बाद (जहा—जिस प्रकार) (भवणवइ—भवनपति) वाणमंतर—वाणव्यन्तर (जोइस—ज्योतिष्क) च—और (वेमाणियाण—वैमानिकानाम्) वैमानिक (सुरगणाण—सुरगणा-

नाम) देवगणा की (जहा—यथा) (तऊरमा—तजा लेश्या) है—उनको (वाच्छामि—वक्ष्यामि) कहूँगा।

मूलार्थ —इसके आगे भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमानिक देवों की जिस प्रकार की तेजो लेश्या है उसको मैं कहूँगा।

पलिओवमजहन्ना, उक्कोसा सागरा उ दुन्नहिया।
पलियमसंखेज्जेण, होइ भागेण तेऊए ॥ ५२ ॥

अन्वयार्थ — (पलिओवम—पल्योपमम) (जहन्ना—जघन्या) जघन्य स्थिति (उक्कोसा—उत्कृष्टा) (दुन्नहिया—द्व्यधिकं) दो अधिक (सागरा—सागरोपम (पलिय—पल्योपमम) पल्योपम के (असंखेज्जेण—असंख्येयेन) असंख्यातवें (भागेण—भागेन) (तेऊए—तेजस्या) तेजो लेश्या की स्थिति —भवति—होती है।

मूलार्थ — तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति एक पल्योपम की होती है। और उत्कृष्ट स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दो सागरोपम की होती है।

दसवाससहस्साइ, तेऊए ठिई जहनिया होइ।
दुन्नुदही पलिओवम, असंख भाग च उक्कोसा ॥ ५३ ॥

अन्वयार्थ — (दसवाससहस्साइ—दशवर्षसहस्राणि) दस हजार वर्ष (तेऊए—तेजो लेश्या) तेजोलेश्या की (जहनिया—जघन्यिका) जघन्य (ठिई—स्थिति) होइ—होती है (दुन्नुदही—द्व्युदधि) दो सागरोपम (पलिओवम—पल्योपम) के (असंखभाग—असंख्य भागाधिका) असंख्यातवाँ भाग अधिक (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट स्थिति होती है।

मूलार्थ —तेजो लेश्या की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की होती है। और उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम के असंख्यातवें भाग सहित दो सागरोपम की होती है।

जा तेऊए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेण पम्हाए, दस उ मुहुत्ताहियाइ उक्कोसा ॥ ५४ ॥

अन्वयार्थ :— (जो—या) जो (तेऊए—तेजो लेश्या की) (ठिई—स्थिति) होती है (सा—वह) उ—तु—तो (उक्कोसा—उत्कृष्टा) उत्कृष्ट कही गई है (समय—एक समय) (अब्भहिया—अभ्यधिका) से अधिक (जहन्नेण—जघन्येन) जघन्य रूपसे (पम्हाए—पद्मलेश्यायाः) पद्म लेश्या की स्थिति होती है (उक्कोसा—उत्कृष्ट स्थिति) (मुहुत्ताहियाइ—मुहूर्त्ताधिका) अन्तर्मुहूर्त्त अधिक दश—दश सागरोपम की होती है (खलु—वाक्यालंकार में)।

मूलार्थ — यावन्मात्र उत्कृष्ट स्थिति तेजो लेश्या की है। वही एक समय अधिक पद्म लेश्या की जघन्य स्थिति है तथा उसकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त अधिक दश सागरोपम की होती है।

जा पम्हाए ठिई खलु, उक्कोसा सा उ समयमब्भहिया।
जहन्नेणं सुक्काए तेत्तीस मुहुत्तमब्भहिया ॥ ५५ ॥

अन्वयार्थ — (जा—या) जो (पम्हाए—पद्म लेश्यायाः) पद्म लेश्या की (ठिई—स्थिति) होती है (साउ—सातु) वह तो (खलु—वाक्यालंकारे) (उक्कोसा—उत्कृष्ट रूप से) कही है (समयमब्भहिया—समयाभ्यधिका) एक समय अधिक (जहन्नेण—जघन्य रूप से) (सुक्काए—शुक्लायाः) शुक्ल लेश्या की स्थिति होती है और (तेत्तीस मुहुत्तमब्भहिया—त्रयस्त्रिंशत्) सागरोपम से (मुहुत्तमब्भहिया—मुहूर्ताभ्यधिका) एक मुहूर्त अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।

मूलार्थ — यावन्मात्र पद्म लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति कही गई है। उससे एक समय अधिक शुक्ल लेश्या की जघन्य स्थिति होती है तथा शुक्ल लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति अन्तमुहूर्त अधिक ३३ सागरोपम की होती है।

किण्हा नीला काऊ, तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जइ ॥ ५६ ॥

अन्वयार्थ :— (किण्हा, नीला, काऊ—कृष्णा, नीला, कापोत लेश्या) (एयाओ—एता) ये (तिन्नि वि—तिस्रोऽपि) तीनों भी (अहम्म लेसाओ—अधर्म लेश्या) अधर्म लेश्याएँ हैं (एयाहि—एताभि) इन (तिहि—तिसृभि) तीनों से (वि—अपि) भी (जीवो—जीव) (दुग्गइ—दुर्गतिम्) दुर्गति में (उववज्जइ—उपपद्यते) उत्पन्न होता है।

मूलार्थ — कृष्ण, नील और कपोत लेश्या ये तीनों अधर्म लेश्याएं हैं। इन लेश्याओं से यह जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है।

तेऊ पम्हा सुक्का, तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जई ॥५७॥

अन्वयार्थ —(तेऊ पम्हा सुक्का—तेजो पद्मा शुक्ला) एयाओ—एता) ये (तिन्निवि—तिस्रोऽपि) तीनों ही (धम्मलेसाओ—धर्मलेश्याः) धर्मलेश्या हैं (एयाहितिहि—एताभिस्तिसृभिः) इन तीनों में ही (जीवो—जीवः) (सुग्गइं—सुगतिम) में (उववज्जई—उपपद्यते) उत्पन्न होता है।

मूलार्थ —तेज पद्म शुक्ल ये तीन धर्मलेश्याएं होती हैं इन तीनों से जीव सुगति में उत्पन्न होता है।

लेसाहिं सव्वाहिं पढमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न हु कस्सइ उववत्ति परे भवे अत्थि जीवस्स ॥५८॥

अन्वयार्थ —(सव्वाहिं—सर्वाभिः) सभी (लेसाहिं—लेश्याभिः) लेश्याएं (पढम समयम्मि—प्रथम समये) प्रथम समय में (परिणयाहिं—परिणताभिः) परिणत होने में तु—तो (कस्सइ—कस्यचित्) किसी (जीवस्स—जीवस्य) जीव की (उववत्ति—उपपत्ति) उत्पत्ति (परभवे—परभव में) (न हु—नखलु) नहीं (अत्थि—अस्ति) होता है।

मूलार्थ —सब लेश्याओं की प्रथम समय में परिणति होने पर किसी भी जीव की परलोक में उत्पत्ति नहीं होती अर्थात् यदि लेश्या को जीव ग्रहण करके एक समय हुआ होता उस समय जीव परलोक यात्रा नहीं करता।

लेसाहिं सव्वाहिं, चरिमे समयम्मि परिणयाहिं तु।
न हु कस्सइ उववत्ति परे भवे अत्थि जीवस्स ॥५९॥

अन्वयार्थ —(सव्वाहिं—सर्वाभिः) सब (लेसाहिं—लेश्याभिः) लेश्या (चरिम—चरम) अन्त (समयम्मि—समय) समय में (परिणयाहि—परिणताभिः) परिणत (परिणत) होने से (कस्सइ—कस्यचित्) किसी (जीवस्स—जीवस्य) जीव की उववत्ति—उपपत्ति) उत्पत्ति (परभवे—परभव में (न हु—न खलु) नहीं (अत्थि—अस्ति) होता।

मूलार्थ—सर्व लेश्याओ की परिणति (परिवर्तन) मे अन्तिम समय पर किसी जीव की उत्पत्ति परभव (परलोक) मे नही होती ।

अंत मुहुत्तम्मि गए अंत मुहुत्तम्मि सेसए चेव ।
लेसाहिं परिणयाहिं जीवा, गच्छंति परलोयं ॥६०॥

अन्वयार्थ—अंतमुहुत्तम्मि—अन्तर्मुहूर्त्ते) अन्तर्मुहूर्त्त (गए—गते) बीतने पर (च) और (अन्तमुहुत्तम्मि—अन्तर्मुहूर्त्ते) अन्तर्मुहूर्त्त (सेसए—शेष) बाकी रहने पर (लेसाहिं—लेश्याभि) लेश्याओ के (परिणयाहिं—परिणताभि) परिवर्तन से (जीवा—जीवा) जीव (परलोयं—परलोकम्) गच्छंति—जाते हैं ।

मूलार्थ—अन्तर्मुहूर्त्त बीतने और अन्तर्मुहूर्त्त के शेष रहने पर लेश्याओ के परिवर्तन होने से जीव परलोक को जाते है ।

तम्हा एयासि लेसाण आणु भावे विय णिया ।
अप्पसत्थाओ वज्जित्ता पसत्थाओऽहिट्ठिए मुणी ॥६१॥

अन्वयार्थ—(तम्हा—तस्मात्) इसलिये (एयासि—एतासाम्) इन (लेसाणं—लेश्यानाम्) लेश्याओ का (आणुभावे—अनुभावान्) रस विशेषो को वियाणिया—विज्ञाय) जानकर (अप्पसत्थाओ—अप्रशस्ता) अप्रशसनीय (वज्जित्ता—वर्जयित्वा) त्याग कर (मुणी—मुनि) साधु (पसत्थाओ—प्रशस्ता। प्रशसनीय लेश्याओ को (अहिट्ठिए—अधितिष्ठेत) अगीकार करे। त्ति बेमि—ऐसा कहता हूँ ।

मूलार्थ—इसलिये इन लेश्याओ के रस विशेष को जान कर साधु अप्रशस्त लेश्याओ को छोड प्रशस्त लेश्याओ को स्वीकार करे ।

इति लेसज्झयण समत्त
इति लेश्या ध्ययनम् समाप्तम्

अह अणगारज्झयणं णाम पंचतीस इम अज्झयण,

अथ अनगाराध्ययन नाम पञ्चत्रिंशत्तममध्ययनम्।

सुणेह मे एगग्गमणा, मग्गं बुद्धेहि देसियं
जमायरंतो भिक्खू, दुक्खाणंतकरे भवे ॥१॥

अन्वयार्थ — (बुद्धेहि—बुद्ध) सर्वज्ञों द्वारा (देसियं—दर्शितम्) उपदेश दिया गया है उस (मग्गं—मार्गम्) मार्ग को (एगग्गमणा—एकाग्रमनसा) (मे—मे) मुझसे (सुणेह—शृणुत) सुनो (जं—यम्) जिसको (आयरंतो—आचरन्) आचरण करता हुआ (भिक्खू—भिक्षु) साधु (दुक्खाण—दुःखानाम्) दुःखों का (अंतकरे—अन्तकरः) नाश करने वाला (भवे—भवेत्) होवे।

भावार्थ — हे शिष्यो! बुद्धों (सर्वज्ञों के द्वारा उपदेश किये गये मार्ग को तुम मुझ से सुनो) जिस मार्ग का अनुसरण करने वाला भिक्षु सर्वप्रकार के दुःखों का अन्त कर लेता है।

गिहवासं परिच्चज्ज- पव्वज्जामस्सिए मुणी।
इमे संगे वियाणिज्जा, जेहिं सज्जंति माणवा ॥२॥

अन्वयार्थ — (मुणी—मुनि) (गिहवासं—गृहवासम्) गृहवास को [illegible] (परिच्चज्ज—परित्यज्य) धारण कर (पव्वज्जं—प्रव्रज्याम्) दीक्षा का (अस्सिए—आश्रितः) आश्रय करने वाला (इमे संगे—इमान् सङ्गान्) (वियाणिज्जा—विजानीयात्) जाने (जेहिं—यैः) जिनसे (माणवा—मानवाः) (सज्जंति—सज्जन्ते) बंध जाते हैं।

भावार्थ — गृहवास को छोड़कर प्रव्रज्या के आश्रित हुआ मुनि इन संगों का भलिभांति ज्ञान का यत्न करे। जिनसे ज्ञानावरणीयादि कर्मों के द्वारा बंधे हुए मनुष्य बन्धन को प्राप्त होते हैं।

तहेव हिंसं अलियं, चोज्जं अव्वंभसेवणं ।
इच्छाकामं च लोहं च, सजओ परिवज्जए ॥३॥

अन्वयार्थ — (तहेव—तथैव) उमी प्रकार (मजओ—मयत.) माधु हिंम—हिंमाम्) हिंसा को (अलिय—अलीकम्) झूठ को (चोज्ज—चौर्यम्) चोरी को (अव्वभसेवण—अब्रह्मसेवनम्) मैथुन क्रीडा को (च—और) (इच्छाकाम्—अप्राप्त वस्तु इच्छा (च) तथा (लोह—लोभम्) लोभ को (परिवज्जए—परिवर्जयेत्) सर्व प्रकार से त्याग दे।

मूलार्थ.— मयमी पुरुष हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन-क्रीडा, अप्राप्त वस्तु की इच्छा और लोभ इन सबका परित्याग कर देवें ।

मणोहर चित्तघर, मल्लधूवेण वासियं
सकवाडं पड्डुरुल्लोयं, मणसा वि न पत्थए ॥४॥

अन्वयार्थ –(मणोहर) मन को मोहने वाला (चित्तघर-चित्रगृहम्)चित्रगृह (मल्ल-माल्य) पुष्प मालाओ से (धूवेण-धूपेन) सुगन्धित पदार्थों से(वासिय-वासितम्) सुवासित तथा(सकवाड-सकपाटम्)किवाडो से युक्त(पडुरुल्लोय-पाण्डुरोल्लोचम्)श्वेत वस्त्रों से सुसज्जित-गृह की(मणसा-मनसा)मन से(वि-अवि)भी न (पत्थए-प्रार्थयेत्) प्रार्थना न करे

मूलार्थ —जो स्थान मन को लुभाने वाला चित्रो से सुसज्जित पुष्प मालाओ और अगर चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यो से सुवासित, तथा सुन्दर वस्त्रों से सजा हुआ सुन्दर किवाडो से युक्त स्थान की साधु मन से भी इच्छा न करे।

इंदियाणि उ भिक्खुस्स, तारिसम्मि उवस्सए ।
दुक्कराइं निवारेउं, कामराग विवड्ढणे ॥५॥

अन्वयार्थ.— (कामराग विवड्ढणे-कामराग विवर्द्धने) कामराग को वढानेवाले (तारिसम्मि-तादृशे) इस प्रकार के (उवस्सए-उपाश्रये) उपाश्रय मे (भिक्खुस्स-भिक्षो) भिक्षु के लिये (इदियाणि-इद्रियाणि) इन्द्रियो का इससे निवारेउँ-निवारयितुम्) दूर रखना (दुक्कराइ-दुष्कराणि) कठिन है (धारेउ-धारयितुम्) भी पाठ आता है ।

मूलार्थ—इस प्रकार कामराग को बढ़ाने वाले उपाश्रय में साधु के इंद्रियों को वश में रखना कठिन है।

सुसाणे सुन्नगारे वा, रुक्खमूले व इक्कओ।
पइरिक्के परकडे वा, वास तत्थाभिरोयए ॥६॥

अन्वयार्थ—(सुसाणे-श्मशाने) श्मशान में (सुन्नगारे शून्यगारे) शून्य घर में वा (रुक्खमूले-वृक्षमूले) वृक्ष के मूल में (व-अथवा) (इक्कओ-एकक) अकेला (पइरिक्के प्रतिरिक्ते) एकान्त में (परकडे परकृते) दूसरा के लिये बनाये गये स्थान में (तत्थ-तत्र) वहां (वास-वास करने की (अभिरोयए अभिरोचयेत्) इच्छा करे।

मूलार्थ—अत श्मशान में शून्यगृह में किसी वृक्ष के नीचे अथवा दूसरों के लिये बनाये गये एकान्त स्थान में अकेला तथा राग द्वेष से रहित होकर साधु निवास करने की इच्छा करे।

फासुयम्मि अणाबाहे, इत्थीहिं अणभिद्दुए।
तत्थ सकप्पए वास, भिक्खू परम सजए ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(फासुयम्मि—प्रासुके) जीवादि से रहित शुद्ध स्थान में (अणावाहे—अनाबाधे) बाधा रहित स्थान में (इत्थीहिं—स्त्रीभि) स्त्रियों से (अणभिद्दुए—एनभिद्रुते) अनाकीर्ण अर्थात स्त्रियों के उपद्रवों से रहित (तत्थ—वहां) (परम सजए—परम सयत) परम सयमी (भिक्खू—भिक्षु) (वास—निवास का) (सकप्पए—सकल्पयेत) सकल्प करे।

मूलार्थ—प्रासुक—शुद्ध जीवादि की उत्पत्ति से रहित अनाबाध—जीवादि की विराधना वा स्व पर—पीड़ा से रहित—और स्त्रियों की बाधाओं से रहित जो स्थान है वहां पर परम सयमशील साधु निवास करने का सकल्प करे

न सय गिहाइ कुव्विज्जा, णेव अन्नेहिं कारए।
गिहकम्म समारभे, भूयाण दिस्सए वहो ॥८॥

अन्वयार्थ—(गिहकम्म समारंभे—गृहकर्मसमारम्भे) गृहवास के समारम्भ में (भूयाण—भूतानाम्) प्राणियों की (वहो—वध) हिंसा (दिस्सए—दृश्यते)

दिखाई देती है अत. साधु (सय—स्वय) (गिहाइ—गृहाणि) घर (नकु—व्विज्जा—नकुर्यान्)न बनावे और (अन्नेहि—अन्यै) दूसरों से भी (णेव—नैव) नही (कारए–कारयेत्) बनवावे तथा कोई दूसरा बनाता है तो उसका अनुमोदना भी न करे।

मूलार्थ.—भिक्षु स्वय घर न बनावे,और दूसरो से भी न बनवावे तथा दूसरा बनाता हो तो उसकी स्वीकृति भी न दे। क्योंकि गृहकार्य के समारम्भ मे अनेक जवो की हिंसा होती देखी जाती है।

तसाणं थावराण च, सुहुमाणं बादराणं य।
तम्हा गिहसमारंभं, संजओ परिवज्जए॥ ९॥

अन्वयार्थ—(तसाण—त्रसानाम्) त्रसजीवों का (थावरण-स्थावराणाम्) स्थावर जीवों का (च—य) और (सूहुमाण—सूक्ष्माणाम्) सूक्ष्मजीवों का (य—च) और(बादराण—बादराणाम्) बादर जीवों का वध होता है (तम्हा—तस्माद्) इसलिये (गिहसमारभ—गृहसमारम्भम्(गृहसमारभ को (सजओ—सयत) सयमी पुरुष (परिवज्जए—परिवर्जयेत्) त्याग दे।

मूलार्थ—गृह के समारभ मे त्रस, स्थावर, सूक्ष्म तथा बादर स्थूल जीवों की हिंसा होती है, इसलिए सयमशील साधु गृह के समारम्भ को सर्व प्रकार से त्याग देवे।

तहेव भत्तपाणेसु, पयणे पयावणेसु य।
पाणभूयदयट्ठाए, न पए न पयावए॥ १०॥

अन्वयार्थ·—(तहेव-तथैव) उसी प्रकार (भत्तपाणेसु-भक्तपानेषु) आहार पानी के विषय मे जानना (पयणे-पचने)पाचन मे-बनाने मे (य-च)और(पयावणे-पाचनेषु) पकवाने मे (पाणभूय-प्राणभूत) प्राणियो की (दयट्ठाए-दयार्थम्) दया के वास्ते (नपए-नपचेत्) न पकावे (न पयावए नपाचयेत्) न पकवावे।

मूलार्थ— उसी तरह अन्न-पानी बनाने-राँधने और बनाने-रँधवाने मे भी- [त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा होती है] अत प्राणियो पर दया करने के लिये सयमशील साधु न स्वय अन्न को पकावे और न दूसरो से पकवावे।

जलधन्न निस्सिया जीवा, पुढवी कट्ठ निस्सिया ।
हम्मति भत्तपाणेसु, तम्हा भिक्खू न पयावए ॥११॥

अन्वयार्थ —(जलधन्न निस्सिया—जलधान्य निश्रिता) जल और धान्य के आश्रित (जीवा जीवा) (पुढवी कट्ठनिस्सिया-पृथिवीकाष्ठ निश्रिता) पृथिवी और काष्ठ के सहारे रहने वाले (भत्तपाणेसु भक्तपानेषु) आहार पानी के बनाने बनवाने में (हम्मति हन्यन्ते) मारे जाते हैं (तम्हा-तस्मात्) इससे (भिक्खू भिक्षु) (न पयावए-न पाचयेत्) अनादिक न पकावे न पकवावे।

मूलार्थ —अन्न के पकाने और पकवाने में जल और धान्य के आश्रित तथा पृथिवी और काष्ठ के आश्रित अनेक जीवों की हिंसा होती है। अतः भिक्षु अन्नादि को न पकावे और न पकवावे।

विसप्पे सव्वओ धारे, बहुपाणि विणासणे ।
नत्थि जोइसमे सत्थे, तम्हा जोइं न दीवए ॥१२॥

अन्वयार्थ —(विसप्पे विसर्पत) फैलती हुई (सव्वओ-सर्वतः) सब प्रकार से-सब दिशाओं में (धारे धारम्) शस्त्र धारायें (बहुपाणि विणासणे-बहुप्राणि विनाशनम्) अनेकानेक प्राणियों का विनाशक (नत्थि नास्ति) नहीं है (जोइसमं-ज्योति समम्) अग्नि के समान (सत्थ शस्त्रम्) शस्त्र (तम्हा इसलिये) (जोइं-ज्योति) आग को (न दीवए-न दीपयेत्) प्रज्वलित न करें।

मूलार्थ — सब प्रकार से अथवा सब दिशाओं में फैली हुई धारायें जिसकी हैं। अनेकानेक प्राणियों का विनाश करने वाला है ऐसा अग्नि के समान कोई दूसरा शस्त्र नहीं है। अतः साधु अग्नि को कभी प्रज्वलित न करें।

हिरण्णं जायरूवं च, मणसावि न पत्थए ।
समलेट्ठुकंचणे भिक्खू, विरए कय विक्कए ॥१३॥

अन्वयार्थ—(कय विक्कए—क्रय विक्रयात्) क्रय—खरीद विक्रय—बेचना से (विरए—विरत) निवृत्त हुआ (समलेट्ठु कंचणे —समलोष्ट कांचन) पाषाण और सुवर्ण जिसको समान है ऐसा (भिक्खू—भिक्षु) साधु (हिरण्णं—हिरण्यम्) सुवर्ण (जायरूवं—जातरूपम्) चांदी को तथा उपलक्षण से किसी भी (मणसा—मनसा) मन से (न पत्थए—न प्रार्थयेत्) प्रार्थना न करे।

मूलार्थ—क्रय-विक्रय (वस्तुओं के खरीदने और बेचने) में विरक्त और पत्थर तथा सुवर्ण को समान समझनेवाला साधु सोने चांदी आदि वस्तुओं के खरीद-बिक्री की मन में भी इच्छा न करे।

किणंतो कइओ होइ, विक्किणंतो य वाणिओ।
कय विक्कयम्मि वट्टंतो, भिक्खू न भवइ तारिसो॥१४॥

अन्वयार्थ—(किणंतो—क्रीणन्) पर वस्तु को खरीदने वाला (कइओ—क्रायक) (होइ—भवति) होता है (विक्किणंतो—विक्रीणान) अपनी वस्तु—बेचने वाला (वाणिओ—वणिक्) होता है (कय विक्कयम्मि—क्रय विक्रये) क्रय—विक्रय में (वट्टंतो—वर्तमान) वर्तता हुआ (भिक्खू—भिक्षु) साधु (तारिसो-तादृश) वैसा-जैसा साधु लक्षण कहा गया है (न भवइ—न भवति) नहीं होता।

मूलार्थ—पर वस्तु को खरीदने वाला क्रायक—ग्राहक होता है और अपनी वस्तु को बेचने वाले को बनिया—व्यापारी कहते है। क्रय—विक्रय में पड़ने वाला—भाग लेनेवाला साधु, साधु नहीं कहलाता।

भिक्खियव्वं न केयव्वं, भिक्खुणा भिक्खवत्तिणा।
कय विक्कओ महादोसो, भिक्खवत्ती सुहावहा॥१५॥

अन्वयार्थ— (भिक्खियव्व—भिक्षितव्यम्) भिक्षा करनी चाहिए (न केयव्व—न क्रेतव्यम्) मूल्य से कोई वस्तु नहीं खरीदनी चाहिए (भिक्खुणा—भिक्षुणा) भिक्षु को (भिक्खवत्तिणा—भैक्ष वृत्तिना) भिक्षा वृत्ति वाले को (कयविक्कओ—क्रयविक्रयो) क्रय विक्रय में (महादोसो—महान् दोष) महादोष है (भिक्खवत्ती—भिक्षावृत्ति) (सुहावहा सुखावहा) सुख देने वाली है।

मूलार्थ—भिक्षुको भिक्षावृत्ति से ही निर्वाह करना चाहिए, परन्तु मूल्य देकर कोई वस्तु नहीं लेना चाहिए। कारण कि क्रय विक्रय में महान् दोष है और भिक्षा वृत्ति सुख देने वाली है।

समुयाण उंछ मेसिज्जा, जहा सुत्तमणिंदियं।
लाभालाभम्मि संतुट्ठे, पिंडवायं चरे मुणी॥१६॥

अन्वयार्थ—(मुणी—मुनि) (जहासुत्त—यथा सूत्रम्) सूत्रानुसार (अणिन्दिय—अनिन्दितम) निन्दनीय जाति की भिक्षा न हो (समुयाण—सामुदानिकम) सामुदानिक भिक्षा करता हुआ (उञ्छ—उञ्छम) स्तोक मात्र-थोड़ा (एसिज्जा—एषयन) गवेषणा करे (लाभालाभम्मि—लाभालाभयो) लाभ तथा अलाभ में (संतुट्ठ—संतुष्ट) संतुष्ट रहे (पिंडवाय—पिण्डपात) भिक्षावृत्ति को (चरे—चरेत) करें।

मूलार्थ—सूत्र विधि के अनुसार अनिन्दित अनेक कुलों से थोड़े थोड़े आहार की गवेषणा करे तथा मिलने या न मिलने पर संतुष्ट रहे। इस प्रकार मुनि भिक्षा वृत्ति का आचरण करे।

अलोले न रसे गिद्धे, जिब्भादंते अमुच्छिए।
न रसट्ठाए भुंजिज्जा, जवणट्ठाए महामुणी ॥१७॥

अन्वयार्थ—(महामुणी—महामुनि) (अलोल—अलोल) लाभ से रहित (रसे—रस में) (न—नहीं) (गिद्धे—गृद्ध) आसक्त हो (जिब्भादंते—दान्तजिह्व) जिह्वा को वश में करने वाला (अमुच्छिए—अमूर्च्छित) आहार विषयक मूर्च्छा से रहित (रसट्ठाए—रसार्थम) आस्वाद के लिए (न भुंजिज्जा—न भुञ्जीत) भोजन न करे। अपितु (जवणट्ठाए—यापनार्थम) संयम यात्रा के निर्वाह के लिए आहार करे।

मूलार्थ—जिह्वा इन्द्रिय पर काबू रखने वाला मननशील साधु रस का लोभी न बने। अधिक स्वाद युक्त भोजन में आसक्त न होवे। रस के लिए स्वादेन्द्रिय की प्रसन्नता के लिए भोजन न करे किन्तु संयम निर्वाह के उद्देश्य से ही भोजन करे।

अच्चणं रयणं चेव, वंदणं पूयणं तहा।
इड्ढी सक्कार सम्माणं, मणसा वि न पत्थए ॥१८॥

अन्वयार्थ—(अच्चणं—अर्चनम) (रयणं—रचनम) स्वस्तिकादि की रचना (वंदणं—वन्दनम) वन्दन (पूयणं—पूजनम) पूजन (इड्ढी—ऋद्धि) (सक्कार—सत्कार) (चेव—और) (सम्माणं—सम्मानम) (मणसा—मनसा) मन से (वि—अपि) भी (न पत्थए—न प्रार्थयेत) प्रार्थना न करे।

मूलार्थ — अर्चना रचना वन्दना पूजा ऋद्धि सत्कार और सम्मान इन बातों की मुनि मन से भी इच्छा न करे।

सुक्कज्झाणं झियाएज्जा, अणियाणे अकिंचणे।
वोसट्ठकाए विहरेज्जा, जाव कालस्स पज्जओ ॥ १९ ॥

अन्वयार्थ :— (अकिंचणे—अकिञ्चण) अपरिग्रही रहकर (वोसट्टकाए-व्युत्सृष्टकाय) काया के ममत्व का त्याग कर (अणियाणे—अनिदान) परलोक मे जाकर देवादि बनने आदि निदान कर्म को न बांध कर (जाव=यावत्) जब तक (कालस्स -कालस्य) काल का (पज्जओ—पर्याय) है अर्थात् मृत्यु पर्यन्त साधु (सुक्कज्झाण —शुक्लध्यानम्) शुक्लध्यानको (झियाएज्जा—ध्यायेत्) ध्याने और अप्रतिबद्ध—स्वतन्त्र होकर (विहरेज्जा—विहरेत्) विचरे।

मूलार्थ — साधु मृत्यु पर्यन्त अपरिग्रही रहकर तथा काया के ममत्व का भी त्याग कर, परलोक मे जाकर देवादि बनने आदि सकल्प का त्याग करके शुक्लध्यान को ध्याने और बाधारहित होकर विचरे।

निज्जूहिऊण आहारं, कालधम्मे उवट्ठिए ।
चइऊण माणुस बोंदिं, पहू दुक्खा विमुच्चई ॥ २० ॥

अन्वयार्थ — (पहू—प्रभु) समर्थ मुनि (कालधम्मे—कालधर्मे) कालधर्म—मृत्यु के (उवट्ठिए—उपस्थिते) उपस्थित होने पर (आहर—आहार को (निज्जूहिऊण—निर्हाय—परित्यज्य) त्याग कर (माणुस—मानुषीम्) मनुष्य सम्बन्धी (बोंदि—तनुम्) शरीर को (चइऊण—त्यक्त्वा) छोड़कर (दुक्खा—दुःखात्) दुःखो मे (विमुच्चई—विमुच्यते) छूट जाता है।

मूलार्थ —प्रभु—समर्थ मुनि कालधर्म के—मृत्यु के उपस्थित होने पर चतुर्विध आहार का परित्याग करके मनुष्य सम्बन्धी शरीर को छोड कर सब सब प्रकार के दुःखो से मुक्त हो जाता है।

निम्ममे निरहंयारे वीयरागो अणासवो ।
सपत्तो केवलंनाणं सासयं परिणिव्वुए ॥२१॥

अन्वयार्थ — (निम्ममे—निर्मम) ममत्व मे रहित (निरहंयारे—निरहंकार) अभिमान रहित (वीयरागो—वीतराग) रागद्वेष रहित (अणासवो—अनाश्रव) आश्रवरहित (केवलनाण—केवलज्ञानम्) को (सपत्तो—सम्प्राप्त) प्राप्त हुआ (सासय—शाश्वतम्) सदा के लिए (परिणिव्वुए—परिनिर्वृत) सुखी हो जाता है।

मूलार्थ — ममत्व और अहंकार से रहित वीतराग तथा आश्रवो से रहित होकर केवल ज्ञान प्राप्त करके सदा के लिए सुखी बन जाता है। अर्थात् मोक्ष पद प्राप्त कर लेता है (त्तिबेमी-इतिब्रवीमि) ऐसा कहता हूँ।

इति अणगारज्झयणं समत्तं॥३५॥
इत्यनगाराध्ययनं समाप्तम् ॥३५॥